DEDICATED

TO

RAJA KAMLANAND SINGH BAHADUR

OF

SRINAGAR

(PURNEA, BENGAL).

For his zealous interest in the cultivation of Hindi Literature.

निवेदन ।

मैंने इस पुस्तक का मुद्रणादि सर्वाधिकार इंडियन प्रेस, प्रयाग को सौंप दिया है इसलिए इसे या इसके लेखांश को कोई न छपावे ।

"सलेमपुर", फ़रह, (मथुरा) २१ अपरैल १९०७ — महेन्दुलाल गर्ग

जापान-दर्पण
की
विषय-सूची ।

(१) भूगोल पृष्ठ १ से २४ तक

जापान का नाम हमने कैसे जाना, देश की स्थिति, नदी, पर्वत, प्रसिद्ध नगर, मकान और इमारतें, आवोहवा, वृक्षावली, जीवजन्तु, रेलवे, सड़कें, डाकख़ाने, तारघर, फ़ारमूसा टापू, लूशू निवासी, एनोज अर्थात् जापान के असली बाशिन्दो का वृत्तान्त, जापान का सिक्का और नाप तोल।

(२) आचरण पृष्ठ २५ से ५० तक

वंशकथा, आकार प्रकार, वर्णव्यवस्था, सामुराई, पहिनावा, पंखे, तमाकू, तरह तरह के शौक, स्वभाव, शिष्टाचार की बातें, गोदना, भोजनविधि, स्नानागार, चाय पीना, नामकरण।

(३) शिक्षा पृष्ठ ५१ से ८८ तक

शिक्षा-प्रणाली, स्त्रीशिक्षा, क़ैदियों का पठन पाठन, विद्यार्थियो के आचरण, भाषा के सम्बन्ध में कुछ बातें, प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम और विषय, समस्या-पूर्ति और कविता का नमूना, छपाई का काम, चित्रकारी, हिन्दुस्तानी विद्यार्थियो को उपदेश, समचार-पत्र, सत्योपदेश और बालोपदेश। बुशीदो शिक्षा, एक देशहितैषी का चरित्र, देशी कहावतें।

(४) उत्सव पृष्ठ ८९ से १३० तक

विवाह की रीति, स्त्रियों का आदर, महारानी जिंगों का चरित्र, स्त्रियों के ग्रन्थ, वर्तमान महारानी, रंडियों के चकले, उपपत्नी, लड़का लड़की का जन्म, गोद का तरीक़ा, लड़कों के खेल, नाट्यशाला, जापानी शतरंज, प्रहसन, नाच, तिवहार, मत्स्यभक्षक पक्षी ।

(५) धर्म पृष्ठ १३१ से १६५ तक

प्राचीन कथा, शिन्तोधर्म, बौद्धागमन, मूर्तिपूजा, लोगों का धर्म-विश्वास, ईसाइयों का ज़ोर शोर, पितृ-पूजा, तावीज़, भूतप्रेतों में विश्वास, लोमड़ी की महिमा, ज्योतिष पर विश्वास, करामात की बातें, आग पर चलना, अन्य देवताओं का वृत्तान्त, तीर्थ-यात्रा, चन्द्रलोक की कथा, मनहूस बातें ।

(६) व्यापार पृष्ठ १६६ से २०२ तक

व्यापार की क़दर, सुभीता, व्यापार-शिक्षा, अन्य देशों की यात्रा, अजायबघर, व्यापारियों की सभा, बड़ी कौंसिल, स्कूल, जहाज़ो का प्रबन्ध, सर्कारी सहायता, कल कारख़ाने, शिल्प-कार्य, मिश्रित धातु की चीज़ें, तलवारें, रोग़नदार चीज़ें, चित्रकारी, खिलौने, चीनी मिट्टी के बर्तन, कृषि-कार्य, सरकारी सहायता, अश्व-वृद्धि, नये तरह के खेत, खाद का विचार, किसानो की पंचायत और बंक घर, उपज की चीज़ें, चावल, चाय, रेशम, कपूर, कागज़ ।

(७) राजा-प्रजा पृष्ठ २०३ से २३७ तक

परस्पर भाव, राज-भक्ति, सम्राट का शासन, उन्नति का मूल कारण, समष्टिवाद (सोशियेलिस्ट), नमूने की बस्तियाँ ।

(८) सेना पृष्ठ २३८ से २८६ तक

स्वदेश-रक्षा, सैनिक कार्य की आवश्यकता, सिपाहियों का आदर, बचपन से सैनिक शिक्षा, फ़ौज में पढ़े लिखे लोग, महाराज मिकाडो का उपदेश, फ़ौजी लोगों की अनेक बातें, जहाज़ी फ़ौज का वृत्तान्त, घायलों की शुश्रूषा करने वाला समाज, जापानियों की दयालुता, क़ैदियो के साथ व्यवहार।

(९) इतिहास पृष्ठ २८७ से ३४८ तक

इस में जापान के सैकड़ों राजाओं का वृत्तान्त है। ईसवी सन् से कोई ६६० बरस के पहले के राजाओ से लेकर अब तक के कुल राजाओं का इतिहास दिया गया है। प्राचीन और अर्वाचीन अवस्था का बड़ा शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक वर्णन है।

प्रस्तावना।

हिमालय पहाड़ के उस पार चीन देश है और चीन के पूर्व ओर की सीमा जिस समुद्र से बनती है उसका नाम स्थिर महासागर कहा जाता है। इसी महासागर में जापान देश है। कलकत्ते से जब जहाज़ चलता है तो जापान जाने के लिए उसका रुख़ कुछ दिन पूर्व की ओर रहकर फिर ठीक उत्तर को हो जाता है। जापान बड़े सुन्दर टापुओ का समूह है। सब से पहिले जापान का पता चीनियो को मिला था और अस्ल में उन्होने ही इस देश का नाम रक्खा है। पहिले वे इसे "चिपनकू" कहते थे जिसका अर्थ है—"सूर्योदय-भूमि"। जापानियों ने जब इस शब्द को सुना तो अपनी भूमि की प्रशंसा पर वे बड़े प्रसन्न हुए और उपर्युक्त आशय पर अपने देश को "निप्पन" कहना आरम्भ किया। निप्पन का अर्थ जापानी भाषा में "चिपनकू" के समान ही है। उन्होंने उसे और भी बढ़ाकर "दाई निप्पन" कर लिया अर्थात् "महासूर्योदय-भूमि"।

तेरहवीं शताब्दी तक यूरोप-निवासियों ने जापान का नाम भी नहीं सुना था। सन् १२९५ ईसवी में मार्कोपोलो नाम का एक

यात्री अपने पिता और चचा के साथ बीस वर्ष चीन में रह कर स्वदेश में लौटा और वहाँ पहुँच कर उसकी यात्रा का सब वृत्तान्त एक सज्जन ने पुस्तकाकार प्रकाशित किया। उसी पुस्तक के द्वारा यूरोपवालों ने पहिले पहिल जापान-देश की स्थिति जानी। चीनी भाषा के "चिपेनकू" शब्द का उच्चारण मार्कोपोलो "ज़िपानगू" करता था और समय पाकर यह शब्द "जापान" हो गया।

मार्कोपोलो ने जापान की प्रशंसा में बड़ी गप्पें हाँकी हैं। उसने कहा है—"ज़िपानगू" एशिया महाद्वीप के पूर्व की ओर, चीन से १५०० मील दूर, बड़े समुद्र में है और बड़ा भारी टापू है। यहाँ के निवासी गोरे, सभ्य और चतुर हैं। वे मूर्ति-पूजा करते हैं और स्वाधीनता से रहते हैं। यहां वे-हिसाब सोना पैदा होता है। राज्य से बाहिर सोना भेजने का दस्तूर नहीं है। बहुत कम सौदागर यहां पहुँचते हैं। इस देशवालों के पास जो सोना है वह दिन दिन बढ़ता जाता है। यहां के राजा का महल बड़ा अद्भुत बना है। छत बिल्कुल सोने की बनी हुई है और फ़र्श भी सोने की ईंटों से बनाया गया है। खिड़कियाँ भी सुनहरी हैं। सारांश यह कि महल की लागत का अन्दाज़ा नहीं हो सकता।

"इस देशवालों के पास मोती भी बड़ी बहुतायत से हैं। मोतियों में बड़ी झलक है। आकार में गोल, बड़े बड़े और रंग में गुलाबी हैं। यहाँ मुर्दे गाड़े भी जाते हैं और जलाये भी जाते हैं। मुर्दे को जलाने के समय उसके मुँह में मोती रख देते हैं। मोती के सिवाय कई प्रकार के बहुमूल्य रत्न भी इस देश में होते हैं"।

ज़िपानगू की अद्भुत कथा सुनकर बहुत से लोगों को इस देश के देखने का चाव हुआ। अमरीका का पता लगाने वाला प्रसिद्ध कोलंबस भी इसकी तलाश में फिरता रहा; क्योंकि मार्कोपोलो और कोलंबस दोनो जिनोआ के रहनेवाले थे। और भी दो यात्री इस "स्वर्ण-भूमि" की खोज में निकले; परन्तु वे कुछ भी ठिकाना न

लगा सके । इस तरह पचास वर्ष तक खोज जारी रही, परन्तु कुछ भेद न मिला । इस पीछे एक दिन अकस्मात् ही इस देश के दर्शन हो गये ।

सन् १५४२ की बात है । पिन्टो नाम का एक पुर्चगीज़ एक चीनी-जंक (समुद्र में चलनेवाली बड़ी नाव) में जा रहा था । उसके साथ दो पुर्चगीज़ और भी थे । आपस की लड़ाई में चीनी-मल्लाह के मारे जाने से जंक के चलाने का भार पिन्टो के सिर पड़ा । इसी समय एक बड़ी आंधी आई और इस नाव को बहाकर दूर समुद्र में ले गई । वे लोग रास्ता भूल गये और २३ दिन समुद्र मे तिरते रहे । अन्त को जब कि वे निरास हो चुके थे तब किसी ने "धरती, धरती" कह कर चिल्लाना शुरू कर दिया । बड़ी दूर पर सबको एक टापू दिखाई दिया और उसी ओर को नाव ले चले । कई घंटो में वे इस अनजान देश के किनारे पर आ उतरे । यह जापान का "तनी-गा-सीमा" टापू था । इस प्रकार पिन्टो और उसके दो साथियो के हाथ जापान ढूंढने का यश प्राप्त हुआ ।

यूरोपवालों की भाँति जापानियों को भी सिवाय चीन और कोरिया के अन्य किसी देश का वृत्तान्त ज्ञात न था । उनकी नावे ऐसी दृढ़ नहीं थीं कि समुद्र में दूर तक जा सकें । जापानियो ने इन पुर्चगीज़ लोगो को देखकर बड़ा अचरज माना । उनका गोरा रंग, बड़ी बड़ी डाढ़ी और अनोखे हथियार बहुत आश्चर्य उपजा रहे थे । वे नहीं समझते थे कि ये कौन लोग हे । इन विदेशियों के पास तलवार देखकर जापानियो ने इन्हें किसी देश के सामुराई समझा और इनसे बड़े आदर का व्यवहार किया । उस टापू के राजा ने इन्हे अपने महल मे टिकाया और मन माना फिरने तथा शिकार खेलने की आज्ञा दी ।

जापानियों को सब से अधिक अचरज इनकी बन्दूक़ देखकर हुआ। उन्होंने पहिले कभी इस हथियार को नहीं देखा था। वे लोग तीर कमान से शिकार करते थे। जब एक दिन पिन्टो के साथी ने बड़ी दूर पर बैठी हुई बतख़ को मार गिराया तब वे बड़े चकराये। इतनी दूर तीर पहुंचाना उनके लिए असम्भव था। राजा ने बन्दूक़ वाले को अपना पुत्र बनाया और अपने देश के कारीगरों से वैसी ही बन्दूक़ें बनवाईं। छः महीने में छः सौ बन्दूक़ तय्यार हो गईं।

पिन्टो के द्वारा जापान देश का समाचार यूरोप में पहुँचा और पादरी लोग जापान में जाने लगे। आरंभ में इनका प्रभाव देश पर खूब पड़ा। परन्तु जब उन्होंने देश की स्वतंत्रता छीनने का जाल फैलाया तो जापानियों ने एकदम सब विदेशियों का आना बन्द कर दिया और ईसाइयों के विरुद्ध यह फ़रमान जारी हुआ—

"ईसाई-धर्म का प्रचार देश में रोकने के लिए यह आवश्यक है कि ईसाइयो का सब समाचार पूरा पूरा दिया जाय। समाचार देने वालों को इस प्रकार इनाम दिया जायगा—

बड़े पादरी का पता देने वाले को ५००)
छोटे पादरी का पता बताने वाले को ३००)
ईसाई को बतला देने के लिए २००)

ऐसे घर का पता बतानेवाले को जिसने किसी ईसाई को छिपा रक्खा हो ३००)

जो कोई अपने घर का ही भेद बतावेगा उसे ५००)

जो कोई ईसाई को छिपा रक्खेगा और यह भेद खुल जायगा तो गांव के नंबरदार तथा छिपानेवाले के पांच रिश्तेदार या मित्रों को दंड दिया जायगा"।

इसके पीछे जापान में विदेशियों का आना जाना बिलकुल बंद रहा। सन् १८५३ में कोमोडोर पेरी जापान में जहाज़ लेकर पहुँचा। कारण

यह कहा गया था कि एक अमरीकन जहाज़ के टूट जाने से कई अमरीकन मल्लाह इस देश की भूमि पर जा लगे थे। उनको जापान ने क़ैद कर रक्खा था। समुद्र मे से गुज़रते हुए एक अमरीकन जहाज़ पर गोला भी चलाया था। इन सब बातों को फ़ैसला करने और भविष्यत् में ऐसी घटना न होने के लिए, अमरीकन प्रेसीडेंट ने पेरी के हाथ जापान-नरेश को एक पत्र भेजा था जिसको पेरी ने बड़े राज-मंत्री को दिया और उत्तर के लिए वर्ष दिन का वचन देकर वह लौट आया।

पेरी के लौट जाने पर जापानियों ने यह आशा नहीं की थी कि वह फिर आवेगा। परन्तु जब सन् १८५४ के फ़रवरी महीने में उसे फिर मौजूद देखा तो बड़ा आश्चर्य किया। इस बार उसके साथ दस जहाज़ थे। इस बार वह राजधानी के बहुत नज़दीक जाकर ठहरा। अमरीका के प्रेसीडेंट ने पेरी के साथ जापान-नरेश मिकाडो के लिए कुछ सौग़ात भी भेजी थी जिनमें बिजली के तार की एक लाइन और छोटी छोटी गाड़ियों की एक ट्रेन थी। तार की लाइन खड़ी करके जब जापानियों की इच्छानुसार वे एक सिरे से दूसरे सिरे को समाचार भेजने लगे तो जापानियों के झुंड के झुंड इकट्ठे होकर इस कौतुक को देखते थे।

सब से बढ़कर प्रसन्नता उन्हें छोटी रेलवे ट्रेन देख कर हुई। गुलाबी रंग की गाड़ियाँ थीं। भीतर मख़मल की गद्दियाँ बिछी हुई थीं। छोटा सा इंजन इन्हें खींचकर डेढ़ मील के चक्र मे दौड़ता था। यह गाड़ी बच्चों के खिलोने के सदृश थी जिनमें जापानी बैठ नहीं सकते थे परन्तु उनसे यह न देखा गया कि गाड़ी ख़ाली दौड़ती रहे और कोई मुसाफ़िर उनमें न बैठे। अस्तु, चौपहिये के ऊपर चढ़ कर एक एक मनुष्य बारी बारी से इस अद्भुत सवारी का स्वाद चखने लगा।

३१ मार्च सन् १८५४ को कोमोडोर पेरी ने अहदनामे पर दस्तख़त कराये । जिसके अनुसार समुद्र-किनारे के दो नगर अमरीकन व्यापारियों के लिए खोल दिये गये और अमरीका का एक वकील जापान में रहने लगा ।

इस पीछे योरोप के अन्य बादशाहों ने भी अपने वकील रखने का बन्दोबस्त किया और जापान का अद्भुत वृत्तान्त सर्वत्र फैल गया ।

सन् १८९९-०० ई० में जब हिन्दुस्तान से फ़ौजें चीन को गई थीं, तब जापान से भी वहाँ पर बहुत सी सेना आई थी और लगभग डेढ़ वर्ष तक दोनों देश के सिपाही पेकिन में रहे और दोनों एशिया-निवासी होने के कारण एक स्वाभाविक प्रेम से मिलते जुलते रहे । यद्यपि सन् १८९४ में चीन को हरा कर जापान ने बड़ी नामवरी प्राप्त कर ली थी, परन्तु उस समय यह आशा नहीं की जाती थी कि समय पाकर ये लोग अपने पराक्रम से समस्त यूरप को दंग कर देंगे । जब रूस को भारी शिकस्त देकर जापान ने अपना यश पृथ्वी के समस्त देशों में व्याप्त कर दिया तो सब किसी को इन जापानियों का विशेष वृत्तान्त जानने की अभिलाषा हुई । सब देश के यात्रियों ने जापान में जाकर वहाँ का हाल लिखा और पुस्तकाकार छपाया । अँगरेज़ों ने भी अनेक ग्रन्थ लिखे । उन्हीं के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है ।

ग्रन्थकर्त्ता ।

जापान-दर्पण।

भूगोल।

स्थिर महासागर में कमस्कटका से लेकर फ़ारमूसा तक जापानियों के टापू फैले हुए हैं। ख़ास जापान के बड़े टापू तीन हैं। सब से बड़ा "होन्डो" है और बाक़ी दो का नाम "शिकोकू" और "क्यूशियू" है। इनके सिवाय वहाँ और भी बहुत से छोटे छोटे टापू हैं। फ़ारमूसा को छोड़ कर बाक़ी जापान का क्षेत्रफल १,४७,००० वर्ग मील है। खेती होने के लायक़ धरती केवल इसका सोलहवाँ भाग है। बाक़ी सब पहाड़ी देश है। वहाँ अनेक ज्वालामुखी पर्वत विद्यमान हैं। प्रसिद्ध नदी—कितकामी, अबूकूमा, तोन, तिनरयू और किसो स्थिर महासागर में गिरती हैं, शिनानोगावा जापान-सागर में मिलती है। और नदियाँ छोटी छोटी हैं जिनके नाम प्रान्त प्रान्त में बदल जाते हैं। झील बीवा सब से बड़ी है। इससे छोटी झील इनावाशीरो है जिसकी उत्तर-सीमा पर बंदाइसान नाम का ज्वालामुखी पर्वत है।

येज़ो और फ़ारमूसा के सिवाय यह देश ४३ सूबों में बटा है। प्राचीन काल में इस देश की राजधानी बदलती रही है। लगभग ६० शहर राजधानी की पदवी प्राप्त कर चुके हैं। यमातो सूबे में नारा नगर सन् ७०९ से ७८४ तक राजधानी रह चुका है। सन् ७९४ में राजधानी क्यूटो में हुई जहाँ सन् १८६८ ई० तक राजगद्दी रही।

यहाँ से उठ कर मिकाडो महाराज यद्दो में आये जहाँ पर पहिले राज-मंत्री शोगन विराजमान थे। क्यूटो में मिकाडो के महल, देव-मन्दिर और बाग़ दर्शनीय हैं। रेशमी छींट और कपड़ों पर बेल-बूँटो के क़सीदे का काम यहाँ बहुत अच्छा होता है। मिट्टी, चीनी और अष्टधात के पदार्थ भी यहाँ अच्छे बनते हैं।

जापानी-कवि गण नारा नामक नगर की बड़ी प्रशंसा करते हैं। यहाँ पर एक बड़े सुन्दर उपवन के बीच में शिन्तो-धर्म का मन्दिर है। उपवन की सुन्दरता बड़ी प्रशंसनीय है। यहाँ पर हिरनों के झुंड के झुंड चरते फिरते हैं। वे दर्शकों के हाथ से घास खा लेते हैं। बुद्ध महाराज की धातुमयी मूर्ति भी यहाँ की देखने योग्य है। यह मूर्ति सन् ७४९ में बनी है। याकोहामा के पास कामाकुरा नामक नगर मे शोगन का दरबार बहुत दिन रहा है। यहाँ पर जो बुद्ध-देव की मूर्ति है उस पर बड़ी कारीगरी दिखाई गई है।

वर्तमान में टोकियो राजधानी है। यहाँ शिबा-मन्दिर देखने योग्य है। यहाँ पर तोकूगावा घराने के शोगनों की समाधियाँ हैं। पास ही एक बड़ा सुन्दर बाज़ार है। युद्ध-क्षेत्र में मारे जानेवाले सिपाहियों की यादगार का एक मन्दिर भी यहाँ है। अतागोयामा के बुर्ज पर चढ़ने से शहर की ख़ूब सैर होती है। फ़ौजी अजायब-घर, यूनो नाम का उपवन, आसाकुसा का प्रसिद्ध मन्दिर, अँगरेज़ी तर्ज़ पर बने हुए दफ़्तर, बैंक, अस्पताल, जेलख़ाने आदि देखने में बहुत अच्छे जान पड़ते है। यहाँ कई थियेटर भी हैं जिनमें कबूकीज़ा और मेजीज़ा सब से बढ़कर हैं। पहलवानों के अखाड़े भी यहाँ देखने लायक़ हैं।

टोकियो में सूर्य्योदय नाम का पुल भी देखने योग्य है। इस स्थान को जापानी अपने देश का केन्द्र समझते हैं और सब जगह की दूरी यहाँ से नापी जाती है।

निक्को नगर का इन्द्रधनुषाकार पुल बड़ा प्रसिद्ध है । यह लकड़ी का पुल है । इसके ऊपर ऐसा सुन्दर रङ्ग किया हुआ है कि सूर्य्य की धूप लगने से इसमें इन्द्र-धनुष के से रंग नज़र आते हैं । यह पुल ऐसा पवित्र समझा जाता है कि सिवाय मिकाडो के और कोई उस पर से नहीं गुज़रता ।

जापानियों के घर बहुधा एकमंज़िले ही होते हैं और लकड़ी से बनाये जाते हैं जिनके ऊपर छप्पर, तख़्ते या खपरैल की छत होती है । ज़मीन के भीतर नींव नहीं होती । दीवारें लकड़ी के चौखटों की बनी होती हैं जिनमें रात के समय तख़्ते लगा दिये जाते हैं । गर्मियों मे घर चारों तरफ़ से खुले रहते हैं और जाड़ों में चौखटों के भीतर काग़ज़ चिपका कर हवा की रोक की जाती है । घर के भीतर लकड़ी के बने हुए चौखटों के पर्दे के लगा देने से पृथक् पृथक् कमरे बना दिये जा सकते हैं । यह परदे नीचे ज़मीन में धँस जा सकते हैं । अथवा ऊपर छत की तरफ़ भी हटा दिये जा सकते हैं । फ़र्श दो गज़ लंबी, गज़ भर चौड़ी चटाइयो से ढके रहते हैं । मकान भी ऐसे ढंग से बनाये जाते है कि उनमें चटाइयों का जोड़ ठीक ठीक बैठ जाता है । चटाइयों की गिनती से ही कमरे का अन्दाज़ा किया जाता है । यथा छः चटाई का कमरा, दस चटाई का घर आदि । रसोईघर में लकड़ी का फ़र्श होता है । पिछवाड़े के कमरे अच्छे सजे रहते हैं । बग़ीचा भी पिछवाड़े की तरफ़ ही होता है । इन कमरों का निकास दक्षिण की ओर होता है । इसी से सर्दी में उत्तर की हवा और गर्मियों में सूर्य्य का उत्ताप कष्टदायक नहीं होता । मकानों के भीतर मेज़, कुर्सी, तख़्त, पलंग आदि कोई असबाब नहीं होता । रज़ाई और बिस्तरे सब तह करके एक ओर रख दिये जाते हैं । अन्य आवश्यक पदार्थ गोदाम में रहते हैं ।

हर एक मकान के पिछवाड़े जो बाग़ीचा होता है । बड़े परिश्रम से तय्यार किया जाता है । इसमें पहाड़, झील, टापू, नदी, पुल और

झरने सब मौजूद होते हैं। जापान के बराबर फूल कहीं नहीं खिलते। वसन्त ऋतु में देशभर पुष्प-मय हो जाता है।

वहां कमल के फूल बहुतायत से होते हैं। बौद्ध लोगों के शास्त्र मे कमल की बहुत चर्चा आई है। जिस प्रकार कमल के पत्ते जल मे रह कर भी जल से भिन्न रहते हैं उसी भांति सज्जन-गण इस पाप-मय संसार में रह कर भी शुद्ध-चरित्र बने रहते हैं। बुद्ध-देव का आसन कमल-पुष्प का है। वे लोग मृत-देह पर काग़ज के बने सुनहरी रुपहरी कमल के फूल सजाते हैं।

ऐसा सुन्दर देश होने पर भी यहाँ एक भय सर्वदा बना रहता है अर्थात् यहाँ भूडोल बहुत आया करते हैं। कई ऐसे पर्वत हैं जा अग्नि उगलते रहते हैं। धरती साल में तीन चार सौ बार हिलती है। टोकियो-निवासियों का कथन है कि ऐसा कोई दिन नहीं जाता जिस दिन एकाध झोका न आजाता हो। ये झोके कभी कभी इतने ज़ोर के होते हैं कि मकान गिर जाते हैं; पुल टूट जाते हैं; रेल की सड़कें उखड़ जाती हैं और हज़ारों हत्या हो जाती हैं; धरती फटकर गाँव के गाँव ग़ायब हो जाते हैं। जो लोग अन्य देशों से जापान में जाते हैं उन्हें पहिले पहिल भूडोल देखने का बड़ा शौक़ होता है, परन्तु जब दो चार बार यह दृश्य देख लिया तब तबीयत घबड़ाने लगती हैं। पुराने विचार के जापानियों का ख़्याल है कि धरती के नीचे एक मछली है। वह जब हिलती है साथ ही धरती भी डग-मगाने लगती है। वर्तमान में एक ऐसा यंत्र तजवीज़ हुआ है जिसमें अल्प झोका भी अङ्कित हो जाता है। इसी यंत्र के आधार पर जापानियों ने एक यंत्र रेल की ट्रेन का हाल जाननेवाला निकाला है जिसके सहारे ट्रेन अथवा रेल की सड़क का थोड़ा दोष भी मालूम हो जाता है।

ज्वालामुखी पर्वतों में से फ्यूजीयामा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह इस देश का सर्वोच्च पर्वत है। इसकी चोटी सर्वदा बर्फ़ से ढकी

रहती है । यह इतना सुन्दर जान पड़ता है कि प्रत्येक जापानी इसको देख कर प्रमुदित हो जाता है । इसका चित्र कारीगर लोग अपने बनाये हुए पदार्थोंपर अङ्कित करते हैं । कपड़ों पर भी इसकी तसवीर छापी जाती है । रेशम के कपड़ों की बुनावट में इसका चित्र बना दिया जाता है ।

वर्तमान में इस पर्वत से कोई प्रत्यक्ष ज्वाला नहीं निकलती । पिछले २०० वर्ष से यह शान्त है परन्तु अब भी चोटी पर की राख इतनी गरम है कि उसमें आलू भुन सकता है ।

जापानी इस पर्वत को पवित्र भी मानते हैं । इसकी चोटी पर देवताओं की मूर्तियाँ हैं जिनके पूजन करने के लिए गर्मियों के दिनों में हज़ारों यात्री आते हैं । बड़ी कठिनता झेल कर ऊपर पहुँचते हैं और रात्रि भर निवास करके वापिस आ जाते हैं । हरसाल १२ से लेकर १८ हज़ार तक यात्रियों की भीड़ होती है । इस पर्वत को सूर्यास्त के समय टोकियो से देखा जाय तो इसका रंग गुलाबी जान पड़ता है । दिन के वक्त ऐसा सफ़ेद कि नज़र नहीं ठहरती । शाम को सूर्यास्त के समय अरगवानी दीखता है । यह पर्वत पिछलीबार सन् १७०७ ई० में फटा था । एक पुजारी ने उसका वृत्तान्त यों लिखा है—"अचानक पहाड़ एक ऐसी जगह से खुल गया जहां हरे पेड़ उगे हुए थे । धूएँ के बादलों ने रोशन दिन को अँधेरी रात बना दिया । गरम पत्थर हवा में इधर उधर उड़ने लगे । मैदान, मंदिर और घर पिघली हुई धात से भर गये । साठ मील की दूरी से शोर सुनाई देता था । यहाँ के धूएँ की गन्ध समुद्र तक फैल गई थी । पहाड़ के आस पास के रहने वालों का सब कुछ नष्ट हो गया । कई गावों का निशान तक न रहा ।"

जापान के बराबर गरम पानी के झरने और किसी देश में नहीं हैं । ये बहुधा ज्वालामुखी पर्वत की तलहटी में देखे जाते हैं । कोई कोई इनमें फ़ुवारे की तरह धरती से निकलने और शूं शूं करते

हैं। पानी में से जो धुआँ निकलता है उसमें गंधक की बू आती है। इस धुएँ मे से गंधक पृथक् भी कर ली जाती है।

जापान में सब से अच्छी शरद् ऋतु है जिसका आरम्भ अक्टूबर में होता है। इन दिनों में आकाश स्वच्छ रहता है। आंधी चलना बंद हो जाता है। जनवरी, फ़रवरी और मार्च में वर्फ़ गिरती है। परन्तु बहुत देर नहीं ठहरती। वसन्त के दिनों मे बहुत तूफ़ान आते हैं। जून और जौलाई वर्षा के दिन गिने जाते हैं परन्तु वहाँ बहुधा अपरैल से मेह पड़ना आरंभ हो जाता है और सितंबर—अक्टूबर तक दूसरे तीसरे दिन वर्षा होती रहती है। इन दिनों में चीज़ों को सूखा रखना कठिन हो जाता है। जूते, किताब या चुरुट एक दिन भी खुली हवा में रह जायँ तो उन पर सफ़ेद सफ़ेद फफूँदी छा जाती है। दियासलाई रगड़कर जलाना कठिन हो जाता है। लिफ़ाफ़े और टिकट अपने आप चिपक जाते हैं। गर्मियों में सर्वदा उत्तर की वायु और जाड़ों में दक्षिणी पवन बहा करती है। इसीसे जिन मकानों का दरवाज़ा दक्षिण को होता है वे जाड़े की तेज़ हवा से बचे रहते हैं। वहाँ गर्मियों में खूब ठंढी ठंढी लहरें आया करती हैं।

बच्चों को यहाँ की आबहवा खूब मुआफ़िक़ आती है।

सब से अधिक खान इस देश में कोयले की है। क्यूशू के उत्तर पश्चिम में, दक्षिण में नागासाकी के आसपास, येज़ो में परनाई और अन्य स्थानों के मध्य तथा देश की उत्तर-सीमा पर पृथ्वी के भीतर बहुत सा कोयला जमा हुआ है। देश की आवश्यकता पूरी करने के सिवाय अन्य देशों को भी जहाज़ों में लादकर भेजा जाता है। निक्कू के निकट पशिओ और शिकाकू प्रान्त के बेशी स्थान में तांबे की खान है। सुरमा यहाँ का सब संसार में प्रसिद्ध है। उत्तर की ओर इनाई में तथा मध्य जापान के इकूनो स्थान में चाँदी की खानें हैं। सोने के निकलने की चर्चा तो सुनी है परन्तु अभी तक कोई प्रसिद्ध खान नहीं सुनी गई।

जापान की भूमि पर चरण रखते ही सबसे पहिले यहाँ की वृक्षावली देखकर मन मोहित हो जाता है। हिमालय निवासी देवदार के साथ ही साथ गरममिज़ाज बाँसों का समाज है। एक ओर भारतवर्ष के समान धान की खेती लहलहाती है, दूसरी ओर जौ, गेहूँ की बहार दिखलाती है। कपूर की झाड़ियाँ, फ़ारमूसा के सिवाय जापान के समान और कहीं होती ही नहीं। आज तक २७२४ प्रकार के वृक्ष यहाँ पाये गये हैं। आश्चर्य्य की बात है कि नारंगी और चाय के पौधे जो आज कल इस बहुतायत से पाये जाते हैं ८वीं सदी में अन्य देशों से यहाँ लाये गये हैं।

सब से अधिक काम बाँस से निकलता है। बहँगी वाले बांस, कपड़े सुखाने की अरगनी, नाव की बल्ली, झंडों के लट्ठे, पानी के पाइप, मोटे क़िस्म के बांसों से तय्यार होते हैं। लोहे के नलों की अपेक्षा बाँस के बने नल गरम झरनों के पानी के लिए अधिक उपयोगी होते हैं। पतले बाँस हुक्के को नली बनाने के काम आते हैं। फंसट निकाल के चिकें बनाई जाती हैं। एक प्रकार से नरम बाँसों की टहनियाँ उबालकर खाई भी जाती हैं। क़लम, झाड़ू, लाठी, छाते, मछली पकड़ने की बंसी, चाबुक, नसेनी, गज़, पिटारे, तीर-कमान, टोपियाँ, टट्टियाँ, पिंजड़े, बाँसरी, तसवीरों के चौखटे, मेज़, चम्मच, चलनी और अनेक प्रकार के अन्य अनेक पदार्थ बाँस के तय्यार होते हैं। एकप्रकार के बाँस को गलाकर उसकी टोकरी बनाते है। बाँस की बनी हुई चीजो की पूरी फ़िहरिस्त देना कठिन है। जापानी लोग भी बाँस को वृक्ष नहीं समझते, घासही गिनते हैं।

जापान में कई ऐसे पशु-पक्षी वर्तमान हैं जिनका और जगह से नाम निशान भी मिट गया है। सिर्फ़ तितलियों की क़िस्में ही यहाँ १३७ गिनी गई हैं। यहाँ ४००० तरह के उड़ने वाले कीड़े मकोड़े हैं। दूध पीनेवाले जीवों में यहाँ बन्दर अधिकता से हैं। चमगादड़ दस प्रकार की होती हैं। कीड़े खाने वाले परन्द ६ तरह के रीछ तीन

भांति के; तथा बिज्जू, निउला, लोमड़ी, गिलहरी, घूंस, जंगली सूअर, खरगोश, हिरन आदि जंगली जीव यहाँ बहुतायत से देखे जाते हैं। घरेलू पशुओं में गधा, भेड़ी और बकरी नहीं देखी जाती। पक्षी ३५९ प्रकार के हैं। कोयल का स्वर हमारी कोयल से नहीं मिलता। मोर का रंग लाल होता है। सारस और बगले के रूप को यहाँ के चित्रकार बहुत अच्छा समझते हैं। बटेर, बतख़ और कबूतर भी यहाँ पाये जाते हैं; पर यहाँ राज-हंस नहीं होता। चिड़िया, कव्वे, चील और तीतर यहाँ बहुत हैं।

साँप यहाँ बड़े बड़े होते हैं। बगमी नाम का एक अजगर स्त्री और बच्चों को समूचा निगल जाता है। विषैले साँप को जापानी "ममूशी" कहते हैं। इसको उबाल कर खाने से कई प्रकार के रोग दूर हो जाने का विश्वास किया जाता है। छिपकली के सदृश वहाँ एक जलजीव होता है जिसका मांस व्याधिनाशक समझा जाता है। मछली यहाँ के मनुष्यों का प्रधान खाद्य है। एक प्रकार की मछली की टाँगें ५ फ़ीट की होती हैं। केकड़े यहाँ बहुत हैं। सीप वाली मछली भी यहाँ होती है और खाई जाती है। यहाँ भिन्न भिन्न रूप की सब ४०० मछलियाँ गिनी गई हैं।

यहाँ ज़हरीले कीड़े कम हैं। मक्खी यहाँ हिन्दुस्तान के समान अधिकता से नहीं होती। खटमल का यहाँ नाम भी नहीं है। परन्तु मच्छरों की बहुतायत है। गर्मियों में पिस्सू भी ख़ूब होते हैं। केकड़े की भाँति का एक जीव ऐसा होता है जिसकी टाँगें डेढ़ गज़ लंबी होती हैं और वह मनुष्य तक को मारकर खाजाता है।

जापान में बिल्लियों की पूँछ बहुत छोटी होती है। बड़ी पूँछ वाली बिल्ली अच्छी नहीं समझी जाती; क्योंकि बड़ी पूँछ को जब बिल्ली खड़ी करके हिलाती है तो वह सर्पाकार जान पड़ती है। यहाँ सुन्दरी स्त्रियों की उपमा बिल्ली से दी जाती है और हँसी दिल्लगी में पुरुषों को बिज्जू कहा जाता है।

एक प्रकार के छोटे कुत्ते 'चन' नाम से पुकारे जाते हैं। ये देखने मे बहुत ख़ूबसूरत होते हैं और सिखलाने से कई प्रकार के खेल सीख लेते हैं। एक बार एक कुत्ता एक राजा की पालकी के साथ दूर तक चला गया था। वह बड़ा राज-भक्त समझा गया और उसका आदर बढ़ाया गया। इन कुत्तो को विलायती लेडियाँ अपनी गोद मे रखने, अथवा साथ ले चलने के लिए, बहुत पसन्द करती हैं।

जापान के मुर्ग़े और मुर्ग़ियाँ अपने बड़े पंखों के कारण खूब बड़े दिखाई देते हैं। मुर्ग़े की पूँछ मे २०–२५ पर होते है जो सात आठ से ११ फ़ीट तक लंबे होते हैं। एक यात्री ने १३½ फ़ीट लंबी पूँछ देखी थी। कहनेवाले १८ फ़ीट तक लंबे पर बतलाते हैं। बाज़ू के पंख ४ फ़ीट लंबे होते हैं। ऐसे मुर्ग़े ख़ास तरह के पिंजड़ों मे रक्खे जाते हैं। हर तीसरे दिन पिंजड़े से बाहिर केवल आध घंटे के लिए उन्हे निकाला जाता है। महीने में एक दो बार पंखो को धोकर साफ़ करते हैं। उनको हरा दाना और चावल खाने को मिलता है। पानी के लिए बार बार ख़बर ली जाती है। मुर्ग़ी के पख इतने बड़े नही होते। मुर्ग़ी फ़सल में तीस तीस अंडे देती है। नसल बढ़ाने के लिए जो मुर्ग़े मुर्ग़ियों के साथ रक्खे जाते हैं उन की दुम काट दी जाती है।

सड़कें इस देश में बहुत पुराने ज़माने से बनी हुई हैं। क्यूटो से आरम्भ होकर एक सड़क मध्य जापान तक चली जाती है। पश्चिमी जापान से राजधानी यद्दो तक वह प्रसिद्ध सड़क है जिसपर डोमियो (ताल्लुक़ेदार) लोग अपने ठाट बाट के साथ राजधानी यद्दो को शोगन की सलाम के लिए जाया करते थे। इन सड़कों के दोनों ओर बड़े बड़े वृक्ष हैं। पहाड़ी इलाको में पक्की सड़कें हैं। परन्तु अन्य जगह कुटाई अच्छी न होने के कारण वर्षा ऋतु में कीचड़ बहुत होती है। गर्मियो में गर्दा उड़ता है। बार बार भूचाल आते रहने के कारण भी सड़कें बिगड़ती रहती हैं। अब

पहाड़ी इलाक़ों में बहुत सी नई सड़कें बन जाने से यात्रा बड़ी सरल हो गई है । ग्रामीण लोग सड़कों की अपेक्षा पगडंडी पर चलना अधिक पसंद करते हैं ।

रेलवे का विस्तार जब से देश में होने लगा है सड़कों पर मनुष्यों की आमदरफ्त घट गई है । देश-रक्षा और व्यापार-वृद्धि दोनो का विचार कर के रेल तैयार हुई है । सबसे पहिले इस बात का ध्यान रक्खा गया कि क्यूटो और टोकियो दोनों नगर रेल द्वारा मिला दिये जायँ । सन् १८७० में याकोहामा और टोकियो के बीच की सड़क अँगरेज़ी इन्जीनियरों की सहायता से बनाई गई । दो वर्ष मे रेल खुली । कोबे और ओसाका के बीचवाली रेल इसके पीछे तय्यार हुई । पहाड़ी देश होने के कारण रेल का मार्ग यहाँ बड़ी कठिनता से तय्यार होता है । नदियों का इस देश में यह हाल है कि आज जहाँ सूखी बालू पड़ी है कलही वर्षा-जल से वहाँ महा स्रोत बहने लगता है । रेलकी सड़क और पुल सब बह जाते हैं । इसी कारण से टोकियो और क्यूटो के बीच की सड़क जो बहुत पुरानी थी उसी पर रेल चलाई गई है । सन् १९०१ में जापान-देश की रेलवे अपनी पूरी लंबाई मे ३९०० मील थी । सब से अधिक कठिनता उस रेल के बनाने में हुई जो याकोकावा से करुईजावा तक है । यह एक पहाड़ी प्रान्त में से है । पाँच मील की सीधी चढ़ाई है । तीन मील तक पहाड़ के भीतर ही भीतर सुरंग मे रेल जाती है । जापानी रेल का बनना प्रारंभ में गवर्नमेंट के द्वारा ही हुआ था परन्तु अब बहुत से सौदागरों ने कम्पनी बनाकर नई नई रेलें अपने धन से बनाई हैं । सब से बड़ी कम्पनी निप्पन तितसूदो काइशा, (जापान रेलवे कम्पनी) है ।

सरल प्रकार से रेल का विस्तार यों समझिए कि सबसे बड़ी लैन आओमोरी से शिमोनोसेकी तक उत्तर-दक्षिण के बीच और दोनों राजधानियों को पश्चिमी किनारे के देश में फैलनेवाली

लैन तथा शू, क्यूशिकोकू और येज़ू टापू की लोकल लैन हैं। इनके सिवाय राजधानियों के आस पास और भी कई छोटी छोटी लाइनें हैं। अनेक बाधाओं को झेलने पर भी जापान की रेलों का ख़र्चा कम है और उनकी आमदनी भी अच्छी है। सन् १९०० ई० के ३१ मार्च को जो वर्ष पूर्ण हुआ था उसमें गवर्नमेंट को निज की रेल पर ७१ लाख २२ हज़ार येन (जापानी रुपया) नफ़ा हुआ था, उसी वर्ष में सरकारी रेल पर २ करोड़ ८५ लाख ११ हज़ार मुसाफ़िर चढ़े थे और २४ लाख १० हज़ार टन माल एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया गया था।

यद्यपि रेल से यात्रा का सुभीता हो गया है परन्तु पुरानी सड़क के किनारे जो बस्तियाँ थीं वे उजाड़ हो गई हैं। जिन शहरों में यात्रियों के जाने आने और माल के लदने उतरने से सराय और दूकान वालों को अच्छी आमदनी और बस्ती की रौनक़ थी वह सब घटती जाती है। जापान की नदियों में अचानक बूड़ा आजाने की बात पहिले कही जा चुकी है। रेलवे को इससे बड़ा नुक़सान पहुँचता है। इसीलिए कहीं कहीं नदी के नीचे नीचे सुरंग खोदकर रेल की सड़क निकालने का प्रबंध किया गया है।

जापानी रेलकी लाइन साढ़े तीन फ़ीट चौड़ी है। किराया बहुत सस्ता है। जो किराया विलायत में तीसरे दर्जे का है वही जापान मे फ़र्स्ट क्लास का है; तिस पर भी फ़ी सदी दो मुसाफ़िर ऊंचे दर्जों मे बैठते हैं। बड़ी लाइनों पर अब सोने और खाने पीने का बन्दोबस्त कर दिया गया है। स्टेशनों पर ख़ोनचेवाले खान पान के पदार्थ लिये हुए मौजूद रहते हैं।

जापान की रेलों का टाइमटेबिल महीने महीने में छपता है। उसका नाम राइको आनाई है। पहिले इसमें केवल ५-६ सफ़े होते थे परन्तु आजकल एक ख़ासी छोटी सी किताब है।

डाकख़ानों का सिलसिला शुरू होने से पहिले हियाकू-या एजेंसी के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को पत्र जाते थे। यद्यपि महसूल सख़्त न था परन्तु पत्रो के ले जाने में किसी प्रकार की शीघ्रता भी नहीं की जाती थी। सर्कारी डाक के लिए जुदे हलकारे थे जिनका प्रबंध करने के लिए प्रत्येक नगर में इकेटशी अर्थात् पोस्टमास्टर नियत थे। प्रत्येक तालुक़ेदार (डोमियो) राजकीय पत्रों को राजधानी से लाने और वहाँ को ले जाने के लिए अपने आप प्रबंध करते थे। डाकख़ाने का ठीक ठीक प्रबंध सन् १८७१ से शुरू हुआ। पहिले पहिल अमरिका के नमूने पर डाकख़ाने खोले गये थे। डाकख़ानों का सर्कारी इंतज़ाम पहिले टोकियो, क्यूटो और ओसाका के दर्मियान हुआ। फिर धीरे धीरे सर्वत्र फैल गया। डाक के टिकट ६ रिन १,८ और १६ सेन के बने। अन्य देशो को डाक पहुँचाने के लिए जहाजी किनारों पर विदेशियों के डाकख़ाने थे। परन्तु सन् १८७९ में जापानियों ने सर्वत्र अपने प्रबन्ध से डाक भेजने का प्रबन्ध कर लिया। तब ही से वह इंटर-नेशनल-पोस्टेल-यूनियन में शामिल होगया। जापानी सिक्का चाँदी का होने के कारण उनका डाकमहसूल सब से सस्ता था। ख़ास जापान में चिट्ठी पर २ सेन का टिकट लगा। पोस्टकार्ड १ सेन में मिला। सन् १८९९ में आध ओंस की चिट्ठी के ३ सेन हो गये और पोस्टकार्ड का दाम १½ सेन हुआ। १० सेन के टिकट से पृथ्वी के किसी देश में पत्र भेजा जा सकता है।

मनीआर्डर, पार्सल और सेविङ्ग बंक का काम आज कल बहुत होता है। पिछले एक वर्ष में १४ करोड़ ८५ लाख ३७ हज़ार ७ सौ २१ लिफ़ाफ़े, ३३ करोड़ ३९ लाख ८८ हजार ९२१ पोस्टकार्ड डाक से गुज़रे थे। डैडलैटर आफ़िस का काम यहाँ पर इसलिए बहुत सरल है कि पत्रप्रेरक लोग अपना नाम लिफ़ाफ़े पर लिखना कभी नहीं भूलते।

सन् १८९६ में जो चीन के साथ लड़ाई हुई थी उस समय के टिकट, तथा मिकाडो के विवाह के स्मरण में सन् १८९५ में जो ख़ास

टिकट प्रचलित किये गये थे, वे आजकल बहुत महँगे मिलते हैं। चीन की लड़ाई के समयवाले टिकटों में प्रिन्स अरीसूगावा कमांडर इन चीफ़ के चित्र वाले तथा प्रिन्स किटा-शिरकावा के चित्र वाले टिकट आज कल बड़ी क़ीमत से मिलते हैं। युवराज के विवाहोत्सव पर सन् १९०० में लाल रंग का टिकट बनाया गया था।

सन् १८६९ई० में ८४० गज़ लंबा तार केवल सर्कारी काम के लिए लगाया गया था। उसके पीछे टोकियो, याकोहामा, ओसाका और कोबे के बीच में तार लगाये गये। सन् १८७१ मे तार का सिलसिला देश में सर्वत्र फैल गया। टोकियो से कोबे को सीधा तार सन् १८७२ और नागासाकी को सन् १८७३ मे लगा। इस देश में तार देशी-भाषा मे जाता है। हिन्दुस्तान और चीन में देशी बात, रोमन अक्षरों मे लिखी होने से तार में दी जा सकती है। परन्तु जापानियों ने अपने देश का तार देशी चिन्हों से प्रचलित किया है। टेलीफ़ोन भी अब चल निकला है। केवल टोकियो में ५७०० ग्राहक टेलीफ़ोन के हैं।

पहिले पहिल तार लगाने का काम यहाँ विदेशियों ने किया। माल सब अंगरेज़ी लगा था। परन्तु शीघ्र ही जापानियों में इतनी योग्यता हो गई कि उन्हो ने सब काम अपने हाथ में ले लिया। सिवाय समुद्र वाले तार के और सब औज़ार और कलें जापानी ख़ुद तैयार करते हैं। समुद्र के तार द्वारा सब टापुओं का संवाद लिया दिया जाता है और ऐसा तार फ़ारमूसा तक लगा हुआ है। ग्रेट नर्दर्न टेलीग्राफ़ कंपनी के द्वारा जापान का तार इधर शंघाई से और उधर व्लाडीवस्टाक से मिला है। जापानी-गवर्नमेंट के अधीन तार की एक लाइन कोरिया को भी है। तार का महसूल देशी समाचारों के लिए महँगा नहीं है। १५ वर्णों का महसूल २० सेन है। शहर का शहर ही में आधा महसूल लगता है। पानेवाले और भेजनेवाले का नाम पता मुफ़्त जाता है। विदेशी भाषा के तार का

प्रति शब्द ५ सेन लिया जाता है। शहर के भीतर का तार ३ सेन प्रति शब्द जाता है।

पिछली बार जापान में १,२३५ तार-घर गिने गये थे और सब तार मिलकर ५९,४१२ मील लंबा था। यह सब विगत ३० वर्ष की काररवाई है।

सन् १८९५ ई० में जापान ने चीन पर फ़तह पाकर फ़ारमूसा नाम का टापू पाया है। अनेक दिनों से यह टापू चीन के अधीन था। इस टापू का प्राचीन वृत्तान्त ठीक ठीक नहीं मिलता। जिस समय यह चीनियों के हाथ में आया उस समय इसमें जगली आदमी बसते थे जो शिकार मारकर अपना गुजर करते थे। यह देश जंगल से पूर्ण था। हक्का नाम के चीनियों ने पंदरह सोलह शताब्दी में फ़ारमूसा के पश्चिमी किनारे पर बसना आरंभ किया। उनके सिवाय और डेनमार्क और स्पेन वाले भी अपना झंडा जमाने की चेष्टा में फिरते थे। पुरानी किताबों मे इस टापू का नाम तकासागो लिखा है। शहर कोबे के पास एक जंगल फ़ारमूसा के समान घना होने के कारण उसका नाम भी तकासागो रख दिया था। इसका वर्तमान नाम "यूहा-फ़ारमोसा" पुर्तगालवालों का रक्खा हुआ है। सन् १६२४ से १६६१ तक इस टापू पर डेनमार्क वालों का अधिकार था। इन लोगों को एक चीनी डाकू ने, जिसकी मा जापानिन थी, फ़ारमूसा से निकाल दिया। सन् १६८३ ई० में चीनी गवर्नन्मेंट ने इसे अपने अधिकार मे लिया और सन् १८९५ मे इसे जापानियों ने जीत में पाया। इस टापू के पश्चिमी भाग में चीनियों की बस्तियाँ हैं और पूर्व मे कपूर का जंगल है, तथा अन्य वृक्षो की सघनता मे जंगली जीव तथा मनुष्य निवास करते हैं। इस टापू मे एक पहाड़ दो हज़ार फ़ीट ऊंचा है। जापानियों के फ़्यूजीयामा से अधिक ऊंचा होने के कारण इसका नाम उन्हों ने नी-ताका-यामा (नूतन उच्च पर्वत) रक्खा है। फ़ारमूसा पर जो अनेक बादशाहों का दिल ललचाता

है इसका कारण यह है कि इस टापू में चाय, कपूर, चीनी, फल और तरकारियाँ सब तरह की पैदा होती हैं। कोयला और सुवर्ण भी यहाँ बहुतायत से बताया जाता है।

एक पादरी साहब लिखते हैं कि सुपारी खाने और चुरुट पीने के कारण फ़ारमूसा के लोगों को दाँत का दर्द बहुत होता है और जब से पादरी लोग दाँत की दवाई करने लगे हैं ईसाई-धर्म का विरोध बहुत ही घट गया है। उक्त पादरी ने सन् १८७३ में इक्कीस हज़ार दाँत निकाले थे।

जब से जापान के हाथ में यह टापू आया है तब से इसकी दशा मे बड़ा परिवर्तन हो गया है। फ़ारमूसा आसपास के टापुओं को मिलाकर २६ टापुओं का समूह है। क्षेत्रफल १५,५,३५ वर्ग मील है आबादी सन् १८९९ मे २७,५८,१६१ थी, जिसमे ३२१२० जापानी हैं। सन् १८९६ से इस जगह उन्नति होना प्रारम्भ हुई है। फ़ारमूसा मे इतने उपद्रव मचे रहते थे कि चीन-गवर्नमेन्ट घबड़ा उठी थी। जापान के सिर यह बला सौंप कर वह एक तरह से निश्चिन्त हो गई।

असभ्य और डाकुओं की भूमि फ़ारमूसा को फ़ान्स और ग्रेट-ब्रिटन दोनों छोड़ चुके थे। यद्यपि चीन ने यहाँ का राज्य जापानियों को दे दिया परन्तु देश मे शान्ति स्थापन करने के लिए जापनियों को मील मील पर लड़ना पड़ा। सन् १९०१ तक यहाँ फ़ौजी इन्तज़ाम रखना पड़ा। यह जापान की ही योग्यता है कि ऐसे उपद्रवी देश को अब ऐसा अच्छा बना लिया है। स्वास्थ्य-रक्षा और शिक्षा-प्रचार जापानी-प्रबन्ध का मूल मंत्र था। यूरोप की भांति धर्मोपदेश के साथ साथ लोगों को वश में करना जापनियों ने नहीं सीखा। सिविल गवर्नर ने अपना कर्तव्य इस भांति लिखा था—"जापान को पहले इस टापू के लिए दृढ़ शासन प्रणाली नियत करनी है। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती का प्रचार बढ़ाना है। ज़मीन का लगान सस्ता करना, मदरसे खोलना और सर्व साधारण कार्यों के लिए इमारतें

बनवाना परमावश्यक है । अफ़सरों के लिए बँगले, अदालतों की इमारतें, जहाज़ों के ठहरने के घाट और माल उतारने के गोदाम बनाने हैं । जब तक सब देश की पैमाइश न होगी, बटवारा और लगान का हिसाब ठीक न होगा । हुंडी और सिक्के का प्रचार भी होना चाहिए ।"

इन सब कामों में बहुत रुपये दर्कार हुए और जापान ने बहुत सा द्रव्य लगाया । जापानी गवर्नमेन्ट की यह उदारता ही फ़ारमूसा की उन्नति का कारण बनी । वहाँ के निवासियों के साथ भाइयों का सा बर्ताव करना ऐसा फला कि आज उस देश का ख़र्च उसी देश की आमदनी से निकल आता है ।

जापानियों से पहिले इस देश की आबहवा बहुत ही ख़राब थी । जापान के बड़े मंत्री कौंट कत्सूरा फ़ारमूसा के गवर्नर जनरल रह चुके हैं । वे लिखते हैं कि, "सफ़ाई का प्रबन्ध करना सब से पहिले ज़रूरी समझा गया । फ़ारमूसा-निवासियों को अफ़ीम की आदत से बचाना भी शासकों का धर्म हुआ । पीने का पानी जब सुधर गया और मैले पानी के लिए नालियाँ तैयार हो गईं तो रोगोत्पत्ति बहुत घट जायगी । साथ ही साथ प्रजा के हृदय में अपार भक्ति हो जायगी । जापान की घनी बस्तियों से लोगों को ले जाकर टापू मे बसाना है । उनके लिए भी यहाँ की आबहवा का सुधारना बड़ा ज़रूरी है" ।

सिर्फ़ एक जिले में जापानियों ने ८०० कूएँ बनवाये । बड़े बड़े शहरों में नहर और नालियाँ खुदवाईं । राजधानी तापह में मैले पानी की नालियाँ बहुत अच्छी बनी हैं । पीने को ख़ूब मीठा पानी मिलता है । सर्कारी इमारतें बड़ी सफ़ाई से तैयार की गई हैं ।

जगह जगह पर अस्पताल खोल दिये गये हैं जिनमें जापानी डाक्टर और विलायत से पास किये हुए ख़ास सर्जन इस देश को

भेजे जाते हैं। राजधानी में एक मेडिकल स्कूल भी है जिसमें सर्कार की सहायता से कोई सौ डाक्टर पढ़ते हैं।

अफ़ीम का व्यवहार घटाने के लिए जापानियों को बड़ी चेष्टा करनी पड़ी है। जापानी-आईन के अनुसार अफ़ीम का सेवन अपराध गिना जाता है। फ़ारमूसा वालों को एक ख़ास रिआयत की गई है। सब अफ़ीमचियों का एक रजिस्टर रहता है। उनको अफ़ीम ख़रीदने का परवाना मिलता था। यह व्यवहार केवल पुराने अफ़ीमचियों के लिए था। नये शौकीनों को कभी पास नहो मिलता था। सन् १९०० में १,७०,००० अफ़ीमची थे। सन् १९०२ में १,५३,००० रह गये।

विद्याप्रचार के लिए, जापानी भाषा के स्कूल खोले जाने का निश्चय हुआ। परन्तु जापानी कर्मचारियों के लिए देश-भाषा का सीखना भो परमावश्यक हुआ। इसलिए राजधानी में एक स्कूल खोला गया जिसमें जापानी हाकिम देश-भाषा सीखें और देशी लोग जापानी। एक नार्मल स्कूल भी खोला गया है। जिसमें हलक़ाबन्दी मदरसों के लिए शिक्षक तैयार किये जाने लगे। एक शिल्प स्कूल भी खोला गया जिसमें तार और रेल के लिए देशी कर्मचारी तैयार हो सकें। जहाँ जापानियों की अधिकता हो वहाँ के लिए जापानी स्कूल और जहाँ देशियों की बस्ती हो वहाँ देश-भाषा के स्कूल पृथक् पृथक् खोले गये। १३० मदर्सों मे ३२१ उस्ताद पढ़ाते और १८,१४९ लड़के पढ़ते थे।

पहिले फ़ारमूसा में सड़कें बिल्कुल नहीं थीं। जापानियों ने एकदम सड़कें बनाना शुरू कर दिया। सब जगह जाने आने का रास्ता सुगम कर दिया। रेल-मार्ग भी साथ हो साथ बने जिससे व्यापार-वृद्धि के साथही साथ राज्यशासन करने में भी बड़ी सुगमता हो गई। उपद्रव दबाने के लिए फ़ौजों का भेजना सरल हो गया।

देशियों का भी ख़ूब रोज़गार लगा । इस काम में गवर्नमेन्ट ने ३० लाख पौंड ख़र्च किये थे ।

वहाँ २०० मील के लगभग ट्राम्वे भी खोली गई । डाकघर, तारघर और टेलीफ़ोन का प्रचार हुआ ।

फ़ारमूसा के किनारे पर समुद्र इतना गहरा नहीं है कि बड़े जहाज़ तट तक आसकें, । इसके लिए जापानियों को ख़ास ख़ास चेष्टा करनी पड़ी हैं । समुद्र को खोद खोद कर गहरा किया है और लाखों पोंड ख़र्च कर डाले हैं । वहाँ कीनलंग, टाकू, तमसूई आदि बन्दर अच्छे बन गये हैं ।

वहाँ नये तरीक़ों से खेती की जाती है जिससे उपज बहुत बढ़गई है । सन, बेंत, नील, रेशम, शकरक़न्द, अब बहुत अच्छी हालत मे हैं । चावल की तीन फ़सल कटती हैं । नमक से सर्कार को ८० हज़ार पोंड की आमदनी है । गन्धक बहुत निकलती है ।

कपूर संसार भर में यहीं से जाता है । जापानी-प्रबन्ध से इसके वृक्ष बहुत बढ़ गये हैं । यहाँ उत्तम कपूर बनता है और विदेशों को भेजने का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया जाता है । ८० लाख पोंड कपूर हरसाल यहाँ से बाहर जाता है जिस से ८ लाख ७५ हज़ार पौंड की आमदनी होती है । बिना धूएँ की बारूद बनाने के लिए कपूर के पेड़ जापानियों के बड़े काम के हैं । सोना, चाँदी और कोयले की खानें अब पहिले की अपेक्षा अधिक माल बाहिर देती हैं ।

शक्कर बनाने के काम ने बड़ी तरक़्क़ी की है । ४१ हजार एकड़ में ईख की खेती होती है । प्रवासी जापानियों को यह लाभदायक काम दिया गया है और अमरीका से कल मगाई गई हैं ।

पहिले पहिल यहाँ जापानियों का बंक था । परन्तु अब देशियों की धन-संबंधी दशा ऐसी सुधर गई है कि उन्होने निज का बंक खोल लिया । फ़ारमूसा के जो लोग १० वर्ष पहिले असभ्य समझे जाते थे वह अब जापानियों की कृपा से सभ्य बन चले हैं ।

फ़ारमूसा का बड़ा हाकिम गवर्नर जनरल है जो होम गवर्नमेंट के अधीन है। पूरे टापू के २० टुकड़े हो गये हैं और हर एक में एक एक गवर्नर है। गवर्नर को लगान बढ़ाने, इनकम टैक्स और चौकीदारी लगाने का अधिकार है। टैक्स की आमदनी पुलिस, इमारत-सफ़ाई, और तालीम पर ख़र्च की जाती है।

फ़ारमूसा पर जापान का जो धन लगा है उसपर हिसाब लगाने से १२½ फ़ीसदी लाभ हुआ है। अब दिनपर दिन ख़र्च घटता जाता है और आमदनी बढ़ती जाती है। शासन-प्रणाली से सब प्रजा बहुत ही प्रसन्न है। देशी प्रजा की लगभग ६०० सभाएँ हैं जो राजा प्रजा के बीच में मध्यस्थ का काम देती हैं और समय पाकर इन्हीं के द्वारा लोकल सैल्फ़ गवर्नमेंट स्थापित हो सकेगी।

फ़ारमूसा के उत्तर पूर्व छोटे छोटे टापुओं का एक समूह है जिनको जापानी रूशू या लूशू कहते हैं। इन का प्रधान नगर शूरी है। सब टापूओं का क्षेत्रफल लगभग १००० वर्ग मील होगा और आवादी ४,५३,००० है। आमानी, ओशीमा और ओकीनावा वड़े टापू हैं। आबहवा बहुत अच्छी है। परन्तु तूफान बहुत आते हैं। धरती यहाँ की ऐसी उपजाऊ है कि साल में चावल की दो फ़सलें उगती हैं। ईख की पैदावार वहुत है। यहाँ की चीनी वाहिर को बहुत जाती है। यद्यपि यहाँ का राजा सर्वदा जापान के शोगन को कर दिया करता था परन्तु चीन-नरेश को भी भेट दीजाती थी और राजगद्दी होने का समाचार भी चीन को भेजा जाता था। वे लोग चीन को अपना वाप और जापान को मा समझते थे। परन्तु जापानियों ने चीन के साथ संबंध तुड़ा दिया। सन् १८७९ मे लूशू का राजा क़ैद करके टोकियो भेज दिया गया और देश का प्रवन्ध जापानी प्रतिनिधि को दिया गया जिस का पद "ओकीनावा केन" कहलाया। इस परिवर्तन से पुराने राजकर्मचारी नाराज़ हुए हैं परन्तु देशवासियों के लिए बहुत अच्छा हुआ है।

लूशू-निवासी पुरुष भी सिरके बालों का जुड्ड बाँध कर उस सोने चाँदी और ताँबे की पिन अपनी हैसियत के अनुसार, लगाते हैं। ये लोग अपने मुर्दों को ३ वर्ष तक क़बर में या नदी में पड़े रखने के पीछे उसका स्थायी संस्कार करते थे। परन्तु आजकल यह रीति उठगई है। कोबे से इस टापू की सैर करने के लिए जाने आने में १७ दिन लगते हैं। जहाज़ अमामी ओशीमा टापू में ३ दिन ठहरता है।

येज़ो जापान का उत्तरी दिशा वाला टापू है। यहाँ बर्फ़ बहुत पड़ती है और एनो नाम के प्राचीन निवासी शिकार पर गुजर करते हैं। पशतसून नाम के जापानी वीर ने यहाँ अपना निवास स्थान बनाया और सत्रहवीं सदी में शोगन इयासू ने यहाँ का अधिकार मतसूमी योशी हीरो को दिया जिसके कुल में पिछले राजपरिवर्तन तक यहाँ का अधिकार रहा। इन लोगों ने प्राचीन निवासियों को बड़े क्लेश में रक्खा। पढ़ना लिखना उन्हें नाम मात्र को भी नहीं सिखाया। जब जब उन्हों ने उपद्रव किया तब तब मार मार कर इन्हें सीधा किया गया। विगत शताब्दी में कई देश-हितैषियों ने जापान में जाकर इन लोगों के सुधार का यत्न किया है।

एक बार रूस ने भी इस टापू को अपने अधिकार में लाने की चेष्टा की थी परन्तु जापानियो ने रूस को सफल मनोरथ नहीं होने दिया।

जिस तरह कोलंबस को अचानक अमरीका का पता लग गया था इसी भाँति जापानियों को एनोज़ के निवास-स्थान की खोज लगी। उन लोगों की तादाद सत्रह हजार गिनी गई है। उनका क़द जापानियों का सा छोटा नहीं होता बरन वे पूरे आकार के होते हैं। डाढ़ी मूँछ भी उनकी ख़ूब लंबी होती है और बाल ख़ूब घने होते हैं। पुरानी तवारीख़ पढ़ने से जान पड़ता है कि किसी काल में सब जापान इन्हीं लोगो से बसा हुआ था और वर्तमान जाति

को इनसे बहुत लड़ाइयाँ करनी पड़ीं। जापान जो आज रण-शूर प्रसिद्ध है यथार्थ मे इन से लड़ते झगड़ते ही रण-कुशल हुआ है। जापानी में "इनू" शब्द का अर्थ "कुत्ता" है और घृणा करके नये जापानियों ने इन असली वाशिन्दो का नाम एनू अर्थात् कुत्ता रक्खा। आजकल ये लोग बड़े सीधे सादे हैं। इनकी संख्या अब दिन पर दिन घटती जाती है। इनके शरीर पर बाल बहुतायत से होते हैं। सिर और ठोड़ी के सिवाय शरीर के अन्य भागो पर भी सब प्रकार के मनुष्यों से अधिक बाल होते हैं। इनके खान पान सबंधी व्यवहार अभीतक पुराने ही हैं। स्नान ये बहुत ही कम करते हैं और बड़े मैले रहते हैं। मिट्टी के बर्तन तक ये अच्छी तरह नहीं बना सकते। सब जापानियों से और चीज़ों के बदले में लेते हैं। किसी किसी के पास पुरानी तोड़ेदार बन्दूक़ देखी जाती हैं। नहीं तो सब तीर कमान से शिकार करते हैं। मछली पकड़ने का इनका तरीक़ा भी पुराना है। धर्म्म-संबंधी बिचार बड़े अनोखे हैं। ये पत्थर, नदी और पहाड़ो को पूजते हैं। ये भूतों से बहुत डरते हैं। अपने मरे हुए बाप दादों की चर्चा बड़े भय के साथ करते हैं। इनकी समाधि की जगह एकान्त में होती है। वहाँ कोई भी जाने नहीं पाता। उनके धर्म्म में रीछ की क़द्र होती है। गाँव गाँव में हर वर्ष एक रीछ का बच्चा पकड़ा जाता है। इस बच्चे का पालन पोषण कोई स्त्री करती है जो उसको अपनी छाती का दूध पिलाती है। जब दूध के सिवाय अन्य पदार्थ खा सकता है तब उसको एक कटहरे मे बन्द करके रखते हैं। दूसरे वर्ष शरद ऋतु में एक बडा समूह इकट्ठा होता है। कटहरे का दरवाजा खोलकर रीछ को निकाल देते है और शिकारी लोग चारो तरफ से उसके ऊपर तीर छोड़ते हैं। लाठी और छुरियों से उसका काम तमाम कर डालते है। लाश के टुकड़े टुकड़े कर डाले जाते हैं और प्रसाद की भाँति घर घर में बाँट दिये जाते हैं। लोग बड़े चाव से इस माँस को चखते हैं। ख़ूब शराब पीते हैं। मर्द शराब के बड़े प्रेमी हैं। स्त्री-पुरुष दोनों तमाकू पीते हैं।

सन् १८९७ ई० से जापान में सोने का सिक्का चल गया है। इसके सिवाय वहाँ चाँदी, निकल और ताँबे के सिक्के भी चलते हैं। परन्तु आजकल नोटों से अधिक काम लिया जाता है। सिक्का इस प्रकार है।

१० कोसू = १ शू
१० शू = १ मो (मोन)
१० मो = १ रिन
१० रिन = १ सेन
१० सेन = १ येन

सेन हिन्दोस्तान के पैसे के बराबर है। सर्कारी हिसाब किताब में रिन से छोटा सिक्का नहीं लिया जाता। परन्तु दुकानदार कौड़ी कौड़ी का हिसाब रखते हैं। सोने की मुहर २०, १० और ५ येन की होती है। येन चाँदी का होता है। आधा येन (५० सेन) से कम के चाँदी के सिक्के होते हैं। ५ सेन निकल धात का होता है। नोट क़म से कम १ येन का होता है।

ओसाका में टकसाल है। शुरू में इसका प्रबन्ध अंगरेज़-कारीगरों के हाथ मे था परन्तु सन् १८८९ ई० से पीछे सब कर्मचारी जापानी हैं। नोट टोकियो में तैयार होते हैं। उस कारख़ाने का नाम इन्सत्सू-क्योकू है और वह देखने के लायक़ है।

तोल नाप का तरीक़ा इस प्रकार है—

१० वू का १ सन = लगभग १ इंच।
१० सन का १ शाकू = ,, १ फुट।
१० शाकू का १ जो।
६ शाकू का १ केन।
६० केन का १ चो।
३६ चो का १ री।

यह याद रखना बड़ा सुगम होगा कि १५ चो का एक अंगरेज़ी मील होता है। रेलवे पर यही मील लिया जाता है। इस में ८० ज़ंजीर होती है। रेल के सिवाय री और चो का व्यवहार होता है। 'हीरो' जो दो गज़ का होता है, समुद्र की गहराई नापने के काम आता है।

कपड़े की नाप—१० सन का १ शाकू
२५ से ३० शाकू का १ तान
२ तान का १ हिकी।

दोनों प्रकार के शाकू (फुट) में अन्तर करने के लिए कपड़े नापने वाले को कुजीराजाकू और दूरी नापने वाले को कानेजाकू कहते हैं।

धरातल की नाप—३० वर्ग शाकू का १ वू
३० वू का १ से
१० से का १ तान
१० तान का १ चो

यह धरती की नाप है। १ वू = १ सूबो। अंगरेज़ी एकड़ मे १२१० सूबो या ४ तान होते हैं। यह याद रखने लायक बात है कि दो चटाइयाँ जितनी जगह को घेरती हैं वह जगह १ सूबो या वू के बराबर होती है।

पैमाने में भरकर नापने का क्रम—

१० शाकू = १ गो, या ⅓ पाइन्ट।
१० गो = १ शो।
१० शो = १ तो।
४ तो = १ क्यो।
१० तो = १ कोकू।

तौल—१० मो का १ रिन।
१० रिन का १ फ़न।
१० फ़न का १ मोम।
१६० मोम का १ किन।
१००० " " १ क्वान = ४ सेर

रेल की बात पहिले कही जा चुकी है। इसके सिवाय 'जिनरिक्शा' नाम की सवारी इस देस मे बहुत बरती जाती है। शिमले में जैसी रिक्शा गाड़ी चलती है वह जापान का ही नमूना है।

आचरण ।

जब से जापान ने अपनी कीर्ति इस भूमण्डल पर प्रसारित की है तब से, यूरोपवाले भी इन्हें अपना नातेदार बनाने की चेष्टा करने लगे हैं। एक पादरी साहिब इन्हें इसरायील के वंशधर कहते हैं। जर्मन के एक प्रोफ़ेसर भी इन्हें मंगोलियन होने के कलङ्क से बचाना चाहते हैं। परन्तु यथार्थ में जापानी मंगोलियन-वंश में ही हैं। वर्तमान में ऐसा सिद्ध हुआ है कि आर्य और मंगोल दोनों मध्य एशिया में रहते थे। वहाँ से आर्य लोग यूरप और भारतवर्ष की ओर चले गये तथा मंगोलियन चीन, कोरिया और जापान में जा बसे। उन दिनो, जापान में जो लोग बसते थे उनका जापानियो ने "एनो" नाम बताया है।

जापानियों के चेहरे को देखकर उनका ऊँच नीच होना बताया जा सकता है। उच्च-वंश के लोगों का मुँह लंबा, नाक पतली, आँखे तिरछी, और मुँह छोटा होता है। रंग में सब पीलापन लिये होते हैं। खोपड़ी चौड़ी, गाल की हड्डी उठी हुई और डाढ़ी बहुत कम होती है।

नीच-लोगों का रंग काला, दबी हुई मज़बूत शकलें, हड्डी और आज़ा उभरे और बढ़े हुए, चेहरा चपटा और गोल, नाक बैठी हुई, मुँह बड़ा और चौड़ा होता है। ऐसे लोग उत्तरी जापान मे बहुत हैं। गाँवों में किसान लोग भी इसी प्रकार के हैं। जापानियों का धड़ औसत दरजे का होता है। परन्तु टाँगें छोटी होती हैं।

बैठी हुई हालत में वे जितने बड़े जान पड़ते हैं खड़े होने पर उतने लंबे नहीं होते। ये लोग साधारणतः हमारे देश के गोरखों के समान उँचाई में होते हैं । ३१ दिसंबर सन् १८९८ की मनुष्य-गणना के अनुसार, ख़ास जापान की मनुष्य-संख्या २,२०,७२,७५८ थी। इनमें स्त्रियाँ २,१६,८८,०५७ थीं। राजधानी टोकियो की मनुष्य-संख्या १४,४०,०००; ओसाका की ८,२१,००० और क्यूटो की ३,५३,००० है। नगोया की २,४४,०००; कोबे की २,१५,०००; याकोहामा की १,९३,०००; होरोशीमा १,२२,०००; और नागासाकी की १,०७,००० है। शेष बड़े शहरों मे, २० में प्रत्येक की आबादी ५०,००० और ६१ शहरों की फ़ी शहर बीस हज़ार से जियादा है । पिछले समय मे महामारी और अकाल से जन-संख्या बढ़ने नहीं पाती थी। परन्तु अब अकाल पड़ने पर विदेशों से खान-पान के पदार्थ आ जाते हैं। स्वास्थ्य-रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध होने के कारण महामारी भी अब प्रबलता से नहीं फैलती । परन्तु, अब, लोग देश छोड़कर अन्य स्थानों में जाकर बसने लगे हैं। जापान के उत्तर में यज़ो टापू जो अभी तक उजाड़ पड़ा था, आबाद होने लगा है । फ़ारमूसा में भी बहुत से लोग चले गये हं जिनमे फ़ौजी सिपाही और अन्य हाकिम शामिल हैं। हवाई टापू में जापानी लोग ईख की खेती करने के लिए जाने लगे हैं । हांगकांग, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया और अमरीका में बहुत से जापानी रोज़गार की तलाश मे पहुँच गये हैं।

पहले जापानियो में चार प्रकार के वर्ण माने जाते थे। सामुराई अर्थात् योद्धा जिनके संचालक डोमियो कहलाते थे, किसान, कारीगर और बनिये। व्यापारी लोगो का दर्जा सब से नीचा था। परन्तु समय-परिवर्तन के साथ साथ वर्ण-व्यवस्था भी बदल गई और अब जापानियो में केवल ३ ही प्रकार के मनुष्य हैं। काज़ोकू (सरदार), शीज़ोकू (सज्जन) और हीमिन (साधारण प्रजा)। पहिले दो की संख्या फ़ी सदी ५ है। शेष सब साधारण लोग हैं। भारतवर्ष की भाँति वहाँ जात-पाँत का विचार नहीं है। सब जापानी अपने

अपने घर के दर्वाज़ों पर, पूरे पते सहित, अपना अपना नाम लिख कर टाँगे रखते हैं।

जापान में एक और जाति है जो "ईता" कहलाती है। सुनते हैं कि इस जाति के लोग उन कोरिया-निवासियों की सन्तान हैं जिनको जापानी १६ वीं सदी में क़ैद करके जापान में लाये थे। चीनी भाषा में ईता शब्द का अर्थ हरामज़ादा है। इसी से कोई कोई लेखक इन्हें पुराने ज़माने के फ़ौजी लोगों की हरामी-सन्तान कहते हैं। किसी किसी का ख़याल है कि ईता शब्द इतर शब्द से निकला है। जब जापान में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ तो, जो लोग मुर्दार उठाने, क़बर खोदने, और पशु-घात करने के नीच पेशों को करते थे उन्हें बौद्ध पुरोहित इतर जाति में गिनते और इसी नाम से पुकारते थे। ये लोग शहर से बाहिर बसते थे। सन् १८७१ में ईता जाति को नीचों में गिनना हटा दिया गया। उस समय इनकी संख्या कोई २,८७,१११ थी।

१२ वीं सदी में जो लोग मिकाडो के महलों की रक्षा करते थे वे 'सामुरो' कहलाते थे। जब देश में छोटे छोटे राजाओं का अधिकार बढ़ा तो सब सिपाही लोग सामुराई कहलाने लगगये। उस काल में सिपाही पेशे का बड़ा आदर था, और वे लोग ही भलेमानसों की गिनती में थे। इन लोगों की शिक्षा, दीक्षा और प्रतिष्ठा इस देश के राजपूतों के समान थी। राजाज्ञा मानना और युद्ध में प्राण देना इनका प्रधान कार्य था। सामुराई कुल में जन्म होना बड़े सौभाग्य की बात थी। उन लोगों को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का बड़ा ख़याल था। "प्राण जाँय पर प्रण ना जाई" उनका सिद्धान्त था। तुषानल में जलने की भाँति ये लोग भी निराशता अथवा हार जाने पर आत्म-हत्या कर लेते थे। सन् १८७८ में सामुराई शब्द के बदले शिज़ोकू नाम का व्यवहार किया गया। सन् १८७१ से पहिले जापान छोटे छोटे राजाओं के

अधीन बँटा हुआ था। ये राजा लोग डेमियो कहलाते थे। सामुराई-गण अपने अपने डेमियो के महलों में दुर्गरक्षक का काम करते थे और इसके बदले में उन्हें सब परिवार के लिए रसद मिलती थी। रसद का हिसाब चावल की बोरियों की शुमार से था। अब बोरियों के बदले सिक्के की दर से सब लोगों की तनख़्वाह ठहराई जाती है। वर्तमान में जो सामुराई सांसारिक व्यवहार से अपरिचित हैं और सिवाय तलवार चलाने के और कोई गुण नहीं जानते, वे दुःख से दिन काटते हैं। परन्तु चतुर सामुराई अच्छे अच्छे उहदों पर हैं। देश की अच्छी अच्छी नौकरियाँ इन्हीं के हाथ में हैं। उनके राजा डेमियो भी इसी भाँति दुःख सुख झेल रहे हैं। देश-रक्षा के लिए अब भी इन पर बहुत विश्वास किया जाता है।

डेमियो शब्द का अर्थ "नामी" है। ये सब हमारे देश के ताल्लुक़े-दारों के समान थे। ग़रीब से ग़रीब डेमियो की रियासत दस हज़ार बोरी चावल की वार्षिक आमदनी वाली थी। कोगा के डेमियो की वार्षिक आय १० लाख बोरी कही गई है। इन लोगों की तादाद लगभग ३०० के शुमार की गई थी।

डेमियो लोगों के सिवाय राजकुल में उत्पन्न होने वाले लोग भी बड़ी प्रतिष्ठावाले समझे जाते थे। डेमियो यद्यपि समृद्धि-शाली थे, परन्तु सर्व साधारण प्रजा उनको राजकुल से सम्बन्ध रखने वालों के समान नहीं समझती थी। ये लोग मिकाडो के महलों के निकट बसते थे और ग़रीबी से दिन काटते थे। परन्तु जब शोगन का शासन हटकर राज्य-प्रबन्ध मिकाडो के हाथ में आया तो इनके दिन भी फिर गये और देश में बड़े बड़े उहदे इनको दिये गये। इनमें से प्रिंस, मार्किस और कौंट्स बनाये गये। बुड्ढे लोगों को पेंशन दी गई।

यदि जापानियों की पोशाक का पूरा पूरा वर्णन किया जाय तो एक बड़ी जिल्द बन जाय। परन्तु साधारण रीति से समझने के लिए

उस क्रम का उल्लेख किया जाता है, जिस तरह जापानी अपने वस्त्र पहिनते हैं। पहिले मलमल की धुली हुई धोती (शीता-ओबी) बाँध कर ये ऊपर से रेशम या रुई का कुरता (जूबन) पहिनते हैं। सर्दी होने पर इसके ऊपर जाकट (दोगी) होती है। सब से ऊपर चोग़ा (किमोनो) होता है जिसको कमरबन्द (ओबी) से बाँध रखते हैं। सर्दियों में ये रुई भरा चोग़ा (शितागी और उवागी) पहनते हैं। इनके पैरों मे चौड़े पाँयचों का पाजामा (हकामा) होताहै। तंग कोट "हाओरी" कहलाता है। हकामा और हाओरी पर रेशम के वेल बूँटे बने रहते हैं। सिर बहुधा नंगा रहता है। परन्तु अब कभी कभी चटाई की बनी बड़ी टोपी भी पहिनी जाती है। कोट के ऊपर ख़ानदानी चिन्ह तीन जगहों पर बना रहता है। मोज़ों को 'तावी' कहते हैं जिसमें अँगूठे की थैली अलग बनी होती है। पैरों में लकड़ी की खड़ाऊँ या घास की 'चपली' पहिनी जाती हैं। "ज़ोरी" नाम की चपली हलकी होती है और घर-आँगन पहिनने के काम आती है। लंबे सफ़र के लिए "वराजी" का व्यवहार होता है। घर में केवल मोज़े और बाहिर खड़ाऊँ पहिनते हैं। पूरी पोशाक के लिए हाथ में पंखा और छतरी, कमर में पेटी जिसके साथ तमाकू का बटुआ तथा पाइप लटकता हो, ज़रूरी है। दुकानदार लोग दवात क़लम भी साथ रखते हैं।

जापानियों के पहिनावे पर ध्यान देने से जान पड़ेगा कि स्त्री-पुरुष दोनों के वस्त्र ख़ूबसूरत और आराम देने वाले होते हैं। पिछले दिनों मे, भले आदमी दो दो तलवारें बाँधते थे और शिखा-बन्धन करते थे। परन्तु अब ये दोनों बातें हट गई हैं। गाँव के लोग गर्मियों के दिनों मे, कमर के गिर्द सिर्फ़ एक कपड़ा बाँधे रहते हैं। अब शहरों में ऐसा करने से सज़ा होती है। इसी से .कुली मज़दूर जब किसी पुलिस वाले को आता देखते हैं तो अपने ऊपर वे एक और कपड़ा डाललेते हैं। गर्मयो के दिनों में किसान लोग सन का मोटा बुना हुआ कोट ,पहिनते हैं जो पिंडलियों तक लंबा होता है।

सर्दियों में वे रुई भरे हुए नीले रंग के लबादे पहिनते हैं। जापान में भेड़ बकरी न होने के कारण ऊनी कपड़ा बाहिर से आता है। चोगे की बाहें लंबी और चौड़ी होती हैं जिन्हें कलाई के पास से उलट लेते हैं। उलटी हुई तह का बर्ताव जेब की तरह होता है। काग़ज़, पत्र और रूमाल इस के भीतर रख लिया जाता है।

स्त्रियों का पहिनावा मर्दों का सा ही है। कई ज़िलों में, किसानों की स्त्रियाँ अपने मर्दों का सा पाजामा और चोगा पहिनती हैं। डाढ़ी न होने के कारण विदेशी को इन जगहों में स्त्री पुरुष का भेद करना कठिन हो जाता है। क़सबों की औरतें इस भाँति कपड़े पहिनती हैं—कमर में एक धोती सी बाँध कर ऊपर से कुर्ता पहिनती हैं। तिसके ऊपर चोग़ा जिसको कमरबन्द से क़ायम रखती हैं। इस कमरबन्द के ऊपर एक पटका (ओबी) लपेटती हैं। यह पटका ही स्त्रियों का मुख्य वस्त्र समझा जाता है।

जापानी स्त्रियाँ अपने बालों को बहुत ही सँभाल कर रखती हैं। उनकी कंघियाँ और पिनें बड़ी क़ीमती होती हैं और गहनों की भाँति भेट में दी जाती हैं। वे जिस चोगे को पहिनती हैं वह दो सौ रुपये तक की लागत का होता है। सिर की कंघी और पिनें भी इसी मूल्य की होती हैं। पचास रुपये का चोग़ा तो साधारण दुकान-वाली मेले तमाशे के दिन पहिन कर बाहिर निकलती है। पुरुषों के कपड़ों पर इतना ख़र्च कभी नहीं बैठता। जापान की दरबारी औरतें सफ़ेद या क़िरमिज़ी या बेल-बूटेदार रेशमी पोशाक पहिनती और अपने बालो को कंधों पर फैलाये रखती हैं। चाय के बीज के उमदा तेल से इनके बाल ख़ूबसूरत, लंबे और चमकदार हो जाते हैं। माथे पर से ऊपर उठा कर, पीछे की ओर, उनका एक बड़ा जूड़ा बनाया जाता है, वह आलपीनों से बाँधा जाता है। इसमें फूल भी लगाये जाते हैं। कछुए की हड्डी, मूँगे और क़ीमती धातों की कँघी बनती हैं। वहाँ की स्त्रियां हमारे देश के से गहने नहीं पहिनतीं।

सिर वे सदा नंगा रखती हैं। बालों का जूड़ा बाँध कर उसे ऐसी सावधानी से रखती हैं कि वह अठवाड़ों नहीं खुलता। रात को वे अपनी गर्दन के नीचे लकड़ी का तकिया रखती हैं और सिर उस पर नीचे लटका रहता है।

जिस तरह अँगरेज़-ललनाए अपने चिहरे पर पौडर लगाती हैं, इसी तरह जापानी स्त्रियाँ भी अपने मुँह गाल और गर्दन पर एक सफ़ेद चूर्ण मलती हैं और होठों को लाल करती हैं। पहिले ये स्त्रियाँ अपनी भौं साफ़ करातीं और दाँतों पर मिस्सी जमाती थीं। परन्तु वर्तमान महाराणी इस रुचि को पसन्द नहीं करतीं। इसलिए अब यह रिवाज हटता जाता है। एक ऐसा भी ज़माना था जब कि जापानी पुरुष भी अपने दाँत काले करते थे। यह रीति सन् १८७० में राजाज्ञा से बन्द कर दी गई। टोकियो और क्यूटो में तो मिस्सी लगाये हुए कोई स्त्री नज़र नहीं आयेगी, परन्तु अन्य प्रान्तों मे ऐसी नारियों का अभाव नहीं है। अंगरेज़ी में "जापान की पुरानी कहानी" नाम की एक किताब है। उसमे मिस्सी बनाने की युक्ति इस प्रकार लिखी है—"दो सेर के अन्दाज़ पानी लो और गरम करो और आधी छटाँक शराब मिलाओ। फिर इसमे लोहा लाल गरम करके बुझा दो और ५-६ दिन तक इसको एकान्त में रक्खे रहो। जब पानी के ऊपर मलाई सी पड़ जाय तब एक कढ़ाई में रखकर नरम आग पर चढ़ा दो। जब गरम हो जाय तब पिसा हुआ माजूफल और लोहचूर्ण मिला कर कुछ देर पीछे आग पर से उतार कर ठंडा कर लो। पंख के ब्रुश से इसको दाँतों पर लगाओ।"

बच्चों का पहिनावा भी माँ-बाप के समान है। उनके सब वस्त्र आकार के अनुसार छोटे बड़े होते हैं। सिर पर टोपी भी होती है। उनके कमरबन्द में एक बटुआ भी होता है जिसमें अनेक बाधा विघ्न हटाने वाला तावीज़ रहता है। उनके वस्त्रों में धात का एक टुकड़ा लगा होता है। उस पर एक ओर संवत् का चित्र और दूसरी

और बच्चे का नाम-धाम अङ्कित रहता है जिससे खोये हुए बच्चे को पाकर उसका पता मालूम कर लिया जा सकता है। तीन साल की उम्र तक लड़कों के सिर के बाल बिलकुल मूँडे जाते हैं और फिर तीन तुर्रे में रक्खे जाते हैं, एक एक दोनों कानों के ऊपर और एक गर्दन के पीछे। पंद्रहवें बरस में लड़के मर्दाना तर्ज़ पर बाल बनवाते हैं।

ऊपर जिस जापानी पोशाक का वर्णन किया गया है वह उनका देशी पहिनावा है। परन्तु अब वहाँ क्रमशः यूरोपियन फ़ैशन का रिवाज बढ़ता जाता है। सर्कारी नौकरों को हुकमन विलायती रीति के कपड़े पहिनने पड़ते हैं और उनकी देखा देखी और लोग भी ऐसे ही वस्त्रों का व्यवहार करते हैं। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी यूरोपयिन पोशाक पहिनने लगी हैं। वर्तमान महाराणी ने जर्मन से पोशाकें मँगाकर पहिले पहिल सन् १८८६ मे धारण की थीं।

मेल मिलाप की सभाओं में एक मनोहर दृश्य देखा जाता है कि यदि स्त्री ने देशी लिबास पहिना हो तो कमरे में आती समय अपने पति के पीछे पीछे आती है परन्तु जो मेम साहिब बनी हुई हो तो आगे आगे।

जिन दिनों जापान में डेमियो और सामुराई लोगों का प्रभाव था वे लोग अपनी पोशाक मे अपनी पदवी का चिन्ह लगा रखते थे। अव्वल दर्जे के डेमियो लोग तीन चित्र अपने चोगे के ऊपर लगाते थे। छोटे दर्जेवाले दो और सामुराई केवल एक। लड़ाई के समय ऐसाही चित्र वर्दी, टोपी और झंडे पर लगाया जाता था। आजकल भी देशी पोशाक के ऊपर लगे हुए ये चिन्ह देखे जाते हैं जो गर्दन, बाज़ू और छाती पर होते हैं। इन्हीं से लालटेन, सन्दूक़ और ट्रन्को को चित्रित करते हैं। राज-घराने का चित्र सोलह पंखड़ी वाले पुष्प का है। ताकूगावा घराने का चिन्ह मित्सुओई नामक वृक्ष के तीन पत्तों का है। पत्तों की नोकें बीच में मिलती हैं। बाँस

और गुलाब का पुष्प भी कई घरानों के चिन्ह हैं। पक्षी, तितली, झरने, पंख, पंखे, चीनी-अक्षर और रेखागणित की शकलें भी वहाँ घराने का चिन्ह बनाने के लिए अंकित की जाती हैं।

डेमियो लोग जब कभी यात्रा करते थे तो उनकी पालकियों के इर्द गिर्द सामुराई साथ साथ चलते थे। साथ में जितने लोग ज़ियादा होते थे, उतनाही डेमियो प्रभाव-शाली समझा जाता था। जब सड़क पर से सवारी गुज़रती तो जो कोई घोड़े पर सवार मिलता उसे उतर कर घोड़े को सड़क के किनारे पर ले जाना पड़ता था और हर एक को सिर का लिबास उतारना और मिट्टी में माथा रगड़ना पड़ता था। दो आदमी नंगी तलवार लिए साथ में रहते थे। पीछे पीछे नौकरो की टोली अपने अपने दर्जे के चिन्ह लगाये आती थी। सब से पीछे ख़ाली घोड़े भी आते थे। नौकरों की पोशाक पीली होती थी। वे हाथ में लोहे के सोटे लेकर रास्ता साफ़ करते चलते थे।

जापानी पोशाक के साथ हाथ में पंखे का होना भी ज़रूरी है। पंखे की चर्चा जापानी-ग्रन्थो में बहुत पुराने ज़माने के ग्रन्थों में मिलती है। पहिले राजदर्बार में लकड़ी और पंखा लाने की आज्ञा नहीं थी। सन् ७६३ में एक वृद्ध दरबारी को पंखा लाने की अनुमति दी गई थी।

वहाँ पंखे दो प्रकार के होते हैं। बन्द होने वाले (ओगोया सैंसू), खुले रहने वाले (उछीवा)। प्राचीन काल में सब पंखे खुले रहने वाले थे। जापानियों को इस बात का बड़ा अभिमान है कि सब से पहिले बन्द होने वाले पंखे का आविष्कार उन्होंने किया है। चीनियों ने इस प्रकार के पंखे बनाना इन्हीं से सीखा है। कहा जाता है कि एक स्त्री ने सब से पहिले खुलने और बन्द होनेवाला पंखा बनाया था। अत्सुयोरी नाम के एक सज्जन की नव-विवाहिता पत्नी जब विधवा हो गई तो उसने विरहवेदना दूर करने के लिए क्यूटो के

एक मन्दिर में देव-सेवा करने का व्रत लिया था। वहाँ पर उसने एक ऐसा पंखा बनाया जिसके द्वारा हवा करने से महन्त का कठिन रोग हट गया। उसी दिन से इस मन्दिर के बने हुए पखे देश भर में प्रसिद्ध हो गये। देवताओं की सवारी निकलने मे बड़े बड़े पंखों से हवा झलते हैं, ये बड़े पंखे लोहे के बनाये जाते है, उनके एक ओर सूर्य्य और दूसरी ओर नक्षत्र तथा चन्द्रमा का चित्र बना होता है। सूर्य्य की मूर्ति सुनहरी और नक्षत्रादि की रुपहरी बनाई जाती है। सुन्दरता और सस्तेपन मे जापान को कोई और देश नहीं पा सकता। साधारण रीति के खुलने और बन्द होने वाले पंखे का दाम १० पैसा है। सस्ता पंखा ३, ४ पैसे ही में मिल जाता है। शरीर की हवा करने के सिवाय आग जलाने के लिए भी पंखा बरता जाता है। रकाबी न हो तो पंखे के ऊपर ही खानपान की चीज़ें रख दी जाती हैं। नीच-समुदाय का मनुष्य जब किसी उच्चपद वाले हाकिम से बात करता है तो मुँह के सामने पंखा कर लेता है, जिससे बात करने में मुंह की साँस या थूक हाकिम तक न पहुँच सके। बड़े हाकिम के सामने अपना पंखा झलना अच्छा नहीं समझा जाता।

पंखों पर रंगीन या सुनहरी अक्षरों में कोई पद लिखा रहता है और चित्र भी होता है। आजकल पंखो पर विज्ञापन लिख दिये ज़ाते हैं। पहिले इस देश मे अपने चीज़ो की प्रशंसा करना सभ्यता के विरुद्ध समझा जाता था। अपनी चीज़ों को बुरी बताना ही उनकी उत्तमता का कारण समझा जाता था। परन्तु विज्ञापन में इसके विरुद्ध करना पड़ता है। अब सुन्दर चित्रो के बदले पंखे के एक ओर बीअर बोतल का आकार और दूसरी ओर रेलवे टाइम-टेबिल छपा मिलता है।

पंखे के सिवाय तमाकू पीने का पाइप भी साथ रखना बड़ा ज़रूरी है। पुरानी तसवीरों को देखने से तो यह जान पड़ता है कि पहिले

बड़े लंबे पाइप पिये जाते थे, परन्तु अब बहुत छोटे पाइप का चलन है। पाइप के जिस सिरे पर तमाकू रक्खी जाती है वहाँ पियाली-नुमा स्थान बना होता है। उसमें केवल इतनी तमाकू-आती है कि तीन फूँक में ही जल जाय। जिन लोगो को जापानियों की भाँति तमाकू पीना नहीं आता उनसे जली हुई तमाकू पीते पीते ही गिर जाती है और कपड़ों, फ़र्श तथा चटाई, को जलाकर अपना दाग़ कर देती है, परन्तु जापानी लोग तमाकू जलते ही उसे एक बांस की पियाली (हाइफूकी) में उलट देते हैं। पाइप या तो बिल्कुल धाती होते हैं या तमाकू रखने और मुँह मे लगाने का सिरा पीतल का और बीच मे बाँस की नली होती है। आजकल चाँदी का रिवाज है। इस पर ख़ूब नक़ाशी की जाती है। एक अच्छा पाइप आठ आने को आता है। तमाकू पीनेवाले शौक़ीन तमाकू रखने के लिए एक बड़ी ख़ूबसूरत थैली एक सुन्दर घुंडी के द्वारा कमरबन्द के साथ लटकाये रखते हैं। एक छोटी डिब्बी में आग रखने की अँगीठी होती है। अँगीठी में जलते हुए कोयले रखे जाते हैं। उन्हीं से तमाकू जलाई जाती है। हाथ सेंकने और पाइप जलाने के लिए मिहमान के सामने जो अंगीठी रक्खी जाती है उसमें जली हुई तमाकू कदापि नहीं उलटते। जब से यूरोपियन तरीक़ा चल गया है तब से यहाँ ऐसी थैलियाँ बनी हैं जिन में पाइप तमाकू सब कुछ आ जाता है और वह थैली कोट की जेब में रक्खी जा सकती है। पाइप साफ़ करने का तरीक़ा यह है कि तमाकू वाले सिरे को कोयलों पर गरम करले, फूंक कर नली की रुकावट हटा दें अथवा लोहे की पतली सलाई भीतर फेरें। जब नली बहुत ख़राब हो जाय तो नई लगाली जाती है।

वहाँ पुरुष और स्त्रियाँ दोनो तमाकू पीते हैं। इस पाइप से सज़ा देने के बेंत का काम भी लिया जाता है। घर में सास जब नाराज़ होती है तो क़सूर करनेवाली बहू तथा बच्चों को पाइप से ठोकती है।

जापान में तमाकू का प्रचार पोर्चगीज़ के द्वारा सन् १६०० में हुआ था । पहिले इसका पीना बहुत निषेध था । सन् १६५१ में घर के भीतर तमाकू पीने का निषेध हट गया परन्तु समय पाकर सब रोक दूर हो गई । वर्तमान मे ऐसे स्त्री-पुरुष बिरलेही मिलेंगे जो तमाकू न पीते हों । तमाकू का प्रचार जब बच्चो तक में होगया और लड़को की तन्दुरुस्ती बिगड़ने लगी तब सन् १९०० मे क़ानून द्वारा बच्चों को तमाकू पीना निषेध हुआ है । तमाकू की खेती सर्कारी इंतज़ाम से होती है और कोकूबू नाम वाली सब से अच्छी समझी जाती है । यह सतसूमा और ओसूमी के सूबे में पैदा होती है । चार आने से ले कर डेढ़ रुपया पौंड तमाकू मिलती है । इस तमाकू के सिगरेट भी अच्छे बनते हैं ।

अन्य देशों की भाँति जापान में भी जब तब नये नये शौक़ निकला करते हैं । हिन्दुस्तान में जैसे लोग तीतर बटेर पालने का शौक़ करते हैं, जापानियों में एक बार ख़ास तरह के चूहे पालने की चाल चली थी और एक एक चूहे का दाम हज़ार हज़ार रुपये तक होगया था । सन् १८७४-७५ में मुर्गे लड़ाने का शौक़ उठा । सन् १८८४-८५ में कसरतबाज़ी का तूफ़ान आया । इसके पीछे एक वर्ष मिसमरिज़्म, प्लांचेट और भूत प्रेतों से बात करने की चाट लगी । देश के बड़े मंत्री कोंटकुरोदा ने कुश्तीबाज़ी को नीच श्रेणी के लोगों से उठाकर बड़े अमीरो में फैलाया । सन् १८८९ में स्वदेशी की गूंज उठी । विदेशी पदार्थों के बदले जापानी चीज़ें बरती जाने लगीं ।

जापानियो के स्वभाव के सम्बन्ध में विदेशी यात्रियो ने जो कुछ लिखा है उसको पढ़ने से उनकी सुन्दर प्रकृति का परिचय मिलता है । सब से पहिले फ्रैंसिसज़ेवीर नाम के रोमन कैथोलिक पादरी सन् १५४९ मे, जापान गये थे और क्यूशू टापू के कागोशीमा स्थान में जाकर ठहरे थे । इससे पहिले वह भारतवर्ष में ईसाई-धर्म का प्रचार करते थे । जापान में उन्हों ने शारीरिक

अनेक कष्ट सहे। सन् १५५१ में वे वहाँ से लौटे। इनका शरीर गोआ में अभी तक विद्यमान है। उन्होने जापानियों के संबंध में लिखा है—

"समस्त असभ्य जातियों में जापान के समान स्वाभाविक अच्छे लोग कहीं भी नहीं हैं। उनके इस स्वभाव को जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि वे सर्वदा सच्चे और भले कामों को पसन्द करते हैं और उन्हें बड़े उत्साह से सीखते हैं। यहाँ के लोगो को इनके प्रचलित सदाचरण से विशेष सिखाने के लिए मेरा आना व्यर्थ हुआ।"

विल आडम्स वह सज्जन था जिसने जापानियों को जहाज़ बनाना सिखाया और अन्य देशवालो से परिचित कराया। इस अँगरेज़ की डच लोगों के एक जहाज़ पर नौकरी थी। वह जहाज़ तूफ़ान में चकराकर जापान जा लगा और वहाँ अपने गुण के द्वारा इसने बड़ा आदर पाया। सन् १६०० से १६२० तक इसका जीवन जापानियों मे कटा। यह लिखता है कि "जापानियो का स्वभाव बहुत ही अच्छा है। बड़े मिलनसार और शुद्ध व्यवहार वाले लोग हैं। ये न्याय पर चलने वाले और युद्ध में प्राण देने वाले हैं। देश का शासन परमोत्तम है। धर्म में अच्छी श्रद्धा है।"

डाक्टर एजिलवर्ट कम्फ़र डच लोगों की सेवा में रहकर जापान गये थे और सब से पहिले उन्होने जापान का वृत्तान्त पुस्तकाकार संग्रह करके, यूरप वालो में प्रसिद्ध किया। सन् १६९० के सितंबर में ये जापान गये और सन् १६९४ में यूरोप को लौटे। जापानियों के विषय में उनकी राय इस प्रकार है।

शूरवीर...साहसी...प्रतिहिंसाशील...उच्चाभिलाषी...परिश्रमी और सहनशील, बड़े मिलनसार...शुद्धाचारी और शुद्ध रुचिवाले सफ़ाईपसन्द.."

कारीगरी—नुमाइशी अथवा बरतने वाली दोनो प्रकार की—इन से बढ़कर और किसी को नहीं आती। सोने चाँदी, पीतल और

ताँबे की बनी चीज़ें यूरोप भर में इनके बराबर कोई सुन्दर नहीं बना सकता । जापानी लोग ब्रह्मज्ञान की ओर अधिक ध्यान नहीं देते । इस ज्ञान-ध्यान का काम उन्हों ने अपने महन्त और पुजारियों पर छोड़ रक्खा है जिन्हें रात दिन केवल धर्म-चिन्ता ही प्रिय है। दिखावटी धर्म की अपेक्षा धर्म के मूल-तत्वों पर चलना जापानी अधिक अच्छा समझते हैं । सांगीत-विद्या को ये लोग अच्छे प्रकार से नहीं समझते । गणित-शास्त्र मे भी इनका अभ्यास उच्च-श्रेणी का नहीं है । अब यूरोपियन लोगों के सत्संग से इन बातों में भी उन्नति होने लगी है । देवताओं का पूजन बड़ी श्रद्धा से किया जाता है । चरित्र की उत्तमता और जीवन की पवित्रता मे वे ईसाइयों से बढ़कर हैं । मोक्ष प्राप्ति करने, पापों से निवृत्त होने और नरक यातना से बचने का उन्हें बड़ा ध्यान है । न्याय-प्रणाली और देश-प्रबन्ध बहुत अच्छा है । दुष्कर्मियों को भरपूर दंड दिया जाता है।

सर रदर फ़ौर्ड अलकौक ने सन् १८५९ और १८६२ के बीच का हाल "राजधानी के वृत्तान्त" में लिखा है । आजकल जो देश के शासक हैं इनके पिता उन दिनों मे राज के म.लिक थे । ग्रंथ-कर्त्ता लिखता है कि "जापानियों के बच्चे स्वर्ग का दृश्य दिखाते हैं । इस मे कुछ सन्देह नहीं कि विदेशी लोगों को इनके आन्तरिक व्यवहारो का पता नहीं चलता परन्तु यह किसी से छिपा नहीं है कि ये लोग परिश्रमी, दयालु और सच्चे हैं । कारीगरी मे इनका यह हाल है कि हर एक बात की तह को चट पहुँच जाते हैं और सर्वापेक्षा थोड़े समय, थोड़े श्रम और थोड़ी लागत में ये उत्तम पदार्थ तैयार कर देते हैं । इनके काम करने के औज़ार बहुत ही सादा हैं ।"

पादरी ग्रिफिस ने मिकाडो के राज्य का वर्णन करती समय लिखा है—"साधारणतः जापानी निष्कपट, धार्मिक, विश्वासी, दयालु, सभ्य, शिष्टाचारी, प्रेमी, भक्त, सच्चा, और सदाचारी, होता है ।"

जापानी साहित्य का इतिहास लिखनेवाले मिस्टर आस्टन का कथन है कि "जापानी शूर, शिष्टाचारी, सरलहृदय और ,खुशमिज़ाज

लोग हैं। प्रेमी हैं पर उन्मत्त नहीं। नई बातों के सीखने में बड़ी रुचि रखते हैं। सब कामों में चतुराई और सुघड़ाई दिखाते हैं। केवल नक़ल करके ही ये लोग निश्चिन्त नहीं रहते बल्कि सब कामों में अपनी अक़्ल ख़र्च करते हैं। कारीगरी, राजनीति और धर्म की अनेक बातें वे विदेशियों से सीखते हैं परन्तु उन सब को अपने तौर पर परिवर्तित कर लेते हैं।

५ दिसंबर सन् १८९६ के स्पेक्टेटर पत्र में एक लेख उस विदेशी ने लिखा है जो २० वर्ष जापान में रह चुका था। वह यह है–"बड़ी बड़ी कठिन बातों के समझने और कर दिखाने में जापानी लोग आश्चर्य की शीघ्रता देखाते हैं। आश्चर्य भरे कामो को तत्काल स्वयं कर डालना उनकी स्वभाव-सिद्ध बात है। लड़कों को जैसे नये काम करने और शौक़ दिखाने का चसका होता है इस देश के बड़े बूढ़ों के मन में भी वैसाही उत्साह है। प्राचीन विद्वान् और यूरोपियन लोगों में इनकी बड़ी श्रद्धा है।"

मिस्टर वाल्टर डेविंग जो जापानी-साहित्य के प्रसिद्ध पण्डित गिने जाते हैं, कहते हैं कि "जापानी लोग तर्क, मनो-विज्ञान और नीति-शास्त्र के सूत्रों को सुलझाने में अनुराग प्रकाश नहीं करते। और न इन पर अपना सिर खपाते हैं। योग-ध्यान की बातें उनको कभी अच्छी नहीं लगतीं। तत्त्व-शास्त्र उनको बड़ा कुचक्र सा जान पड़ता है। जापानियो को आश्चर्य जान पड़ता है कि विदेशी लोग मनो-विज्ञान, तर्क शास्त्र और धर्म-विचारो पर क्यो अपना समय नष्ट करते हैं।"

एक लेखक ने जापानियों और चीनियो के स्वभाव का मुक़ाबिला किया है। जापानियो को ख़ुशमिज़ाज, दयालु और शौक़ीन बताया है। चीनियो को सर्वोपरि विश्वास-भाजन कहा है। जापानियो को देशाभिमान है; चीनियों को जात्याभिमान। चीनियो को अपने देश के लिए प्राण देने की चिन्ता बिल्कुल नहीं है परन्तु उनको अपने

दूसरा—कुलाङ्गनाशिरोमणि आपकी गृहिणी अच्छी तरह है?

पहिला—अनेक धन्यवाद। हाँ वह निकम्मी बुढ़िया बहुत प्रसन्न है।

दूसरा—श्रीमान् के राजकुमार कैसे हैं?

पहिला—आपकी इस सदिच्छा के लिए हज़ारों आशीर्वाद। वे मैले, कुचैले, बकवादी लौंडे खूब राज़ी हैं।

दूसरा—मैं आज कल एक बड़ी तंग गली में रहता हूँ। मेरा मकान बड़ा तंग और मलिन है। परन्तु यदि आप यह सहन कर सकें तो उसे पवित्र करके मुझे कृतार्थ करें।

पहिला—मैं अपनी प्रसन्नता प्रकाश नहीं कर सकता और आप के राज-भवन में अवश्य उपस्थित हूँगा और इस तुच्छ देह को आप के सम्मान से आप्यायित करूँगा।

दूसरा—इस समय मैं बड़ी धृष्टता करता हूँ और चले जाने की आज्ञा माँगता हूँ।

पहिला—मुझे भी क्षमा कीजिए। सायोनारा (नमस्ते)।

जापान का गोदना प्रसिद्ध है। हमारे देश में स्त्रियाँ काला गोदना गुदाती हैं। परन्तु जापान में प्राचीन काल से पुरुष गोदना गुदाते चले आते हैं। चीनियों ने सब से पहिले जापानियों को देखा था। उन्होंने देश का वृत्तान्त लिखते हुए कहा है कि "जापानी लोग अपने सब शरीर को गोदने से आभूषित करते हैं और प्रत्येक मनुष्य अपने पद-मर्यादा के अनुसार शरीर को चित्रित करता है"। परन्तु यथार्थ बात यह है कि प्रारम्भ में केवल उन्हीं लोगों के गोदना किया जाता था जो अपनी दुष्टता से लोगों को दुःख देते थे, गोदना उनके लिए राज-दण्ड था। बदमाशों से हटकर फिर यह काम पहलवान और उजड्ड लोगों में फैला। ख़्वाहमख़्वाह लड़ने वाले शेखी ख़ोरे पहलवान अपने शरीर पर बड़े भयानक चित्र इस लिए गुदा रखते थे कि लड़ते समय शरीर नंगा करने में दर्शक

जन उससे सहम जायँ। जिन लोगों का काम नंगे शरीर से उद्यम करने का था—जैसे बढ़ई, लोहार आदि—वे अपने शरीर पर शिकार, थियेटर और दर्शनीय पदार्थों के चित्र गुदवा लेते थे। बहुत से कारीगर अपने शरीर को चित्रित करने में सौ सौ रुपया उठा देते थे। वह अपनी सारी बचत अपने शरीर को गोदने में ख़र्च कर डालते थे।

सन् १८६८ में राजाज्ञा से गोदना बन्द कर दिया गया। कारण यह समझा गया कि गोदना आजकल की सभ्यता के विरुद्ध है। विदेशी लोग जापानियो को गुदा हुआ देखें तो उन्हें असभ्य समझेंगे। परन्तु यह जापानियों की भूल थी। विदेशी लोग गोदने को बुरा नहीं समझते थे। सन् १८८१ में यूरोप के दो शाहज़ादो ने जापान के गोदनेवालो की प्रशंसा सुन कर अपने शरीर पर गोदना कराया था। उस दिन से फिर इस हुनर में तरक़्क़ी हुई। पिछले दिनो में एक गोदनेवाला जापानी हिन्दुस्तान में आया था। फ़ौजी गोरो को गोद कर वह हज़ारों रुपया कमा ले गया। गोरों ने इङ्गलेण्ड मे ऐसा गोदने वाला कभी न पाया था। फल, फूल, जीव, जन्तु को वे ऐसी सफ़ाई से बनाते हैं कि वाह वाही किये बिना नहीं रहा जाता।

लाल, नीला और भूरा रंग काम में लाया जाता है। पीला और हरा रंग भी बरता जाता है। पर ये रंग ज़हरीले होने के डर से बड़ी सावधानी से बरते जाते हैं। सुइयाँ मुटाई में ६ प्रकार की होती हैं। सुइयाँ रेशम के धागे के द्वारा हाथी-दाँत के दस्ते में लगी रहती हैं। चतुर कारीगरों के हाथ से रुधिर कभी नहीं निकलता। दुख दूर करने के लिए, आजकल, कोकेन को काम में लाते हैं। इसे रंगों के साथ मिलाते या शरीर को इसके लोशन से धोते हैं।

भोजन जापानी दिन मे तीन बार करते हैं। एक बार सवेरे, फिर दुपहर को और तिस पीछे संध्या के समय। कलेवा के समय अल्प आहार किया जाता है। भोजन के पदार्थ तीनो काल में एक से होते हैं। चावल का खाना मुख्य है। ज्वार, बाजरा और जौ भी खाये जाते

हैं। मछली, अंडे, तरकारी और अचार चावल के साथ स्वाद बढ़ाने के लिए खाये जाते हैं। बौद्ध-धर्म के प्रताप से लोग मांस को रुचि-पूर्वक नहीं खाते। यद्यपि मछली खाना भी जीव-हत्या है परन्तु इसको जापानी "जल तुरई" की भांति ही समझते हैं। हरिण के माँस को पहाड़ी मछली कह कर बेचते है। नई सभ्यता के प्रसाद से मांस का निषेध नहीं है; परन्तु प्राचीन काल से जो घृणा चली आती है उसके कारण बहुत कम मांस खाने का प्रचार है। रोटी का रिवाज भी आज कल चल पड़ा है। माँस में रुचि न होने के कारण इसको जापानी स्वादिष्ठ रीति से पका नहीं सकते और न अच्छा भला परखने का कष्ट उठाते हैं। ग़रीब लोगों को चावल भी नसीब नहीं होते। वे बाजरे पर ही गुज़र करते हैं। उनको चावल एक नियामत है जिसे तिवहारों और ख़ुशी के मौकों पर खाते हैं। बूढ़े और बीमारों को चावल पथ्य की भाँति दिये जाते हैं। जिस तरह भारत-वर्ष के किसान गेहूँ अपने साहूकार के लिए तैयार करते हैं और आप मोटा अन्न खाकर गुज़ारा करते हैं, यही हाल जापानी किसानों का भी है।

रताल्रू, मीठे आलू, फली और मटर साग, तरकारी के लिए काम में लाये जाते हैं। जापानी सब से स्वादिष्ठ एक प्रकार की शकरकन्द को समझते हैं। मूली की फाँकें नमक मिलाकर बड़े स्वाद से खाई जाती हैं।

नारंगी, नाशपाती, सेब, बिही और अंगूर भोजन के उपरान्त खाने के फल हैं। चीनियों की भाँति जापानी दूध का इस्तेमाल नहीं करते। सब दूध को बछड़ा चोख जाता है। इसी कारण से मक्खन और पनीर भी वहाँ नहीं मिलता। जापानियों को अधिक तर खाना समुद्र सेही मिलता है। उसमें से निकली हुई किसी चीज़ को वे नहीं छोड़ते। शिकार खाने वाले बतख़, भेड़िया और बन्दरों को भी खा जाते हैं।

जापानी इस देश की भाँति भोजन उँगलियों से नहीं खाते। लकड़ी की दो शलाकाओं का चिमटा सा बनाकर उसी से सब चीज़ उठा कर खाते हैं। ये शलाका रूल-पॅंसिल के समान होती हैं। एक को अंगूठे की मोड़ में रखते हैं और तीसरी उँगली के सहारे अँगूठे से पकड़ते हैं। दूसरी शलाका इसके ऊपर पहिली दूसरी उँगलियों के सहारे से पकड़ी जाती है। जापानियों का इन लकड़ियों का ऐसा अभ्यास है कि महीन से महीन चीज़ पकड़ लेते हैं। चीन और कोरिया के रहने वाले भी इसी प्रकार खाते हैं। कारीगर लोग भी चीज़ों के पुरज़ों को इसी भाँति दो लकड़ियो से उठाते हैं। अँगीठी और चूल्हो के पास लोहे की दो सलाई पड़ी होती हैं। इन्हीं से जापानी चिमटे का काम लेते हैं। इन्हीं से पाइप में आग रक्खी जाती है।

मिहतर लोग बाज़ार, गली और मुहल्लों में चीर, कतीर, फटे कागज़, बाँस की दो लकड़ियों से पकड़ कर अपने टोकरे में रख ले जाते हैं।

वहाँ मुसल्मानो की तरह, बैठ कर कई आदमी एक साथ एक बर्तन में नहीं खाते। सब कोई अपना खाना एक अलग थाल में रख लेता है। चटाई पर घुटने के बल बैठकर रोग़न किये हुए प्याले में शोरबा पीता है। दूसरे प्यालो के साथ साथ चाय का होना बडा ज़रूरी है। भोजन परोसनेवाली स्त्री एक ओर घुटने टेके बैठी रहती है और जब किसी पियाले को ख़ाली पाती है तब भर देती है। स्त्रियाँ पुरुषो से अलग खाना खाती हैं।

जापानी लोग चावल की शराब बनाते हैं और वह जाड़े के दिनों में तैयार होती है। यह बहुत तेज नहीं होती। परन्तु यूरोपियन लोगों को इससे बहुत नशा हो जाता है। साधारण शराब साकी कहलाती है। शोकू और मिरिन नाम वाली शराब बहुत तेज़ होती हैं।

स्नान करने का जापानियों को बड़ा शौक़ है। चीनियों की बहुत सी बातें जापानियों में हैं। परन्तु यह कर्म चीनियों का नहीं है। स्नान करने की चर्चा बहुत पुराने काल से है। प्रसिद्ध देव इज़ानागी की स्त्री जब मर गई थी तब उन्होंने स्नान करके अपनी शुद्धि की। शिन्तो-धर्म के आचार-व्यवहार में कई बार स्नान करने की आवश्यकता होती है। जापानी लोग धर्म कमाने की लिए स्नान नहीं करते, उनको अपनी शारीरिक शुद्धता स्वाभाविक ही प्रिय है। गरम जल का स्नान सर्दी के दिनों में उन्हें सर्दी से बचाता है। वे लोग बहुत ही गर्म पानी से स्नान करते हैं। थोड़े गरम पानी का असर अच्छा नहीं होता परन्तु तेज़ गरम में स्नान करने से कोई भय नहीं है। उन्हे कभी सर्दी और ज़ुकाम भी नहीं होता। ११० दर्जे का गरम पानी स्नान के लिए काम में लाया ज़ाता है। ख़ास टोकियो में सर्व साधारण के लिए ८०० ग़ुसल-ख़ाने हैं जिनमें चार लाख मनुष्य प्रति दिन स्नान करते हैं। बड़े मनुष्य को २½ पैसा, लड़कों को २ पैसा और गोद के बच्चों को डेढ़ पैसा देना होता है। बड़े लोगों के घर में अपने निज के ग़ुसल-ख़ाने होते हैं। गाँव तक में सर्व साधारण के लिए ग़ुसल-ख़ाने मौजूद हैं। कहीं कहीं स्त्रियो के लिए अलग और पुरुषो के लिए अलग ग़ुसल-ख़ाने हैं। जब और कहीं न्हाने का बन्दोबस्त न हो तो पुलिस वालों की आँख बचाकर लोग चौड़े में नंगे हो कर न्हा लेते हैं। नंगा होना जापानी बुरा नहीं समझते। स्नान करने का तरीका ऐसा सुन्दर है कि विदेशी लोग भी जापानियो की भांति गर्म-जल से स्नान करना शुरू कर देते हैं। यहाँ की आबहवा में भी कुछ ऐसा गुण है कि ठडे जल की अपेक्षा गर्म जल का स्नान बहुत लाभ-दायक जान पड़ता है। ठंडे जल के स्नान करने वाले गठिया, खाँसी और ज़ुकाम से क्लेश पाते रहते हैं। घर में स्नान करने के लिए जो हौज़ होता है उसमें घुसने से पहिले शरीर को धो लिया जाता है। फ़िर सबसे पहिले घर का स्वामी हौज़ में न्हाता है। उसके पीछे,

नंबरवार, और लोग भी उसी पानी में न्हाते हैं। जब तक देश में साबुन का प्रचार न था, मलमल के टुकड़े में चोकर बाँधकर उसे पानी में भिगो कर शरीर का मैल रगड़ा जाता था। शरीर को अच्छे प्रकार मल-रहित करने के बाद हौज़ में ग़ोता लगाते थे। इस प्रकार करने से पानी मैला नहीं होता था।

ज्वालामुखी पहाड़ों के पास बहुत से तप्तजल के झरने हैं। जापानी इन में स्नान करना बहुत ही पसन्द करते हैं। बाज़े तो ऐसे शौक़ीन है कि पत्थर गोद में रखकर दिन रात वहीं बैठे रहते हैं। पत्थर से उनको बह जाने का डर नहीं रहता। जिन ग़रीबों के गाँव ऐसे झरनों के पास हैं वे सर्दी से बचने के लिए पानी ही में जा बैठते हैं। जापान में प्रसिद्ध तप्त सोते ये हैं—गन्धक के जल वाले कुसत्सु, अशीनोयू, युमोतो। ये सब निक्को के पास हैं। नागासाकी के पास-उनज़न, शिओबारा और नासू हैं। फ़ौलाद मिले हुए पानी के चश्मे इकाओ, अरीमा और बेप्पू हैं। आतमी और इसोबी का पानी नमकीन है। मियानो शीता नामका नाला विदेशियों के निकट अधिक परिचित है। इसके जल में बिना डाक्टर की सलाह के स्नान किया जा सकता है। मियानो शीता से ४ मील आगे लोह और गन्धक मिश्रित जल का सोता है। कोत्सुकी सूबे में शिरानी पहाड़ के ऊपर एक ऐसा कुण्ड जिसमें है हैड्रोक्लोरिक एसिड मिला हुआ है। पेट की बीमारी में इसका पानी पीना बहुत अच्छा समझा जाता है। कुसुत्सु चश्मे के पानी में संखिये का भी अंश है। इसीसे उपदंशवालों को इसका जल-पान करने से बड़ा लाभ होता है। जापानियों का तो विश्वास है कि सिवाय इश्क़ के बीमार के और सब प्रकार के रोग इस जल से दूर हो जाते हैं। बाज़े चश्मों का पानी इतना गरम होता है कि न्हाने वालों के शरीर में छाले पड़ जाते हैं।

चाय का प्रचार सन् ८०५ ईसवी में एक बौद्ध-पुजारी द्वारा हुआ। यह पुजारी चीन से आया था। चीन में महन्त लोग रात्रि

जागरण करने के लिए चाय पिया करते थे। चाय की उत्पत्ति सब से पहिले भारतवर्ष में हुई। इसके सम्बन्ध में एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रसिद्ध है। धर्ममुनि नाम के एक महात्मा रात्रि भर जागरण करके भगवद्भजन किया करते थे। एक रात्रि को उन्हें निद्रा ने ऐसा वशीभूत किया कि सन्ध्या कोही पलक लग गई और सोते सोते सब रात निकल गई। जब सवेरे बहुत दिन चढ़े आँख खुली तो जान पड़ा कि आज की रात सोते ही सोते कटी है। महात्मा को बड़ा शोक हुआ और आँखों के ऊपर ऐसा क्रोध आया कि तत्काल पलक काटकर फेंक दी। जिससे कि फिर कभी निद्रा न आवे। परमात्मा का करना ऐसा हुआ कि जहाँ पलक कटकर गिरी थी वहाँ एक वृक्ष उत्पन्न हो गया जिसके पत्तों में निद्रा दूर करने का गुण था। उसी पौधे का नाम आजकल चाय का पौधा है।

चीनियों के सदृश जापान की चाय खौलते हुए पानी में नहीं बनाई जाती। ऐसा करने से उसका स्वाद कड़ुआ हो जाता है। उत्तम चाय के लिए कम खौलता पानी दरकार होता है। चाय बनाते समय ठंडा पानी पास रखना आवश्यक होता है जिससे बहुत खौलता पानी ठंडा कर लिया जा सके। जापान की चाय हरे रंग की होती है। वहाँ चाय दिन में कई बार पी जाती है। पियाले बहुत छोटे होते हैं और चाय में दूध या मिश्री नहीं पिलायी जाती। जापान मे चाय का अधिक प्रचार सत्तरहवीं सदी से हुआ है। आजकल बाज़ारों में चाय की अनेक दूकानें मौजूद हैं। आदर सत्कार मे चाय का वर्ताव ही किया जाता है। जापानियों की चाय की दुकानें खूब सजी होती हैं। साथ में एक छोटा सा बग़ीचा भी होता है जिसमें बैठकर लोग चाय पीते हैं और स्वादिष्ठ पदार्थ खाते हैं। दस मित्र बैठकर इधर उधर की बातें करते हैं। चाय पिलाने के लिए कहीं कहीं सुन्दर युवती नियत रहती हैं।

पुरानी कहानी सुनने का जापानियों को बड़ा शौक़ है। उस देश में सैकड़ों आदमी क़िस्से कहानी कह कर ही गुज़र क़रते हैं। जो

प्रसिद्ध कथक्कड़ हैं उन्होंने अपने स्थान नियत कर रक्खे हैं। वहाँ वे रोज़ तरह तरह के क़िस्से सुना कर लोगों का मन मगन करते हैं। ग़रीब मज़दूरों के प्रसन्न करने के लिए जो बातें बनाते हैं वे हाट, बाज़ार और चौराहों पर खड़े होकर उनका मन मोहित करते हैं। ऐसे लोगों की भी वहाँ कमी नहीं है जो बड़े आदमियो के घर जाकर उन्हें अपनी वाणी से प्रसन्न करते हैं। साधारण बात चीत के सिवाय ये लोग मौक़े मौक़े पर श्लोक पढ़ते और गीत गाते हैं। कठताल और चिकाड़ा बजाते हैं। संतालीस रोनिन, तीन राज्य, सत्सूमा युद्ध, तारा और मीना मोटो की लड़ाई मशहूर क़िस्से हैं। आशय-भेद से यह पेशा कई प्रकार का है। "गुन्दन" (युद्धचर्चा ; "हनाशोका"(प्रेम-कहानी) आदि आदि।

जापानियो के नाम कई प्रकार के होते हैं। लाड़ का नाम, विद्या का नाम, कल्पित नाम, मरणोत्तर नाम।

घराने का नाम ही बड़ा नाम है; जिनमें से प्रसिद्ध नाम ये हैं—मिनोमोतो, फ्यूजीवारा, ताचीबाना, आदि।

देशभेद से नाम भी भिन्न भिन्न होते हैं जैसे हिन्दुस्तान में कान्यकुब्ज, सरयूपारी, द्राविड़ आदि। इस प्रकार के जापानी नाम ऊजीया-म्योजीना कहलाते है। यथा-यमामोतो (पहाड़ की जड़ में रहने वाले)। ता-ना का (चावल वाले प्रान्त के लोग)। मत्सुमूरा (देवदारुमय प्रदेश के निवासी)।

साधारण नाम ज़ोकूम्यो या सूशो कहलाते हैं। बड़े लड़के के नाम के अन्त में तारो शब्द होता है। दूसरे लड़के के नाम में जीरो, तीसरे में सबूरो आदि आदि। जैसे जेनतारो, सुनीजीरो, इत्यादि कभी केवल सख्यावाचक नाम ही व्यवहृत किये जाते हैं। इन अकेले शब्दो का अर्थ होता है बड़ा लड़का, दूसरा लड़का, तीसरा लड़का आदि।

यथार्थ नाम इस भाँति के होते हैं, मशीगे, योशीसादा, त्मोत्सू, तकाशी।

बचपन में लाड़ का नाम होता है जो १५ वर्ष की अवस्था में बदल दिया जाता है ।

समाचार-पत्रों में बहुधा कल्पित नाम अधिक व्यवहार में आता है । जब लेखक अपना असली नाम प्रकाश नहीं करना चाहता तब दोजिन (संसारत्यागी), सान्तिन (पार्वतीय), कोजी (उदासीन पण्डित), ओकीना (वृद्ध पुरुष); इत्यादि नाम रख लेता है ।

मकानों के नाम इस प्रकार रक्खे जाते हैं:—

बाशोआन (कदलीगृह) सुज़ूनोया-नो-अरूजी (घंटाघर) आदि आदि ।

नृत्य—कारिणी स्त्री, नाटकपात्र, कथक्कड़, तमाशाकरनेवाले अपने अपने नाम अपने गुणों से रखते हैं। भारतवर्ष में भी ऐसे नाम हैं यथा—बुलबुल, मनसुखा, वेदव्यास, मदारी आदि ।

मरणोत्तर नाम प्रसिद्ध पुरुषो को दिया जाता है । इतिहास में प्राचीन मिकाडो इसी नाम से अभिहित किये जाते हैं । यथा-किम्मू, तिन्नो, किंगो, कोगो आदि ।

स्त्रियों के नामों में ऐसा बखेड़ा नहीं है । उनका एक ही नाम होता है जो किसी पुष्पादि सुन्दर पदार्थ के नाम पर होता है। ओ शब्द का अर्थ श्रीमती है । ओ ! कीकू (श्रीमती राजपुष्प)। ओ टेकी (श्रीमती वंशो) । ओ जिन (श्रीमती रूपा)। ओ हारू (श्रीमती बसन्ती) । कारू (सुगन्धमयी) ।

नाम बदलने की आवश्यकता समय समय पर हुआ करती है। जब एक लड़का गोद रक्खा जाता है तो उसका नाम भी बदल दिया जाता है । वर्तमान शासन ने शहर और जगहों के नाम भी बदल दिये है । राजधानी यद्दो का नाम अब टोकियो कर दिया गया है ।

आज कल जापान में जितना ज़ोर शिक्षा पर है उतना किसी और पर नहीं। उन्हें यह निश्चय हो गया है कि बिना विद्या प्राप्त किये किसी जाति की उन्नति नहीं हो सकती। विद्या बिना उन्नति की चेष्टा करना बालू पर महल बनाना है। इस देश में शिक्षा-प्रणाली अमरीकाके ढंग पर है। वर्तमान में ऐसा कोई वर्ष नहीं जाता जिसमें कुछ न कुछ नया सुधार न होता हो। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि केवल बातूनी बनजाने की शिक्षा पाने की अपेक्षा शिल्पनिपुण बनना परमोपयोगी है और इसके लिए पृथक् पृथक् विश्वविद्यालय होना परमावश्यक है। स्कूल मे लड़कों को सदाचरण का पाठ दिया जाता है और उन की शारीरिक वृद्धि पर भी ध्यान रक्खा जाता है। कारण यह है कि जब तक मनुष्य के तन और मन दोनों अच्छे प्रकार उन्नत न हों, तब तक उसकी यथार्थ उन्नति नहीं है। सब मदरसों मे सदाचरण, व्यायाम, पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। कृषि-प्रधान इलाक़ो मे खेती सम्बन्धी बातें पक्की करके समझाई जाती हैं। मेहनत-मजदूरी करनेवालो के लिए, उनकी आवश्यकता के अनुसार, शिक्षा का प्रबन्ध है। स्त्री-शिक्षा के लिए सन् १८७१ ई० मे इस प्रकार राजाज्ञा निकली थी—"उन माताओं का शिक्षित होना कितना ज़रूरी है जिनकी सन्तान पर देशोन्नति निर्भर है और जिनकी शिक्षा के लिए इतनी चेष्टा हो रही है। यह

बात माताओं के ही हाथ में है कि बच्चों के हृदय में विद्या का पूर्ण अनुराग उत्पन्न कर दें। माताओ के शिक्षित होने से ही भावी सन्तान के शिक्षित होने की आशा कर सकते हैं।"

इँगलैंड की भाँति जापान में भी सब बच्चों को स्कूल जाना ज़रूरी हो गया है। फ़ी सदी ९० लड़के स्कूल में हाजिर होते हैं। राजाज्ञानुसार तो केवल चार वर्ष स्कूल मे ज़रूरी पढ़ना पड़ता है; परन्तु अपने उत्साह से, फ़ी सदी ६० लड़के, आठ आठ वर्ष तक, पढ़ते है और स्कूल की बड़ी सनद हासिल करते हैं। जापान में ऐसे ग़रीब लोग भी हैं जो अपने बच्चो को बचपन से ही उदर-पालनार्थ काम पर भेजते हैं। ऐसे लड़के चार वर्ष से अधिक स्कूल में नियमित नहीं जाते। परन्तु जब उन्हें काम से फुरसत होती है तब वे पढ़ने लिखने में लग जाते हैं।

सन् १८७१ ईस्वी में शिक्षा-विभाग का पृथक् प्रबन्ध किया गया। वह विभाग सर्व प्रधान कर्मचारी मंत्रियो की सभा में गिन गया। दो वर्ष पीछे यूनिवर्सिटी तथा प्राइमरी और सेकिंडरी स्कूल को एक मार्ग पर चलाने की नियमावली बनाई गई। जिसमे आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्तन हुए। शिक्षा-विभाग में तीन बड़े डाइरेक्टर हैं जो साधारण शिक्षा, मुख्य-शिक्षा और शिल्प-शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। इनकी सहायता के लिए कौंसिलर, सेक्रेटरी, इन्स्पेक्टर और एक्जामिनर लोग मुक़र्रर हैं। ग्राम्य-पाठशाला और तहसीली मदरसो के निरीक्षक तहसीलदार, ज़िला स्कूलों के परिदर्शक कलक्टर (ये छोटे मदरसो पर भी ध्यान रखते हैं), कमिश्नरी भर के प्राइमरी और सेकिंडरी स्कूलो के बड़े हाकिम कमिश्नर साहिब हैं। इन सब के ऊपर सूबे भर की शिक्षा-प्रणाली का प्रबन्ध करने वाले गवर्नर हैं जो शिक्षा-विभाग के मत्री को सब प्रकार की रिपोर्ट देते रहते हैं। प्राइमरी स्कूलो में लड़कों के आचरण पर बड़ी दृष्टि रक्खी जाती है। सर्व साधारण को जितनी बातों का

जानना परमावश्यक है वह सब लिखाया पढ़ाया जाता है। बच्चों की शारीरिक बल-वृद्धि और बढ़वारी ध्यान मे रक्खी जाती है। नक़शा खींचना, गाना और दस्तकारी का काम भी सिखाया जाता है। प्राइमरी स्कूल के बड़े दरजों में भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, चित्रकारी, गाना और कसरत तथा लड़कियों को सीना पिरोना भी सिखाया जाता है। इनके सिवाय कृषि, व्यापार और दस्तकारी की बातें तथा अँग्रेज़ी भाषा भी सिखाई जाती हैं।

६ वर्ष की अवस्था में लड़का पढ़ना शुरू करता है और ८ वर्ष में प्राइमरी शिक्षा पूर्ण कर चुकता है। मिडिल स्कूलो में आजकल बड़ी भीड़ रहती है। कारण यह है कि बिना मिडिल पास किये लड़का किसी उद्यम की शिक्षा में नहीं लिया जाता। जापान में फ़ौजी काम तीन वर्ष तक सब किसी को करना पड़ता है, परन्तु जो लोग मिडिल पास कर लेते हैं वे २८ वर्ष की उम्र तक इससे बचे रहते हैं। और इस पीछे केवल एक वर्ष उन्हें फ़ौजी क़वाइद करनी पड़ती है।

अभी तक उच्चशिक्षा के लिए जापानी भाषा में पूरे ग्रन्थ नहीं है, इसलिए विदेशी भाषा की सहायता से ही शिक्षा पूर्ण होती है। बहुत सी बातें जर्मन और फ़ान्स भाषा मे पढ़नी होती हैं। अँगरेजी भी बड़ी सहायक होती है। विदेशी भाषाएँ केवल द्विभाषिया बन जाने की इच्छा से ही नहीं पढी जातीं, किन्तु इनके सीखने का मूल कारण यह है कि इनके द्वारा यूरोपियन-विज्ञान और शिल्प खूब समझा जाता है। प्राइमरी शिक्षा के पीछे, लड़कियों के पढ़ने का सिलसिला पृथक् हो जाता है। स्त्रियो की यूनीवर्सिटी ही अलग है। छोटे छोटे स्कूलो मे अधिक से अधिक पाँच आने फ़ीस है और बड़ो में एक रुपया। बहुत से लड़कों की फ़ीस मुआफ़ भी रहती है।

जापानियों की शिक्षा-प्रणाली में अनेक बातें ध्यान देने के योग्य हैं। उनका उद्देश्य शिक्षा से यह नहीं है कि लड़के पढ़ लिखकर

अपना पेट पालने लायक़ हो जायँगे। वे यह सोचते हैं कि हमारी प्रजा पढ़ लिखकर एक अच्छी जाति बनेगी। सब विद्यार्थियों का ध्यान देश के नाम पर है। सन् १८७६ से ही किंडरगार्टन स्कूल खुले हैं। स्त्रियों के लिए ऐसा स्कूल भी है जहाँ उन्हें रोगियों की शुश्रूषा करने का काम सिखाया जाता है। छोटे छोटे बच्चों के पढ़ाने के लिए औरतें अधिक पसन्द की जाती हैं। इसलिए वहाँ इनको अध्यापकी काम सिखाने के लिए नार्मलस्कूल भी हैं।

यद्यपि देश भर में पढ़ाई का ढंग एक सा है परन्तु ज़िले ज़िले में वहाँ की ख़ास बातें भी बताई जाती हैं। किंडरगार्टन स्कूल से लेकर यूनिवर्सिटी तक क्रमशः बढ़ती चढ़ती शिक्षा दी जाती है। जापानी जाति की भावी दशा का ध्यान रखकर लड़कों को बचपन से ही उच्चाशय करने का विचार रहता है। फ़ौजी रीति से कसरत करना सब प्रकार के मदरसों में प्रचलित है। पाठशालाओं के मकान और आस पास की आब-हवा के विचार के साथ साथ लड़कों के स्वास्थ्य-सुधार पर खूब ध्यान दिया जाता है। स्वास्थ्य पर ध्यान रखने वाला एक ख़ास महकमा है। स्कूलों में ताजा हवा के आने जाने, रोशनी रहने और पीने के लिए निर्दोष पानी मिलने का सब जगह प्रबन्ध रहता है। डैस्क और बेंच ख़ास तरह से बनाये गये हैं। सब जगह निगरानी के लिए डाक्टर नियत हैं जो स्कूल के सिवाय विद्यार्थियों के माँ-बाप से मिलकर लड़कों के घर का सुधार भी कराते रहते हैं। ध्यान सब का यह है कि जिन लड़कों के हाथ में देश का भाग्य है वे शरीर और ज्ञान दोनों में पुष्ट हों।

जापान में लड़कों को किसी विशेष मत की शिक्षा नहीं दी जाती। उनको सदाचारी बनने और शुद्ध जीवन व्यतीत करने की प्रतिदिन हिदायत दी जाती है। जापानियों का ध्यान है कि लड़कों को किसी एक धर्म का भक्त बना देने से वह फिर एक

जंजाल में पड़ जाता है और पढ़ने लिखने के बदले दूसरी तरह की उधेड़ बुन में ही लग जाता है । स्त्री-यूनिवर्सिटी के प्रेसीडेंट प्राफ़ेसर जिन्ज़ो नरूसी का कथन है कि—

"मैं उन धार्मिक लोगों की शिक्षा के बिलकुल विरुद्ध हूं जिन्होंने इसलिए पाठशाला खोली हुई हैं कि लड़को को पढ़ा लिखा कर अपने धर्म मे दीक्षित करें। ऐसे स्कूल चिड़िया फँसाने के जाल के समान हैं । ऐसा कार्य न शिक्षा ही की उन्नति करता है और न इससे धर्म का ही कुछ भला होता है। शिक्षा और धर्म साथ साथ कभी न सिखाने चाहिएँ । कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि लड़कों को सब धर्म झूंठे बताये जाते हैं, तथा नास्तिकता का उपदेश दिया जाता है। यह भी उतनाही बुरा है। हमको धर्म की इन दोनों बातों से लड़कों को बचाना चाहिए। शिक्षाकाल में विद्यार्थियों को सब धर्म एक से समझने उचित हैं। शिक्षको का बड़ा काम यह है कि विद्यार्थियों का आचरण उच्च श्रेणी का हो, सत्यता में प्रेम हो। धर्म की जिन बातों में मत-भेद है उनके विषय मे शिक्षक कुछ न कहें।"

सदाचरण-शिक्षा के लिए सब स्कूलों में समय नियत है। शिक्षा-विभाग की नियमावली में लिखा है—"सदाचरण-शिक्षा से तात्पर्य यह है कि बच्चों का सात्विक गुण बढ़ाया जाय और सत्कर्मों मे उनकी रुचि उपजाई जाय"। इसके सिखाने की युक्ति यह है कि सब से पहिले निम्नलिखित कर्मों मे उनकी श्रद्धा उपजाई जाय—माता पिता की सेवा, सब पर दया, मित्रता, स्वल्प व्यय, सत्य, आत्मदमन, साहस आदि आदि । इस पीछे यह बताना चाहिए कि सर्व साधारण तथा राज्य के लिए उनका क्या कर्तव्य है । इस प्रकार के उच्च विचार करते हुए उनके मन में उच्चाभिलाप और दृढ़ता उत्पन्न करनी चाहिए। साथ ही परोपकार-वृत्ति, देशानुराग और राजभक्ति भी सिखाना आवश्यक है। ये बातें सिखाने के लिए

प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन-चरित्र, महात्माओं की वाणी और योद्धाओं की करनी में से उदाहरण चुने जाते हैं।

लड़कियों के मदरसे मे स्त्री-जनोचित कर्मों की प्रधानता होती है। इतिहास, भूगोल, विज्ञान और चित्रशिक्षा सिखाने में भी उत्साह दिया जाता है। अध्यापकगण जब लड़को को किसी तरह सुमार्ग से विचलित पाते हैं तो उन्हे झिड़की भी दे सकते हैं।

अध्यापक लोग तीन प्रकार के हैं। दस्तूर के मुआफ़िक पास किये हुए,—जो सब चीज़ें पढ़ा सकते हैं। मुख्य विषयों के पढ़ाने वाले, और सहायक शिक्षक। पढ़ानेवालों को सदाचारी होना बड़ा ज़रूरी है। इनको बड़ी कठिन परीक्षा पास करनी होती है। शिक्षकों का आदर माता पिता के समान सब विद्यार्थी करते हैं। इनको पेंशिन भी अच्छी मिलती है।

यूरोपियन-भाषा सीखना शिक्षा का मुख्य अङ्ग है। उच्चशिक्षा में सब से अधिक समय विदेशी भाषाओं में ही ख़र्च होता है।

मिडिल में अंगरेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषा में से कोई एक ली जाती है। पहिले चार सप्ताह में सात घंटे अँगरेजी पढ़ाई जाती थी। पांचवें वर्ष छः घंटे। सब से अधिक स्कूलों मे अँगरेजी सिखाई जाती है। चीनीभाषा जो इतने आदर की भाषा थी, अब कम पढ़ाई जाने लगी है।

जापानी लोग पर्यटन को भी शिक्षा में हीं गिनते हैं। सन् १८७१ में एक राजाज्ञा इस प्रकार निकली थी—"युवावस्था में विदेशों की सैर करना बहुत अच्छा है। इससे संसार-सम्बन्धी ज्ञान बहुत बढ़ता है। लड़के और लड़कियाँ, जिनको भविष्यत् में जापान के पिता माता बनना है, देशान्तरों को जाँय, इनके विद्वान् होने से देश का कल्याण होगा।"

इसी आदेश को पूर्ण करने के लिए, प्रतिवर्ष अनेक विद्यार्थी भूमण्डल पर पर्यटन करने जाते हैं और जगत् की दशा देखते हैं।

बिना ऐसी यात्रा किये जापानियों का पढ़ना लिखना पूरा नहीं होता। अध्यापक और विद्यार्थियों के सिवाय अन्य लोग भी, यदि गवर्नमेंट को समझ में विदेशयात्रा से देश का कुछ मङ्गल करने योग्य हो, तो सर्कारी ख़र्च से पर्यटन को भेज दिये जाते हैं। होनहार लड़कों के लिए कई सभा भी सहायता करती हैं।

जापानी मा-बाप अपने बच्चों को पढ़ाने लिखाने में पूरी चेष्टा करते हैं। जब लड़के ने मिडिल पास कर लिया तो ग़रीब माता पिता भी उसको और अधिक पढ़ाने के लिए सब भाँति के कष्ट उठाते हैं। एक बहिन ने अपने भाई के पढ़ाने के लिए गाने नाचने का पेशा (गीशा) ग्रहण कर लिया था। जिन लड़कों ने बड़ी ग़रीबी से पढ़ा है उन्हों ने अपने उद्योग से ऐसी सभा बनाई हैं जो असमर्थ विद्यार्थियो की बहुत सहायता करती हैं। ऐसी सभा का रुपया विद्यार्थी गण समय पाकर, व्याज समेत, लौटा देते हैं। ऐसी सैकड़ों सभा हैं जिन्होंने अनेक लड़को को सहायता दी है। बड़े अमीरों के यहाँ ऐसे लड़के पाये जाते हैं जो किसी स्कूल में पढ़ते हैं और खान पान अमीर के यहाँ से पाते हैं। इसके बदले में जब उन्हें स्कूल से फ़ुरसत मिलती है तब वे उनके घर का काम करते हैं। आजकल कितने ही उच्च कर्मचारी ऐसे हैं जिन्होने इसी तरह विद्याध्ययन किया है।

इम्तिहान लेकर दर्जा चढ़ाने का क़ायदा जापानी कम करते जाते है। इम्तिहान केवल उन लोगों का लिया जाता है जो किसी नौकरी पाने के लिए दरख़्वास्त करते हैं। बहुत से उम्मेदवारो में से लायक़ आदमी छाँटने के लिए इम्तिहान का तरीक़ा बहुत अच्छा है।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में स्त्री-यूनिवर्सिटी के प्रेसीडेंट का व्याख्यान पढ़ने योग्य है। सुनिए—

"शिक्षा-सम्बन्ध में जो राजाज्ञा प्रकाशित हुई है उसको सर्वदा स्मरण रखना चाहिए और साथ ही यूनिवर्सिटी के क़ायदों को भी अक्षर अक्षर, पालन करना चाहिए। क्योंकि इनके अनुसार चलने से ही शिक्षा-कार्य उत्तम प्रकार से होगा। लड़कियों को अपने शुभ-चिन्तकों का सम्मान कभी न भूलना होगा। अपनी हिम्मत पर विश्वास रखना बहुत अच्छा है। निकम्मी रहने और फ़िज़ूल ख़र्च करने की बराबर कोई दोष नहीं है। अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए दूसरों को आदर दें। समाज में सदा शिष्टता का व्यवहार किया जाय और अभिमान का कभी नाम भी न लें। अपने विचारों की दृढ़ता और उच्च-हृदयता के कारण स्त्रियों का प्रेम और आदर पाने के योग्य बनना चाहिए।"

"लड़कियों को चाहिए कि जो कुछ वे पढ़ें या नई बात सीखें उसके मूल कारण की खोज अपनी बुद्धि से करें। केवल अँधों की भाँति अपने शिक्षकों के कहने को ही यथेष्ट न समझ लें। भली भाँति समझ कर पढ़ने और कार्य-कारण का सम्बन्ध जान लेने से उनको अपने स्वतंत्र विचार स्थिर करने की योग्यता प्राप्त हो जायगी।"

"दुर्बल स्त्री सर्वदा रोगग्रसित रहा करती है। वह अपने लिए ही नहीं वरन् उस घर के लिए भी दुःखदायिनी होती है जहाँ की वह मालकिन है। और फिर उसका कुफल उसके जीवन के साथ ही शेष नहीं हो जाता वरन सन्तान तक को दुखी बनाता है और समाज के लिए हानि का कारण होता है। अतएव लड़कियों को अपने शरीर को पुष्ट रखना बड़ी आवश्यकताओं में से है। इसीलिए, सफ़ाई, खान पान, कपड़े, पठन-पाठन और शयनादिक सब कामों में स्वास्थ्य के नियमों का ध्यान रखना चाहिए।"

जापान में शिल्प, वाणिज्य और कृषि के कई स्कूल हैं। खेती और व्यापार के दो कालिज ऐसे हैं कि जिनकी बराबरी संसार में

कोई कालिज नहीं कर सकता। स्त्रियों को भी शिल्प-शिक्षा देने का प्रबन्ध कर दिया गया है।

पढ़ाने लिखाने का प्रबन्ध जापान के जेलख़ानों तक में मौजूद है। सर्कार की इच्छा है कि सब लोगों को शिक्षित किया जाय। सब क़ैदियो को काम करना पड़ता है। जिन्होंने कभी काम नहीं किया उनको भी काम करना होता है। कारीगर लोग क़ैदख़ाने में आकर भी अपने पेशे के काम को करते रहते हैं। क़ैदियों को प्रसन्न, आरोग्य श्रौर नियम से रखने की पूरी चेष्टा की जाती है। चौकीदार लोग शिक्षित होते हैं श्रौर क़ैदियों के साथ उचित व्यवहार करना ख़ूब जानते हैं। बेंत की सज़ा न स्कूलों में है श्रौर न जेलख़ानों मे। क़ैदियों को एकान्त वास करने या अँधेरी कोठरी में रखने की सज़ा है। अँधेरी कोठरियों में भी निर्दयता का व्यवहार नहीं है। सब कोठरियां मे एक घंटी लगी रहती है जिसकी आवाज़ सुनते ही चौकीदार आ मौजूद होता है। रहने सहने के लिए क़ैदियों को यथेष्ट हवादार श्रौर रोशनी वाली जगह मिलती है। संक्रामक रोगो से बचाने का पूर्ण प्रबन्ध किया जाता है श्रौर शारीरिक शुद्धि में तनिक भी आलस्य नहीं दिखाया जाता। अकस्मात् यदि किसी को कोई संक्रामक रोग हो जाय तो वह सब से अलग कर दिया जाता है श्रौर दूसरे लोग उस से मिलने नही पाते।

जिन लोगो को बे मशक़्क़त सजा होती है उनको भी तन्दुरुस्ती के लिए, कुछ न कुछ काम व्यायाम की भांति करना होता है। स्नान सबके लिए ज़रूरी है। विदेशियो को न्हाने का वर्तन अलग अलग दिया जाता है। क़ैदियो को चावल श्रौर गेहूँ साथ साथ उबाल कर दिये जाते हैं जो एक वक़्त में लगभग आध सेर आदमी पीछे होते हैं। विदेशियों को उनके देश का भोजन दिया जाता है। क़ैदियों को पढ़ाने श्रौर नये पेशे सिखाने में सर्कार की यह अभिलाषा है कि, क़ैद से छुटने पर वे धर्मपूर्वक अपना पालन पोषण कर सकें। जेलख़ानों

मे दो प्रकार की मशक़्क़त है। एक का फ़ायदा सर्कार लेती है और दूसरे का यह बन्दोबस्त है कि मज़दूरी क़ैदियों को देकर दुकानदार लोग अपना काम कराते हैं। जेलख़ाने की ज़रूरी चीज़ें और सर्कारी दफ़्तरों मे बरते जानेवाले पदार्थ, सर्कारी इंतिज़ाम से बनते हैं। जेलख़ानों मे इतने प्रकार के काम होते हैं। कपड़ा बुनना, बढ़ई, दर्जी, लुहार का काम, ईंट और काग़ज़ बनाना तथा राज-मिस्त्री का पेशा-सर्कारी मकानों के लिए जितनी ईंटें दरकार होती हैं वे जेलख़ाने मे ही तैयार होती हैं।

दुकानदार लोग जेलख़ाने में ऐसी चीज़ें तैयार कराते हैं-रेशमी कपड़े, मोज़ों के तले, सूती फलालैन, चटाई, दियासलाई, पंखे आदि।

जो क़ैदी अच्छे चाल चलन से रहते हैं उन्हें जेलख़ाने का गवर्नर मेडिल देता है। इनके देखने से ही क़ैदी के चाल चलन का पता लगता है और उसी के अनुसार उससे व्यवहार किया जाता है।

मेडिल वाले क़ैदियों को अच्छे कपड़े दिये जाते हैं। वे महीने में दो चिट्ठी भेज सकते हैं। उनको सब से पहिले स्नान कराया जाता है और न्हाने को गर्म पानी मिलता है। जिसके पास एक मेडिल होता है उसे हफ़्ते में एक बार, दो वाले को दो बार और तीन वाले को तीन बार, स्वादिष्ठ पदार्थ खाने को दिये जाते हैं। ऐसे क़ैदी जो बाहिर की मज़दूरी पर लगाये जाते हैं उन्हें इस प्रकार द्रव्य मिलता है—

एक मेडिलवाले को मज़दूरी का ३/१० भाग, दो मिडिलवाले को ४/१० और तीन मेडिल वाले को ५/१० भाग दिये जाते हैं।

एक दर्शक ने जेलख़ाने के कारबार को देखकर लिखा है कि "क़ैदियों को काम करते हुए देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। सैकड़ों आदमी इकट्ठे होकर कपड़ा बुनने, बर्तन रंगने, रस्से, टोकरे

बनाने, चटाई बुनने, दर्ज़ी-बढ़ई-लुहार का काम करने, में लगे हुए होते हैं। आठ जगह कपड़ा बुना जाता है। वेशुमार वर्तनो पर रोगन चढ़ाया जाता है। छापेख़ाने मे क़ानून की किताबें छपती हैं। हमारे जाते ही थोड़ी देर के लिए काम बन्द कर दिया गया। फिर ज्योंही शुरू करने का इशारा दिया, सब अपने अपने काम मे लग गये। बिना आज्ञा लिए बात करने की आज्ञा नहीं है। जब बोलना हो उच्च स्वर से बोलें। काना फूसी न करें। काम करने के घंटे इस प्रकार हैं—

जनवरी और दिसंबर में ७ घंटे। नवंबर में ७½ घंटे। फ़रवरी मे ८ घंटे। अक्टूबर में ८½ घंटे। मार्च और सितंबर में ९ घंटे। अपरैलमें ९½ घंटे। मई और अगस्त में १० घंटे। जून और जुलाई १०½ घंटे।

चिट्ठी भेजने, रिश्तेदारों से मिलने और किताबें पढ़ने का क़ानून बहुत कड़ा नहीं है। यद्यपि चिट्ठियाँ पहिले चौकीदार पढ़ लेता है परन्तु कुछ रोक नही है। धर्म-विचारों में कोई बाधा नहीं दी जाती। ईसाइयों के लिए पादरी उपदेशक होते हैं। प्रत्येक क़ैदी को उसके विश्वास के अनुसार ही दुष्कर्म त्यागने का उपदेश दिया जाता है। निस्संन्देह जेलख़ानो का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध है।

लड़के-क़ैदियो के लिए स्कूल लगता है। सोलह वर्ष से कम उम्र वालों को पढ़ना, लिखना, हिसाब और गाना सिखाया जाता है। जिनकी अवस्था सोलह और बीस के बीच मे है उन्हें जापान का इतिहास और भूगोल भी सिखाया जाता है। पहिली बार क़ैद में पड़नेवालो के लिए ये सब कोशिशें की जाती हैं। जो लड़का अँग्रेज़ी पढ़ा होता है उसे और अधिक अँग्रेज़ी सिखाई जाती है। पढ़ने की किताबें सरकार से दी जाती हैं। कई क़ैदी अँगरेज़ी जाननेवाले हो तो उनके लिए नया उस्ताद मँगाया जाता है।

क़ैदी जब छुटता है तो उसके लिए रोज़गार का ढंग लगा दिया जाता है। क़ैद में रह कर ये लोग बहुत सुधर जाते हैं।

जापानियों की शिक्षाप्रणाली का सब से प्रधान तात्पर्य यह है कि मनुष्य सज्जन बनें। धर्म्म-पूर्वक जीवन व्यतीत करें; शरीर से पुष्ट हों; शिक्षकों का आचरण अनुकरणीय हो; अन्य देश की भाषा और व्यवहारों से परिचित हों और वाणिज्य और कृषिकार्य में उन्नति हो।

पूर्वकाल में शिक्षा का प्रबन्ध बौद्ध लोगों के हाथ में था और मन्दिर पाठशाला का काम देते थे। बौद्ध-धर्म के सूत्र कंठ करना सब से बड़ी बात मानी जाती थी। जब राज्यका प्रबन्ध तोकूगावा के घराने में आया अर्थात् शोगन पद प्रतिष्ठित हुआ तब जाकर पढ़ाई का ढंग बदला। उन दिनों में (१६०३–१८६७ ई०) कनफ्यूशियन विचार के लोगों की अधिकता रही। इसी धर्म के मूल ग्रन्थ पढ़ाये जाने लगे। जिस प्रकार चीन के लोग उन पुस्तकों को कंठाग्र करते थे उसी तरह जापानी भी रटते थे। चीनी भाषा के सिवाय जापानी-साहित्य और इतिहास भी पढ़ा जाता था। उन दिनों मे डच लोगों की आमदरफ्त नागासाकी में थी। उनकी पुस्तकें भी कोई उत्साही युवक बड़े चाव से पढ़ते थे। उनका विश्वास था कि वैद्यक और विज्ञान की अनेक शिक्षा डच लोगो के ग्रन्थों मे मिलेंगी। यह सब बहुत ही गुप्त रीति से होता था क्योंकि उन दिनो सरकार विदेशियों से बड़ी नफ़रत करती थी। सन् १८६८ से पीछे शिक्षाप्रणाली का भी सुधार हुआ। अमरीका वालों ने इस काम मे पूर्ण सहायता दी। देश में नई भाषा और नई बातें सीखने का इतना चसका हुआ कि जापानी विदेशियो के सेवक बनकर उन से विद्या प्राप्त करने लगे। जहाज़ों में छोटे दर्जे का काम लेकर दूर देशों में पहुँचे। वर्तमान में परम प्रसिद्ध ईटो और इनोई अपने पुरुषार्थ से विद्वान् होकर बड़ी योग्यता को पहुँचे हैं।

टोकियो-यूनीवर्सिटी के अधीन छः प्रकार की शिक्षा है अर्थात् क़ानून, डाक्टरी, इञ्जीनियरी, साहित्य, विज्ञान और कृषि। डाक्टरी-कालेज को जर्मन के विद्वान् चलाते हैं। वर्तमान मे कई जापानी भी पढ़ाने योग्य हो गये हैं। और कालिजो मे भी विदेशी प्रोफ़ेसर काम करते हैं। विद्यार्थियों की संख्या इस यूनीवर्सिटी के अधीन २,७०० के लगभग है। क्यूटो मे एक और यूनीवर्सिटी है जिसमें ३६० लड़के हैं। सर्कारी बड़े मदर्से और भी हैं; यथा—स्त्री और पुरुषो के लिए दो पृथक् पृथक् नार्मल स्कूल, व्यापारी-मदरसा और विदेशी भाषा सिखाने का स्कूल। इनमे ऊँचे दरजे की शिक्षा होती है। इनके सिवाय शिल्पशाला, अमीरों का मदरसा, फ़ौजी और जहाज़ी विद्यालय, चित्रशाला, संगीत घर, अंधे और बहरों की पाठशाला और कृषि-कालेज हैं। २६,००० प्राइमरी स्कूल सरकारी मदद से चलते हैं। इनमें ८८,६६० मास्टर और ४३,०२,६०० विद्यार्थी हैं। १९० मिडिल स्कूल हैं जिन मे २,४१९ उस्ताद ६९,००० तालिब इल्म हैं। कितने ही प्राइवेट कालेज हैं। बोर्डिंग हाउस की अपेक्षा अपने प्रबन्ध से बहुत विद्यार्थी शहरों मे रहते हैं जिनके खान, पान और मकान का बन्दोबस्त शहर के लोग करते हैं। बड़े नार्मल स्कूल के नीचे लड़कियो के कितने ही छोटे छोटे स्कूल हैं। कारीगरी सिखाने का स्कूल बहुत ही बड़ा है।

विद्यार्थी बड़े शान्त-स्वभाव, परिश्रमी और समझदार हैं। नई नई बातें जानने का उन्हें बड़ा शौक है। एक स्टूडेंट ने अपने मास्टर से कहा—"महाशय! अमरीका का इतिहास और अधिक पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। आप हमें यह समझाइए कि पैंट्रन कैसे बनता है।"

जापानी-भाषा बड़ी मधुर है, परन्तु उसका सीखना कठिन है। नमूने की भाँति कुछ बाते यहाँ लिखी जाती हैं। सुनिए।

वातेरेन = पिता।

ओकासान = माता।

को=बच्चा ।

सान=महाशय, श्रीमती ।

सेनसाइ=उस्ताद ।

हाइ=हाँ ।

डोज़ो=कृपापूर्वक

अरीगाता=धन्यवाद है ।

इ-कु-रा=कितना ।

कोरे वा नानी तू मोशी मासूका="यह क्या है ?"

सुकोशीओ अरूकी इरराशाई="थोड़ी दूर पधारने का क्लेश उठाइए ।"

इज़िन-सान अ-ना-ता वाइसान पेगी="विदेशी जी ! चले जाओ ।"

ओ-गा-मेन-ना-साइ="क्षमा कीजिये"। ओहाइओ=नमस्कार।

ओहाइओ विदे न सत्ता="आप बहुत शीघ्र आये हैं ।"

माता दोज़ो इरीशाइ="फिर आने की कृपा कीजियेगा ।"

माता कि मासू="मैं फिर आऊँगा ।"

सायोनारा="नमस्ते (विदा होने के समय) ।

जापानी गिनती इस प्रकार है—

१ इची, २ नी, ३ सान, ४ शी, ५ गो, ६ रोकू, ७ शीची, ८ हाची, ९ कू, १० जू ।

जापानी वर्णमाला का उच्चारण इस प्रकार है—

इ-रो-हा-नी-हो-ही-तो-ची-री-नू-रू-वो-चा-का-यो-ता-री-सो-त्सू-ने-ना-रा-मू-ऊ-ई-नो-ओ-कू-या-मा-के-फू-को-यी-ती-आ-सा-की-यू-मे-मी-शी-ऐ-ही-मो-से-स्सू ।

इन अक्षरों से एक सूत्र बनता है जिसका उच्चारण इस भाँति होता है—

इरोवा निआइदो

चिरी नूरू वो

चागा यो तारे जो
त्सुने ना रान ?
उई नो आकूयामा
क्यो कोइते
असाकी यूमे मी जी
एइ मो से जू

इसका अर्थ यह है—

यद्यपि उनके रंग सुहावने हैं। कलियाँ मुरझा जाती हैं और हमारे इस संसार में सदा कौन रहेगा ? वर्तमान जगत का सर्वोत्कर्ष तत्व पार करके अब मैं भ्रम में न पड़ूंगा, न मतवाला हूंगा।

तात्पर्य—संसार माया-जाल है। इसमें मैं न पड़ूंगा।

जापानियों ने लिखना पढ़ना चीन और कोरिया से सीखा है। उपर्युक्त भाषाओं में प्रत्येक शब्द का एक चित्र है। यथा—मनुष्य के चित्र में सिर और दो टाँगें बना दी जाती है। घोड़े के लिए उसका सिर, अयाल और चार टाँगें बनाई जाती हैं। समय पाकर ये चित्र इतने बदल गये हैं कि चित्र को देखकर मूल पदार्थ का पता लगाना सरल नहीं है। लिखावट में इतना भेद नहीं है जितना उच्चारण में है।

जापानी अक्षरों का लिखना बहुत कठिन है परन्तु वे देखने में बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। जापान में अच्छे अक्षर लिखने वाला ख़ूब तारीफ़ पाता है। इस कठिन लिखाई का एक लाभ यह भी है कि सरल प्रकार के विदेशी अक्षरो का लिखना वे बहुत जल्द सीख लेते हैं। विदेशियो के हस्ताक्षर नकल करना उनके बाँए हाथ का कर्तव है। क्लर्क लोग अपने मालिक के दस्तख़त ऐसी सफाई से बनाते हैं कि स्वयं मालिक उन्हें पकड़ नहीं सकता। यही कारण है कि जापान मे दस्तख़तों की अपेक्षा नाम की मुहर लगाई जाती है और वह भी एक ख़ास स्याही से।

जापानी-भाषा के वाक्य कोरियन-भाषा के समान बनते हैं। पृथक् होने पर भी इसमें बहुत से शब्द चीनी-भाषा के हैं। आज कल जो नये शब्द आते हैं उनके लिए जापानी लेखक चीनी शब्दों का ही व्यवहार करते हैं। टेलीग्राम, बाइसिकिल, फ़ोटोग्राफ़, आदि शब्दों के लिए चीनी-शब्द व्यवहार किये गये हैं। जापानी लोग विशेष्य से पहिले विशेषण को रखते हैं। कर्म क्रिया से पहिले आता है।

जापानी-भाषा में सब प्रकार के शब्द हैं; परन्तु आश्चर्य है कि गाली देने के लिए कोई ख़ास शब्द नहीं है।

सब से पुरानी पुस्तक का नाम 'कुइजिकी' है जिसमें पुराणों के समान कथा है। इसको हम "जापानी-पुराण" कह सकते हैं। यह सन् ७१२ में बना है। सन् ७२० ई० में 'निहोनगी' नाम की पुस्तक लिखी गई। यह पुस्तक चीनी-भाषा मे लिखी है। इसमें देश का पुराना इतिहास है। सन् ७६० का ग्रन्थ 'मनयूशू' है। जिसका अर्थ "सहस्र-पत्र-संग्रह" किया जा सकता है। इसमे कविता का सङ्ग्रह है और जापानी इसे ऊँचे दर्जे की कविता समझते हैं। इस समय के पश्चात् जापानी और चीनी दोनो भाषा के अनेक ग्रन्थ पाये जाते हैं। गंभीर विषय चीनी भाषा मे लिखे गये हैं। यथा क़ानून और इतिहास। जापानी भाषा मे कविता, विलक्षण कथा और अलङ्कार की पुस्तकें हैं।

सर अर्नेस्ट सातो ने प्रसिद्ध जापानी पुस्तकों का सूचीपत्र इस प्रकार बनाया है—

१—इतिहास—'कुइजिकी' और 'निहोनगी' के सिवाय प्रसिद्ध इतिहास 'दाइ निहोनशी' है। इस पुस्तक को लिखने में एक कमनी चीनी और जापानी विद्वानों की लगी थी और प्रिन्स मीतो ने इसे सत्तरहवीं सदी में प्रकाशित कराया था।

२—अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ—जिनको उन लोगों ने लिखा था जो सरकार से कुछ सम्बन्ध न रखते थे। 'मित्सुकागामी', 'गेम्पी

सीसुइकी', 'हीकेमनोगतारी', 'तिहाकी' आदि। 'निहान ग्वाइशी' सब से पिछला इतिहास है जिसके पढ़ने से सर्व साधारण के हृदय में ऐसा असर हुआ कि शोगन के हाथ से राज्याधिकार लेकर मिकाडो के हाथ पहुँचा दिया। इस पुस्तक के पाँच भाग अँगरेज़ी मे भी छपे हैं।

३—क़ानून की किताबें—'रिपो ने गीगे' और ईगो शीके' प्रसिद्ध हैं।

४—जीवन-चरित्र।

विलक्षण कथा—इन पुस्तकों के पढ़ने से जापान का बहुत प्राचीन हाल जान पड़ता है। इनसे राज परिवार के अनेक चरित्र जान पड़ते हैं। उनकी प्रेम भरी बातें, राजसी ठाठ आँखों के आगे नाचने लगते हैं। ये पुस्तकें अधिक तर स्त्रियों द्वारा लिखी गई हैं जिन्होंने बहुतेरी प्रेमलीला अपनी आँखो देखकर लिखी हैं। पुरानी पुस्तकों मे सहस्र-रजनी-चरित्र की भाँति असंभव कहानियाँ हैं। एक पुस्तक में एक अप्सरा की कथा है जो चन्द्रलोक से आई थी। उसका जन्म बाँस की पंगोली मे हुआ था जहाँ उसका रूप सोने के समान चमकता था। इसी प्रकार की सैकड़ों पुस्तकों में से दो चार का नाम यहाँ लिखा जाता है। "उसबो मनोगतारी", "इसे मनोगतारी" इन दोनो पुस्तकों में दसवीं शताब्दी की बातें हैं। सब कथाओं में विलक्षण पुस्तक "गेजी मनोगतारी" है। इसकी लेख प्रणाली अनेक अलङ्कार-पूर्ण है।

विविध ग्रन्थ—ये पुस्तकें किसी विशेष विषय पर नहीं लिखी गईं। लेख-चातुरी दिखाना ही ग्रन्थकारों का सब से बड़ा अभिप्राय रहा है। 'सूशी' जिसको राज महल की एक स्त्री ने लिखा था, और 'सुरज़री गूसा' एक बौद्ध पुजारी द्वारा लिखी हुई, इस तरह के ग्रन्थो में प्रसिद्ध हैं।

दिनचर्य्या—इनमें 'हुजो की' को पढ़कर चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। इसका लेखक एक बौद्ध पुजारी है। जिसने अपने समय की विपत्तियों का चित्र खींचा है और सांसारिक जीवन के कष्टों को विस्तारपूर्वक समझाया है तथा वैराग्य की प्रशंसा की है। यह सन् १२०० का वृत्तान्त है। 'मुरासाकी शिकीबू' एक प्रसिद्ध स्त्री की दिनचर्या है इसकी भाषा जापानी की अन्य पुस्तकों से बहुत कठोर है।

यात्रा-वृत्तान्त—भी दिनचर्या की भाँति लिखे गये हैं। प्राचीन काल मे जापानी स्वदेश से बाहिर बहुत कम जाते थे। इसीलिए वहाँ यात्रा-संबन्धी कम पुस्तकें हैं। "टोसानीको" एक प्रसिद्ध पुस्तक है जो सन् ९३५ मे लिखी गई थी। इसमें सुदूर 'टोसा' प्रान्त से यात्रा करने का वृत्तान्त है।

कोष—"वाकुन नो शिओरी" जापानी-भाषा का प्रसिद्ध कोष है। "गागन शूरन" भी ऐसा ही है। वर्तमान में 'जिनकाई' (शब्द-सागर) 'कोतोवा नो इज़ुमी' (शब्द-सरिता) अच्छे कोष छपे हैं। 'कुतोवानो चिकामिची' जापानी का अच्छा व्याकरण है।

स्थान-वर्णन—इस संबंध में जो ग्रन्थ बने हैं वे इसी शताब्दी के हैं और सचित्र प्रकाशित हुए हैं जिनमें अनेक स्थानो का पूरा पूरा विवरण दिया गया है। यात्री गण ऐसी पुस्तकों को बड़ी लाभ-दायक समझते हैं। ये पुस्तकें "मेशूज़ूक" कहलाती हैं और एक आकार में छापी गई हैं।

शिन्तो-धर्म की पुस्तकें—'काजीकीडेन' सब से बड़ी है और 'केशोडेन' भी इतनी ही प्रसिद्ध है। इन पुस्तको में विचित्र बात यह है कि ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने भाषा में कोई विदेशी शब्द नहीं आने दिया है। शुद्ध जापानी में लिखी हैं।

बौद्ध-साहित्य—जापानियों ने बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में कोई उत्तम पुस्तक नहीं लिखी। नीच जाति के लोग बौद्ध गीतों को बहुत पसंद करते हैं।

उपन्यास—प्रसिद्ध उपन्यास 'हककॅन डॅन' जिस ग्रन्थकार ने लिखा है उसके २९.० उपन्यास और हैं। 'यूकियो वोरो', 'हीज़ाकुरीगे' ये अच्छे उपन्यासों में से हैं। पिछले उपन्यास में दो यात्रियों की कथा है जो तोकेदो के किनारे किनारे यद्दो से क्यूटो गये थे। ऐतिहासिक उपन्यास बहुत हैं। इनमें सब से अच्छा "इरोटा नुको" है जिसमें ४७ रोनिन्स का जीवन-चरित्र दिया गया है। जापानी को सरल भाषा के लिए 'मेयो सोडन, उपन्यास पढ़ना चाहिए।

अन्य ग्रन्थ—विश्वकोश, कारीगरी, विज्ञान आदि के ग्रन्थ, 'के बाराइक्कन' और 'अराइ हाकू से की' के नीत्युपदेश की पुस्तकें पढ़ने योग्य हैं।

अँगरेज़ी की बहुत सी किताबें जापानी में अनुवाद हो गई हैं और जिस किसी यूरोपियन-भाषा में ये लोग कोई उत्तम पुस्तक देखते हैं फ़ौरन उसको अपनी भाषा मे कर लेते हैं।

अँगरेज़ी उपन्यासों का भाव लेकर जापानियों ने कितने ही उपन्यास लिख डाले हैं। इनका नाम धाम बदल कर इन्होने अपने देश के अनुसार कर लिया है।

जापानी भाषामें उत्तम पुस्तकें ये हैं—

'कैकोकू' (जापान का मुक्त द्वार), ।

'निसॅन गोह्याकू नेन शी' (दोहज़ार पाँच सौ वर्ष का इतिहास)।

तोकूगावा जूगोदाइशी' (ताकूगावा शोगन का इतिहास)।

'वाकू फू सूबोरोन' (राज्यविभाग का अस्त)।

'सिओराइनो निहोन' (जापान का भविष्यत्)।

'योशीदा शोइन (योशीदा शोइन का जीवन चरित्र)।

'सेकेकू रिशी हेंन' (स्माइल कृत सैल्फ हेल्प का अनुवाद)।

'निहन बंगाकू शी' (जापानी-साहित्य का इतिहास)।

'जेनकाई' (शब्दसागर)।

'कोतो वानो इजुमी' (शब्दसरिता)।

'इरोहा जिटेन' (जापानी इंग्लिश-डिक्शनरी)।

'निहोन शोकवाइजो' (जापानी सोसाइटी की डिक्शनरी, ।
'सीयो जीजो' (पश्चिमी देशों की दशा) आदि आदि ।

जापानी काव्य में तुकबन्दी या वजन नहीं है । केवल शब्दावयव गिन कर रक्खे जाते है । छोटे पदों का उदाहरण यह है—

होतोतोगीसू
नाकीत्सूरूकातावू
नागामूरेवा
तादा अरी आकेनो
त्सुकीज़ोनोकोरेरू

उक्त पद में ५-७-५-७-७ इस प्रकार शब्दावयव रक्खे गये हैं।

अर्थ—कोयल जहाँ बोल रही हैं वहाँ प्रातःकाल के चन्द्रमा के सिवाय और कुछ नही है ।

निम्न लिखित विषय कविता के लिए जापानी बहुत पसंद करते हैं । पुष्प, पक्षी, बर्फ़, चन्द्रमा, वृक्षो से गिरे हुए पत्ते, पहाड़ो की झाई, प्रेम, असार संसार, मनुष्य का अल्प-जीवन । ऐसे कवि कम हुए हैं जिन्हों ने प्रातःकाल या संध्या का निरूपण किया हो अथवा नायिका के नेत्रो और कटाक्षो का वर्णन किया हो वा चुम्बनादिक की चर्चा की हो ।

बहुत से कवीश्वर केवल किसी दृश्य का दोहा बनाते हैं—

शीरा कूमोनी
हानेउची कावाशी
तो वू कारी नो
काज़ू सई मि यू रू
आकी नो यू नो सू की

अर्थ—शरच्चन्द्र के प्रकाश से हंसों की पंक्ति जो श्वेत बादलों की भांति, पर फैलाये उड़ी जाती है, एक एक करके गिनी जा सकती है ।

चीन की भाँति जापान में समस्या-पूर्ति की सभायें होती हैं जिनमें तत्काल समस्या-पूर्ति की जाती है। जापानी-समस्या-पूर्ति के भाव को नीचे लिखे छन्द के अनुसार समझिए।

समस्या "तितली निकली"—

खिला फूल धरती पर गिरा।
उठकर वह डाली को फिरा॥
अचरज निरख बुद्धि अति बिचली।
देखा तो एक "तितली निकली"॥

वर्तमान में यह एक फ़ैशन है कि कविता करना सब बड़े लोग जानें। जैसे भारतवर्ष के विद्वान् संस्कृत में कविता कर सकते हैं इसी तरह जापानी विद्वान् चीनी-भाषा में श्लोक रच सकते हैं। अनेक स्त्री पुरुष बड़े आदमियों को छन्दरचना सिखा कर ही अपना उदर पालन करते हैं। जब सभा होती हैं तब उनमें अच्छे अच्छे कवियों को पदक दिये जाते हैं।

समस्या ऋतु के अनुसार होती हैं। वसन्त में कोयल, शरद में चन्द्रमा का बखान किया जाता है। जापानियों का विश्वास है कि यूरोप के लोग रेल, नहर, अंजन आदि की बातें तो बहुत जानते हैं। परन्तु उनको काव्य-रस का ज्ञान बिलकुल नहीं है। स्वयं मिकाडो को भी कविता का शौक है। दर्बार में कवीश्वर रहते हैं। मिकाडो रोज़ सन्ध्या को कुछ पद लिखते हैं। पिछले ९ वर्षों में उन्हों ने २७,००० छन्द रचे हैं। जनवरी के महीने में प्रति वर्ष एक ऐसी समस्या गढ़ी जाती है जिसकी पूर्ति मिकाडो, महारानी और अन्य सरदार लोग करते हैं। प्रजा को भी समस्या-पूर्ति करने की आज्ञा दी जाती है। प्रति वर्ष हजारों पूर्तियाँ एकत्र होती हैं। सन् १९०० में इस भाँति की समस्या थी—"देवदारु पर हँस विराजै"। एक वर्ष इस भाव की समस्या थी—"प्रजा की बधाई है"। इस भाँति की तुक पर भी छंद बन चुके हैं। "जल में छाया देवदारु की"। प्रजा की

ओर से जो समस्या-पूर्ति आती हैं उनमें बड़ी चतुराई से मिकाडो की प्रशंसा की जाती है।

गायिका जिन पदों को गाती हैं वे और प्रकार के हैं। बौद्ध-सम्प्रदाय के भजन और गाँवों के गीतों की रचना अन्य प्रकार की है।

वहाँ ऐसी ऐसी पुस्तकें भी हैं जिनमें कविता में शहरों के नाम बताये हैं; टोकियो के गली मुहल्ले गिनाये हैं। जापानी जहाज़ो के नाम, स्टेशनो की फ़िहरिस्त छन्दो में दी हुई हैं।

पुस्तक छापने का काम जापान में चीन से पहुँचा है जहाँ लकड़ी में अक्षर खोद कर छापते हैं। यही दस्तूर जापान में प्रचलित हुआ। सन् ७७० में, सब से पहिले महाराणी शतोकू ने, एक लेख (मंत्र) छपवाकर मन्दिरों में बाँटे थे। वे छपे हुए मंत्र अभी तक मिलते हैं। १० वीं सदी में पुस्तक छपने लगीं। सन् ११९८ और १२११ के बीच की छपी हुई कई पुस्तकें देखने में आई हैं।

वहाँ पहिले केवल धर्मग्रन्थ ही छपते थे। चीनी-धर्म के अनेक ग्रन्थ १६ वीं सदी तक जापान मे छपे। कोरिया जीतने पर छपाई का काम और बढ़ गया। शोजन का अधिकार होने पर भी उन्नति हुई। कोरिया वालों ने टाइप का तरीक़ा जापानियों को सिखाया परन्तु वह इन की वर्णमाला के मुआफ़िक़ नहीं था।

समय-परिवर्त्तन के अनुसार काव्य, इतिहास, उपन्यासादि की वृद्धि हुई और छपाई का काम भी बढ़ गया। चित्र भी छपने लगे।

सन् १८७० ई० से यूरोपियन टाइप का प्रचार हुआ है, परन्तु ब्लाक-प्रिन्टिंग का भी अभी तक प्रचार है। अखबार सब टाइप में छपते हैं। टाइप में ६,१०० प्रकार के टाइप हैं क्योंकि रोज़मर्रा के काम मे इतनेही शब्द आते हैं। फिर आकार-भेद से इनकी संख्या और भी बहुत हो जाती है। पाइका, लाँगप्राइमर, ब्रीविअर आदि सब भाँति का टाइप रखना होता है। इस के कहने की आवश्यकता नहीं कि अकेला कम्पोज़ीटर उन सब तक नहीं पहुँच सकता। बड़े

कमरों में ये टाइप सजे रहते हैं और लड़के हाथ में कागज लिए टाइप ला ला कर कम्पोज़ीटर के सामने रखते जाते हैं । जब इन अक्षरों के सिवाय किसी ऐसे शब्द की आवश्यकता पड़ जाती है जिसके लिए टाइप न ढला हो तब उस को लकड़ी में खुदवा कर काम चलाते हैं ।

लकड़ी पर तसवीर खोद कर छापने का काम जापान में चीन से आया । सब से पुरानी सचित्र पुस्तक 'इसे मनोगतारी' मिलती है जो सन् १६०८ ई० की है । सन् १७१० मे काली स्याही के साथ साथ रँगदार तसवीरें छपने लगीं । इनमे रंग भरने की ख़ूबी थी । मनुष्य या जीव के यथार्थ रूप से चित्रका रूप नहीं मिलता था । सन् १७४८ में पहिली पुस्तक ऐसी निकली जिसके चित्र अनेक प्रकार के रंगों से चित्रित किये गये थे । इस पीछे पंखों के लिए काग़ज़ पर चित्र छापना आरंभ किया गया ।

चित्रकारी करना जापानियों ने चीनियों से सीखा है । उनमें से जब किसी को और भी विशेष उन्नति करने की आवश्यकता हुई है तो भी चीनी चित्रकारों के कार्य्य की ही नकल की है । अब भी वे चीनी-चित्रकारों से बढ़ कर होने का अभिमान नहीं करते । डाक्टर एन्डरसन ने लिखा है कि "आजकल जो चित्र जापानी बनाते हैं उनके एक में भी जापान के नज़ारे का सहारा नहीं लिया जाता । उनके चित्रो मे जो कुछ कारीगरी नज़र आती है सब विदेशी है । जो पुरानी मूर्त्ति खंडहरों मे से निकलती हैं वे भी विदेशी कारीगर या उन के जापानी-शिष्यो की जान पड़ती हैं । नारा के पास हरयूजी-मन्दिर की दीवारों पर पुराने चित्र हैं जो सन् ६०७ ई० के बने हुए हैं । वे किसी कोरियन कारीगर के बनाये बताये जाते हैं । आरम्भ में २०० वर्ष तक चित्रकारी विद्या कोरिया और चीन के पंडितों के हाथ ही में रही । राजदर्बार में एक बड़ा चित्रकार (सन् ८५०-८८० में) हो चुका है परन्तु अब उस की

चतुराई का कोई चिन्ह वर्त्तमान नहीं है । जापनी पुस्तकों के पढ़ने से जान पड़ता है कि सन् ९००—१००० के बीच के राजमहल के लिए अच्छे अच्छे चित्रकार इकट्ठे किये जाते थे और उन से परदे चित्रित कराये जाते थे । मोतोमित्सू नाम के एक चित्रकार ने अपना निज का कार्यालय इन्हीं दिनों में खोला था । इस समय के चित्रों में असभव पहाड़, पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े बने हुए हैं । इसी कार्यालय में ऐतिहासिक चित्र भी बनने लगे ।

पुस्तकों में चित्र लगाने का काम बहुत पीछे आरम्भ हुआ । ओक्यू नाम के एक चित्रकार ने सब से पहिले इस काम में अधिक यत्न किया । पक्षियों और मछलियों के यथार्थ चित्र इसी ने खींचे । बन्दर भी हूबहू बनाये, परन्तु एक दृश्य का पूरा चित्र खींचना इन से ठीकठीक न बन पड़ा । समय पाकर इस प्रकार के अनेक चित्रकार उठ खड़े हुए जो अपने आस पास को चीजों को ठीक चित्र में दिखाने का अभ्यास करने लगे । पुराने प्रकार की चित्रकारी हटकर प्रतिदिन के वर्त्तमान बातों को अंकित करने का समय आ गया । प्रसिद्ध चित्रकार हाकूसाई सन् १७६० से १८४९ तक रहा, इसने लगातार अनेक सुन्दर चित्र बनाये । पुस्तकों के आशय को तसवीरों में दिखाया । पृथक् चित्र खींचे । ऐतिहासिक बातें, नाटकों के खेल और उपन्यास-लिखित प्रतिदिन की घटना, पशु, पक्षी और वृक्षो तक को अंकित कर डाला । यहां के दर्शनीय दृश्यों को काग़ज़ पर दिखा दिया । इस चित्रकार के ४ वर्ष पीछे कामाडोर पेरी आया जिस को तोप की आवाज़ ने जापान की पुरानी सभ्यता को तितर बितर कर दिया । पुराने चित्रकारों ने भी यूरोपियनों के भांति चित्र खीचना आरंभ कर दिया ।

जापानियों को चित्र खींचने मे शीघ्र योग्यता प्राप्ति करने का एक कारण यह भी है कि उनके अक्षर एक प्रकार के चित्र ही हैं, जिन को लिखने मे उन्हे ब्रुश का अच्छी तरह अभ्यास हो जाता

है। यही कारण है कि जापानियों के साधारण चित्रों में भी आकर्षण शक्ति पैदा हो जाती है। केवल लकीरों से बना हुआ चित्र भी दीवार पर लटकाने या संग्रह करने योग्य हो जाता है। सब प्रकार की सुन्दरता होने पर भी जापान की चित्रकारी में एक दोष है कि उसमें इस बात का विचार नहीं रक्खा जाता कि दृष्टि के आगे उस दृश्य का पूरा पूरा यथार्थ में नज़र आना संभव है कि नहीं। पदार्थों का आगे पीछे होना सिद्ध करने के लिए जो स्याही में न्यूनाधिकता की जाती है उसका भी ठीक विचार नहीं। फ़ोटोग्राफ़ में जिस भाँति चित्र आता है ऐसा ही चित्र खींचना उचित समझा जाता है। जो भाग आँखों के सामने न आता हो उसे चित्र मे भी न लाना चाहिए। यूरोपियन-चित्रकारों का कथन है कि जापानी इस नियम की परवाह नहीं करते।

जापानी अल्पस्थान लेकर चित्र में जितना भाव दिखा सकते हैं ऐसा अन्य देशवालों से नहीं बन पड़ता। घर सजाने के लिए जापानी तसवीरें बहुत अच्छी हैं। विलायती तसवीरों में जवाब का जवाब दिखाना बहुत अच्छा समझा जाता था, परन्तु जापानी तसवीर अपने तर्ज़ पर इनसे अधिक ख़ूबसूरत होती हैं।

चित्रकारों की योग्यता की प्रशंसा में कितनी ही कहानी कही जाती हैं। चित्रकार 'कनूका' ने घोड़े के चित्र सचमुच ऐसे बनाये थे कि ब्रह्मा ने धोखा खा कर उनमें प्राण डाल दिये और वे तसवीरों में से निकल आस पास के बगीचो में घास चरने चले गये। इस पर चित्रकार ने तसवीर मे रस्से से उन्हें बाँध कर खूँटे से बांध दिया। एक मन्दिरवाले पुजारी ने बिल्ली का ऐसा चित्र खींचा था कि घर के सब चूहे भाग गये। मानो उन सब को सचमुच की बिल्ली बनकर खा गई। एक तसवीर में चूहे की शकलें थी। वह चूहे रात को यथार्थ मे बनकर दौड़ते फिरते थे। बाँस पर चिड़ियां, आम के वृक्ष पर कोयल, झाड़ी में चीता, चन्द्र, बर्फ़ और पुष्पावली, बर्फ़ में

कुत्ते लोटते हुए, बैल का सवार बाँसरी बजाता हुआ, आदि आदि भाव विशेष दिखाये जाते हैं। वहाँ पुराणो के आधार पर भी चित्र बनाये जाते हैं। विलक्षण कहानियों के विलक्षण ही चित्र होते हैं। जापानी-तसवीरें चौखटों में नहीं मढ़ी जातीं। नक़शों की तरह उनको लटका कर रखते हैं और जब चाहे लपेट कर बन्द कर देते हैं। इनका नाम 'काकीनोमो' है। प्रत्येक कमरे में ऐसे दो तीन चित्र होते हैं। विशेष विशेष कमरों मे नियत रीति पर चित्र लटकाये जाते हैं। चित्रों के बदले वहाँ सुन्दर अक्षरो के लिखे हुए पद भी लटकाये जाते हैं।

जो हिन्दुस्तानी विद्यार्थी जापान मे शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं उनके उपकार के लिए, पं० रामनारायण जी मिश्र, बी० ए० ने अपने ग्रन्थ (जापान का संक्षिप्त इतिहास) मे निम्न लिखित बातें लिखी हैं:—

"जब हिन्दुस्तानी विद्यार्थी जोश में आकर तुरन्त जापान चले जाते हैं तो उन्हे बड़ी कठिनाई वहाँ की भाषा समझने मे होती है। प्रायः आठ महीने मे लोग लेकचर समझने योग्य होते हैं। इसलिए लोगों को चाहिए कि जब जापान जाने की मन मे ठान लें तो जापानी भाषा यहाँ पढ़ना आरम्भ कर दें। अब ऐसी पुस्तकें तय्यार हो गई हैं कि जिनके द्वारा विदेशी, अच्छी तरह से, बिना किसी पुरुष की सहायता के, जापानी भाषा सीख सकते हैं। यदि थोड़ी जर्मन भी पढ़ने का प्रबन्ध हो सके तो अच्छा है क्योंकि जापान देश में कला, कौशल, वैज्ञानिक सम्बन्धी शब्द प्रायः शब्द जर्म्मनी हैं। यदि इंजीनियरिंग या दवा बनाने की रीति जानना या खानों का खोदना और उनके पदार्थों का अनुसन्धान करना इत्यादि सीखना हो तो आवश्यक है कि पदार्थ-विद्या की दो एक शाखाओं से पूर्ण विज्ञता इसी देश मे प्राप्त करके जाय। अब तो एक सोसायटी "इंडो-जापानी एसोसिएशन" है इस सभा के मंत्री को पत्र लिख-

कर सब बातें पहिले से निश्चय करके जाना बहुत लाभदायक होगा। यदि पहिले ही से इस सभा के सभापति द्वारा एक अर्ज़ी यूनिवर्सिटी के प्रधान को दाख़िले के लिए भेज दी जाय तो पीछे से नैराश्य नहीं होगा। क्योंकि बहुधा विद्यार्थियों की अधिकता से लड़के दाख़िल नहीं किये जाते। भारतवर्ष से जानेवालों को जून तक जापान पहुँच जाना चाहिए क्योंकि सेशन (पढ़ाई का समय) सितंबर से आरंभ होता है, और थोड़ा जल्दी जाने से भाषा और आवहवा की कठिनाइयाँ कम मालूम होती हैं। हर एक विद्यार्थी को चाहिए कि अपने शहर के ज़िलाधीश से इस बात का सार्टी-फ़िकट साथ ले जाय कि वह अँगरेज़ी राज्य या किसी देशी रियासत का रहने वाला है।"

समाचारपत्र, जापान में, नियम पूर्वक, सब से पहिले एक अँगरेज ने निकाला था। उससे पहिले 'वयोमीऊरी' नाम का काग़ज़ बड़ी भद्दी तरह से लकड़ी के सांचे के द्वारा छपकर निकलता था। किसी ख़ास समय पर नहीं केवल किसी ख़ून ख़राबा होने पर वह छापा जाता था। एक जापानी को डूबती हुई नाव में से अमरीका के एक जहाज़ वालों ने बचाया था। वे उसे अपने देश को ले गये जहां उसने अँगरेजी पढ़ी। वह वहाँ से द्विभाषिया होकर स्वदेश को लौटा तथा 'काइग्वाइशिम्बन' नाम का अख़बार निकाला। परन्तु नियमित पत्र जो सन् १८७२ ई० में मिस्टर ब्लेक ने निकाला था वह 'निशिन शिनजिशी' नाम का था। उसमें एक प्रधान लेख और राजनीति की समालोचना होती थी। इसकी देखा देखी और और पत्र निकलने आरम्भ हुए। देखते देखते जापान में सब प्रकार के पत्रों की संख्या ८२९ हो गई जिनमें २०५ तो केवल टोकियो में निकलते थे जिनमें 'क्काम्पो' सर्कारी गज़ट है। 'काक़ुमिन' लिबरल है। 'निहन' विदेशियों के विरुद्ध लिखता है। 'यामीउरी' और 'मैनिची' उन्नत विचार वाले हैं। 'जीजी शिंपू' स्वतंत्र हैं। 'नीची-नीची' वेरनईटो का पत्र है। 'चुग्वाइ शोग्यो शिम्पो' व्यापार का

प्रचार करता है। 'अशाई', 'मियाको', 'चूत्रो' और 'होची' सर्व साधारण में खूब पसन्द किये जाते हैं। 'योरोजू चोहो, 'निरोकू' और 'शिम्पो' प्रसिद्ध नक़्क़ाल हैं। 'ओसाका अशाई' की ग्राहक-संख्या १ लाख बताई जाती है। कई पत्रों में एकाध कालम अँगरेज़ी का भी रहता है। मासिक पत्रों में 'तेयो' का आदर सर्व साधारण में बहुत है। 'तेकोकू बंगाकू' साहित्य-संबन्धी लेख छापता है। 'रिकूगोज़ाशी' ईसाई धर्म प्रचार करता है। 'मारू चिम्बन' जापानी पंच है। इनके सिवाय वैद्यक, रासायानिक, शारीरिक, राजनीति, विज्ञान, आदि भिन्नभिन्न विषय के पत्र बड़ी उत्तमता से सम्पादित होकर निकलते हैं।

पुस्तकों की भाषा के समान ही समाचार-पत्रों की भाषा होती है। बोल चाल की भाषा से पुस्तको की भाषा पृथक् होती है। इस देश के पत्रों का मूल्य भी बहुत थोड़ा है। बड़े बड़े काग़ज़ों का दाम दो पैसा फ़ी कापी होता है। नौ दस आने मासिक मूल्य देना पड़ता है। बहुत पत्रों में चित्र छपते हैं। कई पत्र केवल उपन्यास ही महीने महीने छापते हैं। कोई अनोखी बात होती है तो उसी दम जुदा परचा निकलता है। मंत्री बदलने और लड़ाई छिड़ जाने पर बाज़ारों मे इन जुदे परचो की धूम पड़ जाती है। "गो-ग्वाई-गोग्वाई" का शब्द सुनाई देता है।

प्रेस का क़ानून पहिले बहुत कठिन था। सन् १९०० में बहुत परिवर्तन हो गया है। जहाजी और फ़ौजी मन्त्रियों को अधिकार है कि जिस अंक में कोई सर्कारी भेद खोला गया हो उसे बन्द कर दें। विदेशी राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले मंत्री यह देखते रहते हैं कि अख़बार किसी विदेशी राज्य की निन्दा नही करते और जिस किसी पत्र में नीतिविरुद्ध लेख देखते है उसे ही रोक देते है। राज-कुल की निन्दा, शान्ति-भंग-कारी लेख, सभा की हँसी, और निर्लज्ज बातें प्रकाश करने वाले पत्र दंड पाते है। सम्पादको को ५ से लेकर ५०० रुपये का धन-दंड और १ महीने से दो वर्ष तक

की क़ैद हो सकती है। सब समाचार-पत्रों को ज़मानत दाख़िल करनी होती है। टोकियो में १००० की ज़ामिनी होती है।

नियत पथ से डिगते ही सम्पादकों को सज़ा होती है। इसीलिए कई अख़बार वाले प्रधान सम्पादक के नाम से एक ऐसे आदमी को नियत कर रखते हैं जिसका काम केवल समय पड़ने पर क़ैद में जाना होता है। मुख्य सम्पादक संवाद-दाताओं की फ़िहरिस्त में अपना नाम रखता है। जापान में दुहरा काम सदा से चला आया है। नाम का बादशाह और काम का बादशाह। असली राजा और नक़ली राजा। इसी भाँति मुख्य और गौण सम्पादक समझिए।

क़ानून से बचने के लिए भाँति भाँति के पेंचदार लेख लिखे जाते हैं। अधिक से अधिक सम्पादक की तनख़्वाह १५०) मासिक है।

समुद्र-किनारे के उन शहरों से जहाँ विदेशियों को बसने का अधिकार है, विदेशी लोग अपनी भाषा में, अपने अपने पत्र निकालते हैं। उनको भी क़ानून के अनुसार ही चलना पड़ता है।

जापानी—भाषा में ये दो छोटी छोटी सी पुस्तकें अत्युउत्तम उपदेश पूर्ण हैं—"जिस्तूगो-क्यो" (सत्योपदेश) और दोर्जो क्यो "बालोपदेश"। ये पुस्तकें नवीं शताब्दी में एक बौद्ध पण्डित ने लिखी हैं। इन पुस्तकों में बहुत सी बातें चीनियों से ली गई हैं। उपरोक्त पुस्तकों में से कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

"तहख़ानों में रक्खा हुआ ख़ज़ाना नष्ट हो सकता है; परन्तु जो ख़ज़ाना हृदय में रक्खा गया है वह कदापि नष्ट नहीं होता।"

"तुम सहस्र स्वर्ण मुद्रा एकत्र कर लो तो क्या है। वे एक दिन के विद्योपार्जन के समान नहीं हो सकते"।

"यदि तुम धनहीन हो तो किसी धनी का आश्रय लो। सब प्रकार का धन बर्फ़ के मारे पत्तों के समान झड़ सकता है।"

"ग़रीब घर में पैदा हुआ विद्वान् उस कमल के समान है जो कीचड़ में उगा हो"।

"तेरे पिता, माता, पृथ्वी और आकाश के समान तथा गुरु और स्वामी सूर्य्य चन्द्र के समान हैं"।

"अन्याय का फल निश्चय विपत्ति है। यथा-शब्द की प्रति ध्वनि।"

"न्यायी मनुष्य के पीछे पीछे कल्याण चलता है, जैसे हमारे शरीर के पीछे छाया।"

"जब किसी समाधि के पास से जाना हो तब सर्वदा सम्मान प्रकाश करो। शिन्तो-मन्दिर के पास घोड़े से उतर कर चलो"।

"बौद्ध-मन्दिर के निकट कोई अपवित्र कर्म न करो। जब कोई धर्मग्रन्थ पढ़ो, कुचेष्टा त्याग दो"।

"दीवार के भी कान होते हैं; छिप कर भी किसी की निन्दा न करो।"

"परमात्मा सर्वत्र देखता है। दुष्कर्म कदापि, गुप्त भाव से भी, न करो।"

"मुँह से सहसा कोई कुवाक्य निकल गया तो घोड़ों की चौकड़ी भी उसे लौटा नहीं सकती"।

"रत्न में पड़ा हुआ दाग़ ख़राद चढ़ाकर निकाला जा सकता है; परन्तु हृदय में लगा हुआ कुवाक्य का दाग़ मिटाया नहीं जा सकता।"

"आपदा और सम्पदा का कोई मुख्य स्थान नहीं है। मनुष्य उन्हें जहाँ बुलाता है आ पहुँचती हैं।"

"दैवी विपत्ति से उद्धार पाने की आशा है परन्तु अपने आप बुलाई हुई विपत्ति से छुटकारा कठिन है।"

"मूर्खों पर परमेश्वर आपत्ति लाता है—उन्हें चेताने के लिए। गुरुजी विद्यार्थियों को फटकारते हैं—उन्हें सुधारने के लिए।

"ज्ञानी मनुष्य ने अधिक पाप किये हों तो भी वह स्वर्ग को जायगा। मूर्ख के पाप थोड़े होने पर भी उसे नरक भोगना पड़ेगा।"

"आवागवन लगा हुआ जीवन उत्तम नहीं है। अस्तु, सर्वदा निर्वाण-पद-प्राप्ति करने की चेष्टा करो।

"माया-मोह-युक्त जीवन ठीक नहीं है। तुम्हें सर्वदा ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।"

"परोपकार बड़ी चीज़ है। परोपकार से ही ज्ञान की उन्नति होती है।"

"धन की ममता में न पड़ो, माया के भूखों को ज्ञान प्राप्त नहीं होता।"

सदाचरण-शिक्षा पर सन् १९०० में एक पुस्तक और छपी है। उसके उपदेश भी इस योग्य हैं कि बड़े ध्यानपूर्वक पढ़े जायँ। यथा—

"प्रत्येक जापानी स्त्री-पुरुष, चाहे बूढ़ा हो या जवान, राजाज्ञा के वशवर्त्ती रहेंगे। क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जिसको राज्य से लाभ न पहुँचता हो। राज्य भर में इस बात को सब स्वीकार करते हैं। सभ्यता के परिवर्त्तन के साथ साथ हमको अपनी पुरानी रीति भाँति बदलनी बड़ी आवश्यक हैं। प्रत्येक जन को अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने और पुण्यात्मा बनने की चेष्टा करना चाहिए। स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले कर्म जापानियों के हृदय पर सर्वदा अङ्कित रहे और सर्वदा मनुष्योचित कर्मों में उन की प्रीति रहे।

"जो मनुष्य अपने शरीर और मन को स्वाधीन रख सकता है वही स्वतंत्र और प्रतिष्ठापात्र है। वही उचित कर्म करके अपने मनुष्य नाम की लाज रखता है।

"स्वाधीनचित्त बनकर कार्य करना, और निस्सहाय स्थिर रहना, स्वतंत्रता कहलाती है। स्वतंत्र मनुष्य अपनी रोटी आप कमाता है और सब काम अपनी इच्छानुसार करता है।

"शरीर की रक्षा करना और उसे स्वस्थ रखना हमारा परम धर्म है। शरीर और मन दोनों से काम लेना चाहिए और जिन बातों से ये बिगड़ते हों उन्हें कदापि न करना चाहिए।

"अपने जीवन को पूर्णावधि तक पहुँचाना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। अस्तु जो लोग आत्महत्या करके अपना जीवन नष्ट करेंगे वे अक्षम्य-पाप और कायरता के भागी होंगे। प्रतिष्ठित और स्वतंत्रप्रकृति जन के लिए यह महा नीचकर्म है।

"जब तक मनुष्य साहस, उद्योग और अपराजय बन कर जीवन व्यतीत न करे, स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा नहीं पा सकता। ऐसे मनुष्य में उत्साह और स्थिरता होनी चाहिए।

स्वतंत्र और प्रतिष्ठाप्रेमी सज्जन को अपने सब काम निस्सहाय पूर्ण करने चाहिएँ। उसमें सोचने और कर्तव्य स्थिर करने की योग्यता होनी चाहिए। स्त्रियों को नीच गिनना असभ्यता है। प्रत्येक सभ्य देश की स्त्री और पुरुष समान श्रेणी में हैं। दोनों को अपनी स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा बढ़ाने का अधिकार है।

"विवाह मनुष्य के जीवन में एक परमावश्यक कर्म है। इस लिए पति अथवा पत्नी चुनने के लिए पूर्ण सावधानी आवश्यक है। दम्पति को उस समय तक पृथक् न होना चाहिए जब तक कि मृत्यु उन्हें पृथक् न करे। आपस में प्रीति और सन्मान पर दृष्टि रखना चाहिए और व्यवहार ऐसा हो कि किसी की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा में अंतर न आवे।

"जिस प्रकार सन्तान अपने मा-बाप के सिवाय और किसी को अपना नहीं जानती। माता पिता को भी अपने ही बच्चे बच्चे समझने चाहिएँ। सन्तान-प्रेम के समान कोई स्वादिष्ठ संबन्ध नहीं है। इस प्रेम में कभी बाधा न होनी चाहिए।

बच्चे भी सम्मान और प्रतिष्ठा के योग्य हैं। उन का शिक्षण माता पिता के अधीन है। बच्चों का धर्म है कि अपने मा-बाप के कथनानुसार अपने कर्तव्य में लगे रहें। समाज में बरते जाने वाले नियमों को सीखे, और ऐसे योग्य बनें कि संसार में प्रवेश करने के समय वे स्वतंत्र और प्रतिष्ठा-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। स्वतंत्र और प्रतिष्ठित मनुष्यों मे आदर्श स्वरूप होने के लिए उचित है कि बड़े होने पर भी विद्योपार्जन करना न त्यागें; अपना ज्ञान बढ़ाते रहें और सदाचरण दृढ़ाते रहें।

"पहिले एक मकान बनता है। फिर आस पास और घर बनने लगते हैं। इस तरह एक बस्ती बन जाती है। इस प्रकार एक परिवार की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा के साथ ही साथ एक समाज तैयार हो जाता है।

"समाज स्थिर रखने के लिए यह आवश्यक है कि क्षुद्राति-क्षुद्र को भी सम्मान दृष्टि से देखा जाय। उनके हक़ और खुशी में किसी प्रकार की कसर न की जाय।

आपस में विरोध रखना, बदला लेने की चिन्ता करना असभ्यता के लक्षण हैं। अपना और दूसरे का सम्मान स्थिर रखने के लिए सर्वदा न्याय का व्यवहार होना चाहिए।

" सब किसी को अपना काम पूर्ण चेष्टा से करना चाहिए। जो कोई अपने इस धर्म को पूरी तरह नहीं निवाहता वह स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा पाने योग्य नहीं है।

"प्रत्येक को दूसरों के साथ निष्कपटता का व्यवहार करना चाहिए क्योंकि यदि तुम दूसरों का विश्वास करोगे तो वे भी तुम्हारा करेंगे। आपस के विश्वास से ही स्वतंत्रता और सम्मान की वृद्धि होती है।

"किसी को आदर करने के लिए सम्मान प्रदर्शन और शिष्टाचार का करना बड़ा आवश्यक है परन्तु ये बातें उचित की अपेक्षा न न्यून हों न अधिक।

"मनुष्य जितने काम सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाने की इच्छा से करता है वे सब से उत्तम सुकर्म हैं। दूसरों के साथ सहानुभूति और स्नेह प्रकाश करना, उनके दुःख हटाना और सुख बढ़ाना बड़ेही उत्तम काम हैं।

"दया-धर्म केवल मनुष्यों के साथ में ही बरतने के लिए नहीं है, बरन पशुओं के साथ भी ऐसाही बरताव होना चाहिए। पशुओं को सताना और मारना बहुत बुरा है।

"विद्या से मनुष्य का आचरण उच्च श्रेणी का होता है। चित्त की प्रसन्नता के साथ ही साथ समाज में शाँति और सुख बढ़ता है। अस्तु विद्योपार्जन परमावश्यक है।

"जहाँ कहीं मनुष्यसमुदाय है वहाँ उन के रक्षकों का होना भी आवश्यक है। रक्षक गण नीति बनाते हैं; सेना का प्रबन्ध करते हैं जो देश के स्त्री पुरुषो की रक्षा करने, उनको जान-माल, इज़्ज़त-आबरू बचाने के लिए परमावश्यक है। इसके लिए प्रजा को सेना में योग देना और ख़र्च मे हिस्सा लेना स्वीकार करना पड़ता है।

"जो लोग सैनिक-सेवा ग्रहण करें और राज्य-व्यय मे अपना भाग लें, उनको नीति बनाने का अधिकार होना उचित ही है। राज्य के आय व्यय की जाँच पड़ताल करना भी उनका धर्म है।

"देश-शत्रुओं से युद्ध करने के लिए जापानी स्त्री-पुरुषों को सर्वदा सन्नद्ध रहना चाहिए। स्वदेश की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा स्थित रखने की चेष्टा में जान-माल की चिन्ता कदापि न करनी होगी।

"देश में शान्ति और सुव्यवस्था बनी रहने के लिए क़ानून का मानना बड़ा ज़रूरी है।

"संसार में अनेक देश भरे पड़े हैं जिनमे विविध भाँति के धर्म, भाषा और आचार-विचार हैं। उन सब विदेशियो को अपना

भाई समझना चाहिए। उनके साथ कभी अनुचित व्यवहार न हो। अपने को बड़ा गिनना और दूसरों को तुच्छ जानना, स्वतंत्र और प्रतिष्ठित जाति के लिए उचित नहीं समझा जाता।

"हमने अपने बड़ों से जो जातीय-सभ्यता, स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा प्राप्त की है उसको और भी उन्नत करके अपनी सन्तान के लिए छोड़ जाना चाहिए।

"संसार मे दुर्बल और सबल दोनों प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं। परन्तु शिक्षा के प्रभाव से दुर्बल और असमर्थ प्राणियों की संख्या घट सकती है। क्योंकि शिक्षित होने से दुर्बल प्राणी भी प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं।

"हमारे भाई, बहिन-स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि उपर्युक्त बातें अपने हृदय पर ही न अङ्कित कर छोड़ें, किन्तु सर्व साधारण में इनका प्रचार करें जिससे कि उनको संसारकी अन्य जातियो के साथ साथ इस पृथ्वी का सर्वोच्च सुख प्राप्त हो सके।

आजकल मदर्सों में "बुशीदो" नाम की देशहितकारी नीति की एक पुस्तक पढ़ाई जाती है। प्राचीन काल में इस नीति की बातें केवल क्षत्रियो के लिए थीं; परन्तु अब उनको उलट फेर करके वर्तमान समय के अनुसार कर लिया गया है। हम वर्तमान महाराज की उस स्पीच का उल्लेख यहाँ करना चाहते हैं जो सब मदरसों मे नियमानुसार पढी जाती है और 'बुशीदो' का एक अङ्ग समझी जाती है। वह यह है—

"हमारे राजकुल और राजघर की नींव एक बड़े दृढ़ आधार पर थिर की गई है। सत्कर्म रूपी वृक्ष की जड़ गहरी जमाई गई है।

"हमारी प्रजा पीढ़ी दर पीढ़ी से राज-भक्ति तथा अविरोध रूप से सर्वदा हमारी सहायक रही है। इसी आचरण को मूल आधार रखकर हम अपनी प्रजा के लिए शिक्षा-विस्तार का प्रस्ताव उठाते हैं।

"हे प्रजागण! तुम अपने मा-बाप के भक्त बनो; भाइयों से प्रेम करो; पति-पत्नी भाव में मिलकर चलो; निष्कपट मित्रता करो; तुम्हारा स्वभाव शिष्ट और मितव्ययी हो; दूसरों को अपने समान समझो, विद्योपार्जन में दत्तचित्त रहो; अपनी चतुराई बढ़ाओ और मन को वश मे रक्खो; परोपकार में दत्तचित्त रहो तथा सामाजिक उन्नति करो; सर्वसाधारण द्वारा स्थिर किये हुए सिद्धान्त और आईन को भक्ति-भाव से मानो; जब देशहित का काम आ पड़े अपना उत्साह और साहस दिखा दो जिससे हमारे राज्य का वैभव और प्रतिष्ठा स्थिर रहकर उन्नत हो।

"तुम्हारा ऐसा आचरण केवल यही सिद्ध नहीं करेगा कि हमारी प्रजा उत्तम और राज-भक्त है किन्तु तुम्हारे उन पुरखों का भी यश फैलेगा कि जिनके द्वारा तुमने आचार व्यवहार पाये हैं।

"अपने पूर्वजों की शिक्षा को मानना हमारा तथा प्रजा का परम धर्म है। वह जैसी पूर्वकाल में लाभ-दायिनी रही है वैसे ही वर्तमान में रहेगी। हम लोग चाहे किसी देश में क्यों न जायँ, हम विश्वास करते हैं कि हमारी प्रजा इन पवित्र आज्ञाओं को मानने में कभी आलस्य न करेगी।"

शिक्षा-प्रचार में 'फ़ुकूजावा-यूकीची' नामक एक सज्जन ने बड़ा प्रयत्न किया है। वर्तमान में जो नई पुस्तकें प्रकाशित होती हैं उनमें भी इस विद्वान् का उल्लेख रहता है। इसका जन्म सन् १८३५ में और मृत्यु १९०१ में हुई। यह अनाथ और निर्धन था। इसका जन्म सामुराई-कुल में हुआ था। इसने डच लोगों से ओसाका में जाकर डच-भाषा सीखी। सन् १८५८ ई० में वह यदो में आया। याकोहामा में अँगरेजी सीखी और कई विदेशी भाषा की पुस्तकों इसने का अनुवाद किया और उसका यह अनुवाद ऐसा अच्छा सिद्ध हुआ कि जब सन् १८५० मे जापानियो का एक दल शिक्षा प्राप्त करने के लिए जापान में गया तो फ़ाकूजावा को भी शामिल किया गया। जहाँ से लौटकर उसने सर्कारी नौकरी छोड़

दी और अपने उत्साह से प्रजा को शिक्षित करने का मन्सूबा कर लिया। उसने जापानियों का एशियाई आचार छुड़ाकर यूरोपियन भाव सिखाया। विशेषतः उन्हे अमरीकन बनाया; क्योंकि उसको सबसे अधिक अमरीकन लोग ही अच्छे लगे। धर्म पर उसकी कुछ श्रद्धा न थी। धर्म को वह मूर्खों की लगाम समझता था। वह अपने देशवालो को यह उपदेश देता था कि वे लोग इलैक्ट्रिक बैटरी बनाना, तोप ढालना सीखें, भूगोल और विज्ञान विद्या का अध्ययन करें। रुपया कमाने के जो ढंग यूरोप मे किये जाते हैं उनका अनुकरण करें। जेंटिल बनकर चलें। अपनी प्रतिष्ठा का सर्वदा विचार रक्खें। मूर्खता भरे प्राचीन विचारों को त्याग दें। जाति को बड़ा बनाने की चेष्टा करें। अपना बड़प्पन त्यागकर एक जाति स्थिर करें।

उसने खुद सामुराई होना त्याग दिया था और सर्वसाधारण में मिलने की धुन मे सर्कारी पद और गौरव भी त्याग दिया। इस देश मे व्याख्यान देने का रिवाज को इसी ने चलाया, और जापानी भाषा का चमत्कार बढ़ाया। अँगरेजी भाषा के तुल्य विज्ञान सबन्धी शब्द स्थिर किये। उसने कई पुस्तकें लिखीं; अनुवाद कीं; कठिन ग्रन्थों पर टीका कीं। एक समाचार पत्र चलाया तथा अपना एक स्कूल खोला। इस स्कूल में लोग पढ़ते भी थे और गुणी भी बनते थे। उसने ऐसे ढंग से समयानुसार पठन-पाठन का प्रबन्ध किया था कि उसके शिष्यो मे आजकल बड़े दर्जों पर पहुँचे हुए हैं। फ़ाकूज़ावा को लोग ऋषि और पिता की पदवी देते हैं। वह उन लोगो मे से था जो जैसा कहते हैं वैसा ही करते है। सर्वसाधारण को सभ्य और विद्वान् बनाना उसका संकल्प था। उस की रची हुई पुस्तको की संख्या ५० है जो १०७ जिल्दो में ३५ लाख छापी गईं है। उसका जीवन-चरित्र (फ़कुओ जीदन) ११ बार छप चुका है। एक निबन्धमाला (फ़कूओ-हयाकूवा) २५ बार छपी है। उसका अपना प्रेस निज की पुस्तकें छापने ही मे लगा रहता था। उसकी यह भी तारीफ़ थी कि वह लाभदायक बातों को रोचक

भाषा मे प्रकाश किया करता था। एक पुस्तक की भूमिका में फूकूजावा ने खुद लिखा है कि "मेरी सर्वदा यह इच्छा रहती है कि मेरे लेखों को अनपढ़ बनिये और किसान ही पूर्ण रीति से न समझें, वरन एक लड़की भी जो किसी गाँव से आई हो और दूसरे कमरे में कोई आदमी मेरी पुस्तक पढ़ रहा हो तो वह उसे बड़े चाव से सुनने समझने लगजाय। मैं अपने लेखों को अपने पड़ौसी की एक अनपढ़ बुढ़िया और बच्चों को सुनाया करता हूँ और जहाँ वे नहीं समझते वहाँ की भाषा बदल देता हूँ"।

जापानी लेखक अपने पुस्तको में कहावतों का उल्लेख किया करते हैं जिनका भाव निम्न लिखित प्रकार से है।

(१) कहने की अपेक्षा कर दिखाना अच्छा।

(२) फूल से अच्छा पूआ (जिस से पेट भरे)।

(३) बड़े कुल में केवल जन्म होने की अपेक्षा अच्छे संग का फल अच्छा होता है।

(४) फूटी हाँडी टूटा ढकना (राम मिलाई जोड़ी; कोई अंधा कोई कोढ़ी)।

(५) सस्ता ख़रीदना-दाम गँवाना।

(६) रोनी सूरत, मक्खी ने काटा (कोढ़ में खाज)।

(७) गाय में गाय घोड़ो में घोड़े (जैसे में तैसे)।

(८) मनुष्य का हृदय जैसे शरत् काल के बादल (अव्यवस्थित)

(९) जो पुजारी अच्छा नहीं लगता उसकी परछाईं भी नहं सुहाती।

(१०) स्त्री यदि सात बच्चे की मा हो तब भी अविश्वसनीय है

(११) अति का लाड़ चाव-पूर्ण शत्रुता भाव।

(१२) दस जन, दस मन।

(१३) मूर्खता के सामने बुद्धि भाग जाती है।

(१४) शराबी का विश्वास नहीं।

(१५) हकीम और कुपथ्य करे!

उत्सव।

जापानियों मे विवाह का तरीका इस प्रकार है कि जब लड़का या लड़की सियाने हो जाते हैं तब माता पिता को उनका विवाह करने की चिन्ता होती है। विवाह स्थिर करने का काम एक मध्यस्थ (बिचौलिया) के हाथ में दिया जाता है। मध्यस्थ को जापानी में "नकादो" कहते हैं। वह अपना कोई बन्धु गृहस्थ होता है। उसे अपने जीवन भर दूलह-दुलहिन का पिता स्वरूप रहना पड़ता है; उनके आपस के लड़ाई झगड़े निवटाने होते हैं। उसकी आज्ञा बिना वे अपना विवाह-सम्बन्ध भी नहीं तोड़ सकते। मध्यस्थ का सब से प्रथम कर्म यह है कि लड़का लड़की आपस में एक दूसरे को देखले। इस मिलाप को "मि-आइ" कहते हैं। इस अवसर पर एक दूसरे से बात चीत करके गुण दोष पहचान सकते है। यह भेंट या तो मध्यस्थ के घर होती है या मा-बाप और कोई मकान तजवीज कर देते हैं। ग़रीब लोग मेले तमाशे मे, मन्दिरों में, अथवा थियेटर मे ही वर-दुलहिन को मिलाकर यह रस्म पूरी कर लेते है। यदि लड़का या लड़की इस अवसर पीछे अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर नहीं करते तो फिर विवाह की चर्चा रोक दी जाती है। ज़्यादातर तो मा-बाप की पसन्द ही मुख्य समझी जाती है। विशेष करके लड़की अपने बाप की मर्ज़ी के विरुद्ध कभी कोई इच्छा प्रकाश नहीं करती।

दोनों की रज़ामन्दी स्थिर होने पर "यूनो" की रस्म की जाती है अर्थात् कुछ कपड़े, मछली और नक़दी की सौग़ात एक दूसरे के घर भेजी जाती है। यह हमारे देश की सगाई की जगह समझना चाहिए। इस पीछे सम्बन्ध टूट नहीं सकता। फिर लग्न शोधी जाती है। विवाह के दिन लड़की को सफ़ेद कपड़े पहिनाये जाते हैं। पूर्वी देशों मे सफ़ेद कपड़ा शोक का चिन्ह है और अपने सम्बन्धियों की मृत्यु पर पहिना जाता है। इस अवसर पर लड़की को शोक के वस्त्र धारण करने का यह तात्पर्य्य है कि वह मा-बाप के घर से मृतवत् सदा के लिए बिदा होती है। जैसे मुर्दे को घर से निकल जाने पर सफ़ाई की ज़रूरत होती है, बेटी के मा-बाप भी लड़की के चले जाने पर अपने घर को झाड़ बुहार कर शुद्ध करते हैं। लड़की को समझाया जाता है कि जीते जी अपने पति के घर से वापिस न आवे। अगले ज़माने मे लड़की के बिदा होने वाले दिन दरवाज़े पर आग जला दी जाती थी और समझ लिया जाता था कि मा-बाप के लिए लड़की मर चुकी।

नियत तिथि को, सन्ध्याकाल बीतने पर, मध्यस्थ और उसकी स्त्री दुलहिन को अपने साथ लेकर वर के घर जाते हैं। उस दिन वर के मा-बाप अपने यहाँ बड़ी तैयारी करते हैं। ज्योंनार का बन्दोबस्त किया जाता है। वर-दुलहिन इकट्ठे होकर "सान सान कूडो" अर्थात् 'तीन तिया नौ' का नेग करते हैं जिसमे दूलह और दुलहिन तीन पियाले शराब से भरे हुओं मे एक एक को तीन बार मुँह से लगाते हैं। इस भाँति उन को नौ बार शराब पीनी पड़ती है। दुलहिन पति के घर पहुँचकर शोक-वस्त्रों को अपने पति के दिये हुए कपड़ों से बदल लेती है। मदिरापान की रस्म हो चुकने पर फिर रंगीन कपड़े पहनते हैं। परन्तु अब जो लोग अँगरेजी पोशाक पहनते हैं वे कपड़े बदला-बदली नहीं करते। विवाह पूरा हो जाने पर मध्यस्थ और उसकी स्त्री वर-दुलहिन को एक ख़ास कमरे में ले जाते हैं।

यहाँ फिर "तीन तिया नै" की रस्म होती है। पहिली वार स्त्री ने पहले पीना शुरू किया था और इस वार पहिले पति पीता है।

विवाह के तीसरे दिन पति-पत्नी लड़की के मा-बाप से भेंट करने आते हैं। दुलहिन इस समय सुसराल के कपड़े पहिन कर आती है। विवाह होने की ख़बर सर्कार में भी दी जाती है। इस के पश्चात् लड़की का नाम पिता के वंश से निकल कर पति की वंशावली में चला जाता है।

कहीं कहीं लड़का जामाता बनाने के लिए बचपन से श्वसुर के घर रहता है। यह उस दशा मे होता है जब कि बाप के घर सिवाय लड़की के और कोई संतान नहीं होती। पिता के मरने पर लड़की का पति घर का मालिक होता है और वह अपना नाम छोड़कर अपनी घर वाली के पिता के नाम पर अपना नाम रख लेता है। अक्सर ग़रीबों के लड़के ही घर-जमाई बनकर रहना पसन्द करते हैं।

नीच लोगों में शादी के लिए किसी नेहले टेहले की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ स्त्री-पुरुष की राज़ी ही सब कुछ है; जब मन माना इकट्ठे हो गये; जब न बनी बिछुड़ गये।

विवाह एक बार सबका हो जाता है। इस देश में युवा स्त्री या पुरुष का कुँवारा रहना नहीं देखा जाता। मा-बाप सन्तान का विवाह करना अपना बड़ा धर्म समझते हैं। अपनी मर्ज़ी से वेही लोग मन चाहती बीवी पसन्द करते हैं जो अमरीका आदि देशों से शिक्षा प्राप्त करके लौटते हैं।

एक जापानी प्रोफ़ेसर ने लिखा है कि प्रत्येक देश के स्त्री-पुरुषों का आचरण एक सा होता हैं। यदि पुरुष अच्छे हैं तो स्त्रियो भी अच्छी हैं और जो पुरुष कुमार्गी हैं तो उनकी स्त्रियों का भी वही हाल समझना चाहिए। जापान की स्त्रियों में सच्चरित्र न होने का जो दोष लगाया जाता है वह यदि सच होता तो आज संसार में इस जाति का ऐसा नाम न होता। जिन सुपुत्रों ने आज संसार भर में

अपने देश का नाम फैला दिया है उनकी माता और भगिनी किस प्रकार निन्दनीय अवस्था में रह सकती हैं । यूरोपियन् समझते हैं कि जापानी लोग अपनी घरवालियों को बराबर का दर्जा नहीं देते, इसीलिए उनकी अधोगति है । समझना चाहिए कि जापान में न स्त्रियाँ स्वतंत्र हैं, न पुरुष । पुरुषगण राज्य-प्रबन्धक और अपने समुदाय के अधीन हैं । स्त्रियाँ अपने पुरुषों की वशवर्तिनी हैं। घर के बड़े बूढ़े की आज्ञा स्त्री और पुरुष दोनों को समानभाव से माननी पड़ती है । पितृ-पूजन जापानी अपना मुख्य कर्म समझते हैं । घर में लड़का ही इस कर्म को कर सकता है । लड़की अपने पति के घर जा कर उसी के पितरों की अर्चना करती है । अपने पितरों के साथ साथ राजपरिवार के पितृगण भी पूजे जाते हैं । जापान-राजवंश, आदि में, एक स्त्री से चला है उसकी पूजा आज तक चली जाती है ।

जापान के इतिहास को पढ़ने से जाना जाता है कि उस देश मे बौद्ध और कनफूशस-धर्म के प्रचार से पहिले भी स्त्रियों का आदर था । शारीरिक बल और मानसिक ज्ञान किसी बात मे स्त्री पुरुषों से कम न थीं । लड़ाई के मैदान मे उन्हों ने कई बार अपना नाम कर दिखाया था । लड़ाई के समय वे भी पुरुषों के समान वर्दी पहिनती थीं । उनमें किसी प्रकार का अन्तर न था ।

पढ़ने लिखने में भी स्त्रियों ने अच्छा नाम कमाया था । वे बड़े सदाचरण वाली हुई हैं और सर्व साधारण उन्हे पूजनीय दृष्टि से देखते रहे हैं । उनका हंसमुख स्वभाव था, सब मे भलाई का विचार था और पुरुषों को प्रसन्न रखना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था । उन दिनों स्त्री-शिक्षा का कोई स्वतंत्र प्रबन्ध न होने पर भी वे पढ़ती लिखती थीं ।

जापान के इतिहास में महारानी जिंगो का नाम खूब प्रसिद्ध है । यह वही स्त्री है जिसने कोरिया देश फ़तह किया था । महारानी ने

पहिले अपने पति से कोरिया पर चढ़ाई करने का आग्रह किया था परन्तु वह शीघ्र ही मर गया। महारानी ने उसकी मृत्यु किसी पर प्रकाश नहीं की और चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। सेनापति का पद उसने खुद सँभाला। सन् २०२ की यह बात है। तीन वर्ष तक कोरिया में लड़ाई रही और वहाँ से बहुत सा माल असबाब जापान में आया। एक स्त्री द्वारा फ़ौज का लड़ना स्त्रियों की प्रतिष्ठा को अच्छी तरह सिद्ध करता है। इस युद्ध काल में महारानी के लड़का हुआ था; वह भी बड़ी प्रतिष्ठा से पूजा गया। फ़ौज की कमान लेते समय महारानी ने फ़ौज से कहा था कि "यदि लड़ाई का सब फ़ैसला मैं केवल तुम लोगों पर छोड़ दूँ तो हार की लाज केवल तुमको ही लगेगी। मैं अपने देश की लाभ हानि से अपने तईं पृथक् रखना नहीं चाहती। यद्यपि मैं स्त्री हूँ और सेनापति के योग्य नहीं, परन्तु देवताओं की आज्ञा और सब सिपाहियों की इच्छा से, मैं इस पद को ग्रहण करती हूँ। लाभ हानि जो कुछ हो उसमें मेरा भी भाग होगा।

फ़ौज रवाना होने से पहले महारानी ने जो आज्ञा प्रचारित की थी वह जानने योग्य है। वह यह थी—

१—जब तक सैनिक प्रबन्ध दृढ़तापूर्वक न हो, जय न होगी।

२—जो सिपाही लूट के लोभ मे पड़ जायँगे और अपना प्रयोजन सिद्ध करने में फसेंगे वे अवश्य वैरी के हाथों में जा पड़ेंगे।

३—निर्बल से निर्बल शत्रु को भी छोटा न समझो।

४—शत्रु की प्रबलता का कभी भय न करो।

५—विश्वासघातको को कभी क्षमा न करो।

६—शरणागत पर सर्वदा दया करो।

७—जीत होने पर मैं सब को इनाम दूँगी।

८—कायरों के लिए मैंने कठिन दण्ड सिर पर रक्खा है।

कोरिया जीतने के पीछे जापान में चीनी-सभ्यता का विस्तार हुआ और फिर बौद्ध-धर्म ने पदार्पण किया । इन दोनों बातों ने ही स्त्रियों का दर्जा घटा दिया । स्त्रियों ने ही आदि में बौद्ध-धर्म को आश्रय दिया और उसी आश्रित-धर्म ने स्त्रियों का पद नीचा किया ।

जापान की राज-वंशावली में ९ महारानियों की चर्चा आती है । उनमें से एक ने सराय बनवाई, सड़कें निकालीं, पड़ाव स्थिर किये, जहाँ खान पान के पदार्थ नियत मूल्य पर मिलते थे । एक महारानी ने मृतक-दाह की रीति का प्रसार किया । महारानी "किनू जो" धर्मशाला और सदाव्रत के लिए प्रसिद्ध है । इस कर्म के लिए कुछ धरती अलग कर दी गई थी । उसी की आमदनी से ग़रीब लोगों को खान पान दिया जाता था । निर्धन लोगों के लिए औषधालय भी बनाये गये थे । इसी महारानी ने स्वप्न के आदेशानुसार, देश भर में ग़ुसलख़ाने बनवाये ।

राजकुल के सिवाय और और स्त्रियाँ भी नामी हुई हैं । सप्तम राज्याधिकारी "काकू ज़नज़ेनी" की स्त्री जब विधवा हो गई तब उसने अपना सिर मुड़ाकर वैराग्य ले लिया और कामाकुरा-केतोकेजी मन्दिर में रहने लगी । उसने इस मन्दिर के लिए एक ख़ास तरह का अधिकार प्राप्त किया अर्थात् निर्दयी पुरुषों के हाथों से उनकी स्त्रियों के रक्षा करने का उपाय रचा । जब दुखिया स्त्री अपने पति को त्याग देती थी तो वे तीन वर्ष तक इस मन्दिर में आकर रहती थी । परन्तु उसको अपने शुद्धाचरण का विश्वास दिलाना होता था । मन्दिर में आजाने पर पति का कुछ वश नहीं चल सकता था और बड़े से बड़ा राजकर्मचारी भी उसे वहाँ से हटा नहीं सकता था । सज्जनों ने इस प्रबन्ध को ऐसा पसंद किया कि ६०० वर्ष तक मन्दिर का यह नियम स्थिर बना रहा । मन्दिर का नाम भी "विच्छेद मन्दिर" पड़ गया । सहस्रों स्त्रियाँ अपने दुष्ट पतियों के दुर्व्यवहार से निस्तारी गईं ।

पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जापानी-साहित्य में स्त्रियों के बनाये अनेक ग्रंथ हैं। मुरासाकी-शिकीवू वह प्रसिद्ध स्त्री है जिसने ५४ जिल्दों में "मनोगतारी" नामक ग्रन्थ लिखा है। उसमें "गेजी" नामक एक व्यक्ति की चर्चा है। यह सर्वसाधारण को सदाचार की शिक्षा देने के लिए लिखा गया है। यह सन् १००४ की बात है। वेरन-सुई-मत्सु ने लिखा है—"उपाख्यान, उपन्यास तथा और कहानियों की पुस्तकें जो "हियान"-राजत्व काल में लिखी गई हैं, विशेषतः स्त्रियों की रचना हैं। जापानी भाषाकठिन और आशय गूढ़ होने के कारण पुरुषगण उसी को पढ़ते और मनन करते थे, और, देश-भाषा का पठन पाठन स्त्रियों के हाथ में था"।

इसी भाँति कौंट-ओकूमा ने कहा है—"मेरे विचार में सब स्त्रियाँ थोड़ी बहुत पढ़ी लिखी हैं और विद्या का उनको अधिक चसका है। प्रेम-कथा को समझने और विस्तृत करने की उनको अच्छी समझ है। सब से पहिले जापानी स्त्रियों ने ही उपन्यास लिखे हैं। संसार भर में मुरासाकी-शिकीवू से पहिले कोई स्त्री उपन्यास लिखनेवाली नहीं हुई।

जापान में जापानी और चीनी दोनों भाषाओं का साथ साथ ही प्रचार बढ़ता रहा। पुरुषों ने चीनी-साहित्य का स्वाद लिया, स्त्रियों ने मातृ-भाषा का शृङ्गार किया। जिन दिनों क्यूटो में राजधानी थी और बड़े अमन से राजकाज चलता था; राजदरबार में महारानी और उसकी सहेलियों का बड़ा अधिकार था, तथा पुरुषों की इतनी नहीं चलती थी तब महलों में साहित्य की ख़ूब चर्चा रहती थी। फलतः जापानी साहित्य ने उन्नति प्राप्ति की और चीनी भाषा का आदर घटने लगा। महारानी का अधिकार मिकाडो से भी अधिक था, तथा उसकी सहेलियाँ ऊंचे ऊंचे दर्जे के हाकिमों से सम्बन्ध रखती थीं। अस्तु, उनका अनुराग जिस भाषा (जापानी) में

था उसीका प्रेम सर्व साधारण में अधिक होने लगा। जापानी-ग्रन्थ अधिकतर फैलने लगे। पुरुषों को भी समयानुसार देश-भाषा की ओर ध्यान देना पड़ा।

स्त्री का अपने पुरुष पर बड़ा अधिकार होता है। वह घर की मालकिन ठहरी। सन्तान भी उसी से शिक्षा लेती है। अनेक प्रसिद्ध पुरुषों ने बड़प्पन के गुण अपनी माताओं से ही प्राप्त किये हैं। जिस बात को मा चाहती है सन्तान भी उसे उत्तम समझती है। फिर स्त्रियों द्वारा देश भाषा की उन्नति होना साधारण सी बात है। कविता और उपन्यास इन दोनों बातों में स्त्रियाँ अधिक नाम पैदा करती हैं। परन्तु गंभीर विषयों के लिए हमको चीनी-भाषा का ही आश्रय लेना होगा"।

जिन स्त्रियों पर जापानियों का ऐसा विश्वास है वे कदापि नीच नहीं रह सकतीं।

कोरिया से आये हुए धर्मों ने स्त्रियों का पुराना अधिकार बहुत घटा दिया था। बुद्ध के धर्म ने बताया कि "स्त्रियाँ पापकर्मा हैं, पुरुषों की अपेक्षा उनका स्वभाव बहुत ही नीच है। स्त्रियाँ अपने कर्मों के प्रभाव से जब तक पुरुष-देह न प्राप्त करलेंगी, तब तक वे निर्वाण पद को नहीं पा सकतीं। स्त्रियों में पाँच अवगुण सर्वदा वर्तमान रहते हैं—उद्दण्डता, असन्तुष्टता, मिथ्या-अपवाद, ईर्ष्या, और मूर्खता। दस में से आठ स्त्रियाँ इन दोषों से पूर्ण होती हैं और ये दोषही उन्हें नीच बनाते हैं। पुरुष और स्त्री के स्वभाव में दिन रात का सा अन्तर है। मूर्खता के प्रभाव से स्त्री को इस बात की समझ नहीं होती कि उसकी स्वाभाविक दुष-चेष्टाओं से सब कुल को दाग़ लग सकता है। उसके लिए स्वतंत्रता बहुत बुरी बात है। संसार में सुखमय जीवन प्राप्त करने के लिए स्त्रियों का बड़ा कर्तव्य यही होना चाहिए कि वे सर्वदा अपने पति के आदेशानुसार चलें"।

बौद्ध-धर्म्म श्रौर कनफूशस की शिक्षा ने स्त्रियों के स्वभाव में बड़ा अन्तर ला दिया। जिस धर्म की उन्नति जापान में स्त्रियों द्वारा हुई उसीने उनकी अधोगति की। प्रोफ़ेसर "नारूस" ने लिखा है कि बौद्ध-धर्म की उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए तीन स्त्रियाँ (जनशिनी, जनज़नी, श्रौर कीज़ेनी) भारतवर्ष में भी आई थीं। उस काल में स्त्रियों का उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था, परन्तु ज्यों ज्यों बौद्ध-धर्म का प्रभाव बढ़ा उनका पतन होता गया। तिस पर भी जापानी स्त्रियों ने अपने गौरव को एक दम भुला भी नहीं दिया। यद्यपि उनका युद्ध में जाना जारी न रहा श्रौर न उन्हें युद्ध शिक्षा दी जाने लगी, परन्तु अपनी रक्षा करने, समय पड़े पर अपनी सन्तान को बचाने, प्रतिष्ठा के लिए आत्मघात करने, आदि आदि वीरोचित कर्म सब सिखाये जाते थे। संसार को सुखमय बनाने के लिए गाना, नाचना, अलंकार-विद्या, घर सजाना इत्यादि सीखने के सिवाय आकस्मिक घटनाओं को सँभालने, गृहस्थ की आवश्यकताओं का प्रबन्ध करने, श्रौर बच्चों को पढ़ाने लिखाने का काम सीखना बहुत ज़रूरी था। दुःख श्रौर कष्ट सहने के लिए कठोरचित्त बनजाना उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाता था। चीख़ मार कर रोना या आँसू बहाना वीर-स्त्रियों के लिए बड़ी शर्म की बात थी।

यद्यपि फ़ौजी श्रौर राजकीय कामों में स्त्री की पूछ न थी परन्तु घरों में उनका ही राज्य था। माता श्रौर पत्नी सब से अधिक आदर और प्रेम की सामग्री थीं। जिस समय पति श्रौर पिता लड़ाई में मग्न होते थे घर का सब प्रबन्ध केवल स्त्रियाँ करती थीं। बच्चों का पालन श्रौर सदाचरण-शिक्षा इनके अधीन थी।

नये परिवर्तन के साथ साथ स्त्रियों की दशा में भी परिवर्तन हुआ। सन् १८७१ ई० में पुरुषों के साथ अनेक लड़कियाँ भी शिक्षा प्राप्त करने अमरीका को गईं। उन दिनों के शाही फ़रमान में ये वाक्य थे—

"अब तक ऐसा विचार था कि स्त्रियाँ मूर्ख होने के कारण समाज में आदर पाने के योग्य नहीं हैं परन्तु यदि शिक्षा पाकर वे चतुर बन जायँगी तो आदरणीय हो सकेंगी"।

जब देश का प्रबन्ध छोटे छोटे अधिकारियों में बँटा हुआ था उस समय स्त्रियों के सिवाय दुकानदार और किसानो की भी कुछ प्रतिष्ठा नहीं थी।

तत्कालीन एक जापानी ने अपनी स्त्रियों की प्रशंसा में एक लेख इस प्रकार लिखा है—"आदि काल से हमारी स्त्रियाँ पुरुषों के समान होती चली आई हैं और यद्यपि नीच जातियों मे उनके आचरण बिगड़ गये हैं परन्तु अब भी स्त्रियाँ हमारी गृह-लक्ष्मी हैं। नीच लोगों के चरित्र और निन्दनीय बौद्ध-शिक्षा ने उच्च-कुल की स्त्रियों की प्रतिष्ठा तनक भी कम नहीं की है। हमारे प्राचीन इतिहास को पढ़ने से मालूम होगा कि जापान के १२४ महाराजाओं की नामावली में नौ स्त्रियों का भी नाम है। एक महारानी के राजत्व में हमने कोरिया फ़तह किया; दूसरी के समय जातीय साहित्य ने उन्नति की और देश में धर्म का विस्तार हुआ। अब पाश्चात्य जातियों के अनुकरण के अनुसार हमे नीच-श्रेणी की स्त्रियों को भी उच्च-हृदय बनाने का यत्न करना चाहिए। ऐसा करने से ही हमारे देश की सभ्यता स्थिर रहेगी। अपनी शिक्षित माता और लड़कियों की सहायता से हमारा भविष्यत् और भी सुन्दर बनेगा।"

शिक्षा-प्रणाली में स्त्री-शिक्षा परमोपयोगी है। सर्कारी रिपोर्ट में प्रकाश हुआ था कि "स्त्री-शिक्षा अन्य सब शिक्षाओं का मूल है।" नेपोलियन ने जैसा लिखा है कि "बच्चे का भविष्य जीवन माता बनाती है" यह बात जापानी भी मानते हैं और यही कारण है कि जापान मे स्त्री-शिक्षा पर इतना ज़ोर है। पोर्टआर्थर से एक योद्धा ने अपनी स्त्री को लिखा था—"बच्चों को मदरसे भेजती रहना। उनका अच्छा भला तुम ही पर निर्भर है"। कौंट ओकूमा स्त्री-शिक्षा के बड़े पक्षपाती

हैं। वे कहते हैं—"मुझको यह पूर्ण निश्चय है कि न्यायानुसार स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा मिलनी चाहिए"। मिस्टर फ़ाकूसावा कहते हैं—"जापान की स्त्रियों को शिल्प-विज्ञान और साहित्य मे पुरुषों के समान ही शिक्षा देनी चाहिए। उनको विद्यावती होने से देश को यह भी लाभ है कि स्त्रियों का प्रभाव पुरुषों की अपेक्षा अधिक होता है। पिता की अपेक्षा माता अपने बेटों को अधिक शिक्षा दे सकती है। हमारे देश की स्त्रियों की स्थिति इस सम्बन्ध मे सब देशों से अच्छी है। प्राचीनकाल में अपना सतीत्व-रक्षण करने के लिए वे कमर में छुरी रखती थी। परन्तु वर्तमान में उनकी विद्या का तेज ही उनको सब आपदाओ से रक्षित रखता है।

स्त्री-शिक्षा-प्रणाली स्थिर करने के लिए जापानियों ने अमरीका से सहायता ली है और अब जैसे उत्तम ढंग से काम हो रहा है उस से आशा होती है कि स्त्रियों को उच्च-शिक्षा का पूर्ण-फल प्राप्त होगा। स्त्री-शिक्षा के विश्व-विद्यालय का विवरण करते हुए प्रोफ़ेसर नारूज़ कहते हैं—

"स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने के लाभों का वर्णन करना व्यर्थ है। उनमें निरीक्षण, परीक्षा और कर्तव्य शक्ति उत्पादन करना परमावश्यक है। यदि उनकी ये मानसिक-शक्तियाँ पूरी बढ़वारी को प्राप्त हो गई तो वे जिस काम मे हाथ डालेंगी उसे ही सफल करेंगी। देशहितैषियो को शिक्षा के इस उच्चाशय पर सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। एक और भी विचार ध्यान देने योग्य है कि लड़कियों की शिक्षा का क्रम ऐसे ढंग का हो कि जब वे स्कूल छोड़कर संसार में पड़ें तो उन्हें झंझट न जान पड़े। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली मे यही भय किया जाता है कि शिक्षित स्त्री गृह-कर्म करने योग्य नहीं रहेगी। यह भय हमारे देश मे ही नहीं वरन सर्वत्र व्यापक है। अपनी लड़कियों को शिक्षा देते समय उनकी पूर्व स्थिति, वर्तमान व्यवस्था और भविष्यत् की आवश्यकताओं पर ध्यान रखना चाहिए।

उनकी शिक्षा का ढंग उन्हीं के ढंग पर होना चाहिए। जापानी लड़कियों को परम्परागत सद्‌गुणों के साथ विदेशी रमणियों के उत्तम आचरणों को सीखना योग्य है"।

घर के काम काजों के सिवाय सामाजिक व्यवहार की शिक्षा भी परमावश्यक है। अभी तक दोनों में एक बात भी अच्छी तरह सिद्ध नहीं हुई है। स्मरण रखना चाहिए कि घर की भाँति समाज की सेवा करना भी स्त्री के लिए ज़रूरी है। भविष्यत् मे यह ध्यान रहे कि अपने घर को लाभ पहुँचाने के साथ साथ समाज को प्रतिष्ठित बनाना भी उनका धर्म है। स्त्रियों को निरी दासी ही नहीं समझना चाहिए। पुरुषों के समान उनमे भी आत्मा है। उनके धार्मिक विचार भी पुरुषों के समान उन्नत होने चाहिएँ। जब तक उनको साँसारिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार की शिक्षा न दी जायगी, तब तक पढ़ने लिखने का पूर्ण फल कदापि प्राप्त न होगा।"

एक अमरीकन लेडी ने जापानी प्रोफ़ेसर नितोबे का पाणिग्रहण किया था। उसने जापानियों के गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध मे कहा है—"यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जापान-नरेश भी राज्य के कठिन विषयों में महारानी से सलाह लेते हैं। साधारण गृहस्थियों मे घर का सब प्रबन्ध स्त्रियोके हाथ मे रहता है। बच्चों का पढ़ना लिखना और घरेलू खर्च स्त्री ही अपने हाथ में रखती है। अस्तु, पुरुष की कमाई बरबाद करने अथवा उसमे बरकत लाने का काम घरवाली का ही है"।

वर्तमान महारानी का बड़ा प्रभाव है। वह प्रभाव उसके स्त्री-जनोचित गुणोंके ही कारण है। स्त्रियों की उन्नति में वह बड़ा उद्योग करती है। कुलीन कन्याओं की पाठशाला उसके निज संरक्षण मे है। जब अवकाश मिलता है तब वह इसे आकर देखती है। स्त्रियों की एक शिल्प-शाला भी महारानी के प्रबन्धाधीन है। स्त्रियों के

विश्व-विद्यालय के लिए महारानी ने बहुत बड़ा चन्दा दिया था। रोगी और आहत सैनिकों की सेवा के लिए, जो रैडक्रास सोसाइटी है उसकी प्रधान संचालक महारानी ही है।

महारानी के सिवाय और कई कुलीन स्त्रियाँ हैं जो पूर्ण शिक्षा पाकर अब शिक्षाविभाग मे काम करती हैं। प्रसिद्ध वकील "हाता-यामा" की स्त्री राजनीति और स्त्रियों के सुधार में बड़ी चेष्टा करती है। मिससूदा मिशन के साथ अमरीका से पढ़ कर आई है। इसने उच्च-शिक्षा का बड़ा विस्तार किया है।

अन्य कारबार भी स्त्रियाँ चलाती हैं। मिसेज़ हिरूकाआसा आज कल ओसाका में नामी सर्राफ़ है। राजनीति के परिवर्तन के साथ मिसेज़ हरूका ने दुकान का कारबार अपने हाथ मे लिया और देश में उपद्रव होने के कारण जो काम में बेतरतीबी पैदा होगई थी वह दुरुस्त की। पहिले ही पहिल अपनी हिम्मत पर इसने कोयले का ठेका लिया और .खूब नफ़ा उठाया। फिर ठेके का काम दूसरों को सौंप कर बंक के काम में तरक्की करने की चिन्ता की और वर्तमान पदवी प्राप्त की। साथ ही साथ, स्त्रियों की उन्नति करने वाली सभाओं को सहायता दी। टोकियो में स्त्रियों की यूनिवर्सिटी का जन्म दिया। उसके निज के बंक-घरों में स्त्रियाँ क्लर्क का काम करती हैं। केवल स्त्रियो के रोज़गार के लिए उसने कई कारख़ाने खोले हैं।

"मेडलकोटो" एक डाकृर की लड़की थी और एक डाकृर को विवाही गई थी। इसने विलायत में डाकृरी पढ़ कर बच्चे जनने का काम (दाईपना) सीखा तथा अपने देश में अन्य स्त्रियों को दाईपने का काम सिखाने के लिए स्कूल खोल दिया, जिसमें देश के बड़े बड़े डाकृर और डाकृरानी सहायता देते हैं। जापान की प्रजा में आधी संख्या स्त्रियों की है। वे बराबर अपने पुरुषो की सहायता करती हैं। खेत-क्यार में सर्वदा अपने मर्दों के

साथ साथ रहती हैं। सूत कातने और कपड़ा बुनने में इनकी तादाद पुरुषों से बहुत अधिक है। लड़ाई भिड़ाई के कारण जब पुरुष सेना में बुला लिये जाते हैं तब भी उनके घर का काम काज चलता रहता है। पुरुषो की जितनी प्रशंसा युद्ध में लड़ने से मानी जाती है स्त्रियो का उतना ही अहसान घर के कारबार चला लेने में माना जाता है। देश पर विपत्ति पड़ने पर स्त्री और पुरुष दोनो अपने कर्तव्य में तन्मय हो जाते हैं और यही देशोन्नति का प्रधान कारण है। इसीलिए अब स्त्रियो की दशा सुधारने पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। अब गृहस्थ में स्त्री की बात ख़ूब मानी जाती है। वे अपनी कमाई की मालिक आप होती हैं। वे सन्तान गोद ले सकती हैं। उसकी इच्छा के बिना कोई उसकी सन्तान को गोद नहीं रख सकता। पिछले दिनों एक यात्री ने जापान की स्त्रियों के विषय में लिखा था—"जापानी स्त्रियाँ दुनियादारी के कामों में बहुत हिस्सा लेती हैं। बहुत सी दुकानें केवल स्त्रियाँ ही चलाती हैं। मुसाफ़िरख़ानों का प्रबन्ध इन्हीं के हाथ मे है। बड़े घरों में सास या ददिया सास के हाथों से घर का सब काम होता है।"

जापानियों की नीति में तीन परिवर्तन हुए हैं। सब से पहिले स्वदेशी प्राचीन रीति-नीति का प्रचार था। फिर चीनियों के शिक्षानुसार व्यवहार बँधा और अब योरप के अनुकरण पर देश चलता है। प्राचीन रीति के दिनों मे स्त्रियों का अच्छा आदर था। राजनैतिक, पारमार्थिक और व्यावहारिक सब प्रकार के कर्म करने का उन्हे अधिकार था। उन दिनों में स्त्रियों को पुरुषो के समान माना जाता था और उन्हे पराधीन रखने का ध्यान उदय नहीं हुआ था। स्त्रियाँ तक राजगद्दी पर बैठती थीं।

जब चीनी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव हुआ तब स्त्रियों की स्वाधीनता छीन ली गई और वे पुरुषों की इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने लगीं।

जब यूरोपियन सभ्यता का प्रकाश देश में आया तो स्त्री-शिक्षा ने फिर प्रचार पाया। स्त्रियों की सामाजिक दशा में बड़ा अन्तर हो गया। न्यायानुसार स्त्रियों का अधिकार बढ़ाया गया। जब तक स्त्री विवाह न करे उसके सब हक़ पुरुषों के समान रहें। यदि वह किसी घराने की वारिस बनाई जाय तो घर के सब स्त्री पुरुषों को उसके अधीन होकर चलना पड़े। स्वामी के मरने पर सन्तान का शासन उसी के हाथ में रहेगा, अपनी निज की जायदाद पर उसका पूरा अधिकार रहेगा।

सन् १८७३ ईसवी में विवाह-बंधन तोड़ने का क़ानून बना जो इस प्रकार है—"बहुधा देखा गया है कि यदि स्त्री किसी मुख्य कारण से अपने पति को छोड़ना चाहती है तो पति उसको स्वतंत्र करने में अनेक विघ्न करता है। ऐसा करना स्त्री की स्वतंत्रता में बाधा पहुँचाना है। इसलिए भविष्यत् में स्त्री को अधिकार है कि अपने पिता, भ्राता अथवा अन्य सम्बन्धियो के द्वारा अपने पति पर नालिश कर दे"। जब स्त्री-पुरुष अपनी इच्छा से अलग अलग होना चाहें तो वे भी ऐसा कर सकते हैं। क़ानूनन विवाह-बन्धन तोड़ने के कारण ये हैं—दूसरा विवाह कर लेना, व्यभिचार, राज्य से कठिन दंड पाना, असहनीय कष्ट देना, निरुद्देश होना, निरादर करना, तीन वर्ष तक जीने मरने का कुछ पता न चलना, आदि आदि।

भारतवर्ष की भांति जापान में भी गानेवाली वेश्यायें होती हैं और वे "गीशा" कहलाती हैं। वे बहुधा नीचजाति की अनाथा होती हैं और बचपन में ही इस काम के लिए ख़रीदी जाती हैं। सात बरस की उम्र से इनकी तालीम शुरू होती है। उनको नाचना, गाना, बजाना तथा नाज नख़रा सिखाया जाता है। ये लड़कियां तनख्वाह द्वारा कर विदेशियो के साथ महीनो रह जाती हैं। इनके खाविन्दों को इनमें कुछ शर्म नहीं लगती। बहुधा ख़ुशी के वक़्त जापान के अमीर लोग

अपने यहां नाँच कराते हैं, उस समय इन से महफ़िल की रौनक़ दुगनी हो जाती है। बाज़ी वेश्याएँ ऐसी चतुर और सलीक़ेवाली होती हैं कि बड़े अमीर उन पर रीझ कर उनसे विवाह कर लेते हैं। गाने की अपेक्षा उनकी बातों में बड़ा जादू है। कई नौजवान पढ़ने लिखने के दिनों में इनके हाव-भाव से मोहित होकर इनके अधीन हो जाते हैं और जब घरवाले जवाब दे देते हैं तो वेश्या की सहायता से परीक्षा पासकर ऊँचे उहदे पर नियुक्त हो, अपनी सहायक वेश्या का पाणिग्रहण कर लेते हैं। जापानी उपन्यासों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं।

भारतवर्ष की छावनियों में जैसे रंडियों के चकले होते हैं, जापान में व्यभिचारिणी स्त्रियों का मुहल्ला योशीवारा कहलाता है। कहावत यों चली आती है कि जब सत्तरहीं सदी के आरम्भ में यद्दो नगर राजधानी बना तो देश देशान्तर से भाँति भाँति के लोग अपने अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए वहाँ एकत्र हुए। उन्हीं में योशीवारा शहर की कई सुन्दर लड़कियाँ राजधानी में आईं और जहाँ तहाँ अपना अड्डा जमाकर रहने लगीं। जब इनके व्यभिचार की चर्चा हाकिमों तक पहुँची उन्होंने इनके पेशे को तो नहीं रोका, परन्तु उन सब को एक मुहल्ले में बसा कर उसका नाम योशीवारा रख दिया। यद्दो के सिवाय अन्य शहरों में चकले का नाम 'युजोवा' या 'कुरुवा' कहलाता है।

विदेशी लोगों की बहुधा इसी प्रकार की स्त्रियों से भेंट होती है और वे जब स्वदेश को लौट कर जाते हैं तो जापानी स्त्रियों को बदनाम करते हैं। परन्तु यदि वे अमीर घरों की लेडी तथा भले मानस जापानियों की गृहलक्ष्मी और औसत दर्जे के लोगों की सहधर्मिणियों के आचार व्यवहार को समझ पाते तो उनको विश्वास हो जाता कि इनके समान सरल स्वभाव, और शुद्धाचरण वाली बहू बेटियाँ विलायत में मिलनी कठिन होंगी। जिन स्त्रियों से विदेशी लोग देश-दशा का अनुमान लगाते हैं वे सब वही होती

हैं जो दरिद्रता की मारी या लालच की सताई हुई हैं, या जिनके मा-बाप ख़ुद दुराचारी हैं। जिस भाँति लंदन की रीजेन्ट स्ट्रीट, पेरिस की कज़ीनोडी पेरिस, ग्रौर चिकागो की नारकी लीला देख कर कोई समस्त योरप ग्रौर अमेरिका को व्यभिचारपूर्ण नहीं कह सकता। इसी भाँति इन वेश्या ग्रौर ख़ानगियों को देखकर समस्त जापान का अपमान नहीं हो सकता। जापान की नीच वेश्याओं की बोल चाल ग्रौर व्यवहार भी प्रशंसा के योग्य है। जापान के लोग इन स्त्रियाँ के यहाँ खुल्लमखुल्ला नहीं जाते। प्राचीन काल के सामुराई भी मुँह छिपाकर इनके घर जाते थे। भला मानस जापानी इनके मुहल्ले में जाने से बहुत शरमाता है। आतशक ग्रौर सुज़ाक की सताई हुई स्त्रियाँ की सातवें दिन परीक्षा होती है ग्रौर सब व्यभिचारिणी स्त्रियाँ के एक मुहल्ले में बस जाने से शेष सब शहर साफ़ रहता है।

चीन कोरिया ग्रौर जापान में बहुत दिनों से यह नियम चला आता है कि धनी लोग विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियाँ रख लेते हैं। जापान में अब क़ानून बन गया है कि ऐसी स्त्रियों की सन्तान कोई अधिकार न पावे। चीन मे लोग दूसरी स्त्री रखना इसलिए आवश्यक समझते है कि विवाहिता स्त्री के यदि लड़का न हो तो उनसे यह लाभ प्राप्त करें। बहुतेरी विवाहिता स्वयं लड़के के लिए अपने पति को ग्रौर स्त्री करा देती थीं। जापान के लिए अब यह बात पुरानी पड़ गई है। सन्तान न हो तो गोद लेकर वंश चलाया जाता है।

जापान में उपपत्नी का आदर विवाहिता के समान कभी नहीं हुआ। वह सर्वदा बड़ी दासी के बराबर समझी गई। यदि उन्हें विवाहिता के साथ रहना पड़ा तो सर्वदा उसकी आज्ञा माननी पड़ी। विवाहिता को उपपत्नी सर्वदा आकूसामा (श्रीमती जी) कह कर संबोधन करती रही ग्रौर आप स्वयं केवल अपने नाम से

पुकारी गई। यहाँ तक कि उपपत्नी का पेट-जाया लड़का भी मा कह कर अपने बाप की विवाहिता स्त्री को ही पुकारेगा। मा धाय के समान आदर पावेगी, और माता का यथार्थ सम्मान विवाहिता को मिलेगा।

जापान में अब भी ऐसे लोग वर्तमान हैं जो उपपत्नी रखने की प्रणाली का पक्ष करते हैं और कहते हैं कि "इस रीति के हट जाने से अच्छा नहीं होगा। बहुत से लोग छिप कर व्यभिचार करेंगे और ऐसा होने से योरप कीसी ऐसी सन्तान बढ़ेगी जिनका कोई मा-बाप न बनेगा। अथवा लोग चकले की सैर किया करेंगे अथवा अपने अड़ौस पड़ौस की बहू बेटियों पर मन डुलावेंगे। उपपत्नी रखने में कुछ पाप नहीं है। उसके पेट से जन्मे हुए बच्चे संसार में निरादर की दृष्टि से नहीं देखे जाते परन्तु अब उपपत्नी महानीच समझी जायगी और उस की सन्तान हरामी कहलावेगी। पुरुष, जो उपपत्नी रखने से बुरा नहीं समझा जाता था, अब छिपकर, इस कर्म को करेगा; अपनी विवाहिता के साथ कपट व्यवहार रक्खेगा और वह भी भीतर ही भीतर, अविश्वास और डाह में जला करेगी"। उपपत्नी के कितनेही लाभ क्यों न हों यह रीति जापान से एक साथ उठी जाती है। साथही साथ स्त्री त्याग कर मन मानी स्त्री को विवाहने का प्रचार बढ़ता जाता है। एक से अधिक स्त्री रखना किसी प्रकार उचित नहीं समझा गया है।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि चीन और कोरिया की स्त्रियों के मुक़ाबिले में इनका सम्मान अधिक बढ़ता जाता है। उपर्युक्त देशों में स्त्रियाँ केवल पुरुषों की सुख सामग्री और सन्तान जनने का यंत्र मात्र हैं। परन्तु जापान में वे अब बराबरी का दर्जा पा रही हैं। चीन और कोरिया में उनको केवल घरेलू कामों की शिक्षा ही दी ज़ाती है।

हिन्दू-स्त्रियों की भाँति जापान में स्त्रियाँ कभी स्वतंत्र नहीं समझी जातीं। उनको बाल्यकाल में पिता के अधीन, जवानी में पति के आसरे और बुढ़ापे में लड़कों के वश में रहना होता है। पति जब भोजन पर बैठता है तो स्त्री उसे परोसने और आवश्यक पदार्थों को लाने के लिए घुटने टेके खड़ी रहती है। मालिक जब सज धज कर सैर सपट्टे के लिए तैयार होता है तो वहउसे झुक कर प्रणाम करती है। कई बातों में जापान-रमणी भारतीय ललना-गण से अच्छी हैं। उनमें न परदा है और न घूँघट का नियम है। उनके पुरुष उन्हें मारते भी बहुत कम हैं।

जन्म के सातवें दिन बच्चे का नाम रक्खा जाता है और तीस दिन का होने पर मुंडन कराया जाता है। उस दिन निहला धुला और उमदा कपड़े पहिन कर उसकी माँ उसे मन्दिर में ले जाती है। वहां पूजन के पश्चात् पितृदेव को दंडवत् की जाती है। फिर उस लड़के को नज़दीकी रिश्तेदारों के पास ले जाती है जो उसे तरह तरह के खिलौने और मिठाई देते हैं। चार महीने का होने से वह मर्दों का सा कपड़ा पहिनने लगता है।

ग्यारहवें महीने एक और जिवनार होती है। बच्चे का सिर कहीं कहीं से मुड़वाया जाता है और बाक़ी सिर पर बाल छोड़ देते हैं।

जापान में निस्सन्तान रहना अच्छा नहीं समझा जाता। इसी लिए यदि किसी के अपना लड़का नहीं हुआ तो वह गोद लेकर अपना वंश चलाता है। अकसर ऐसा देखा जाता है कि कोई कोई कारीगर कई पुश्तों से बड़ा नामी चला आता है। उसका कारण यह है कि वह अपने शागिर्दों में जिसको सब से चतुर पाता है उसे ही अपना बना लेता है। ऐसा दस्तूर अनेक पेशेवालों में है। बड़े बड़े सौदागर अपने चतुर मुनीम को इसलिए गोद ले लेते हैं कि काम अच्छी तरह तरक्क़ी करे। मुनीम बुढ़ापे में मालिक के लड़के को गोद ले लेता है और वह लड़का मुनीम जी के चतुर पुत्र

को अपना बना लेता है। इस प्रकार अदला बदला होता रहता है परन्तु दुकान का नाम वही रहता है। अनेक जापानियों ने यूरोपियन लड़कों को गोद लेकर अपना जामाता बना लिया है।

विदेशी लोग जापानी बच्चों की बड़ी प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि उनसे अधिक सुशील बच्चे संसार भर में कहीं नहीं हैं। वे अपने मा-बाप और बड़े लोगों के साथ बड़े सम्मान से बरतते हैं। उनका बाल्यकाल बड़ा ही सुन्दर है। जो उन्हे देखता है प्यार करता है और उन्हे हँसाने को दिल चलाता है। अन्नप्राशन बहुधा दो तीन वर्ष की उम्र में होता है। अनेक माताएँ पाँच वर्ष की उम्र तक दूध पिलाती रहती हैं। बच्चों को बहुत दिन तक स्तनपान कराने के कारण ही जापान की स्त्रियाँ शीघ्र बुड्ढी हो जाती हैं।

दिन भर बच्चे अपनी गली मुहल्ले में खेला करते हैं। उनके खो जाने की फ़िक्र नहीं है क्योंकि हर एक बच्चे के कपड़ों में उसके नाम का टिकट लगा रहता है। दूसरे मुहल्ले के आदमी उस बच्चे को उसके मा-बाप के पास पहुँचा देते हैं।

लड़कों को खिलौने बहुत मिलते हैं, जो ख़ूब ही सस्ते होते हैं, ग़रीब से ग़रीब मा-बाप भी अपने बच्चों को खिलौना ख़रीद सकते हैं। प्रत्येक वर्ष तीसरी मार्च को एक मेला होता है, जिसमे छोटी छोटी लड़की अच्छे कपड़े पहन कर इकट्ठी होती हैं। यह गुड़ियों का मेला कहलाता है। सब लड़कियाँ उस दिन गुड़ियों से खेलती हैं। गुड़ियों की शक्ल महाराज, महारानी और दर्बारी हाकिमों की सी बनाई जाती है। गुड़ियाँ प्रत्येक घर मे बहुत सँभाल कर रक्खी जाती हैं और इस दिन बड़ी बड़ी परदादी तक की गुड़िया निकाली जाती हैं। मेले के पीछे फिर सँभाल कर रख दी जाती है। ५ मई को लड़कों का तमाशा होता है जो "झंडे का मेला" कहलाता है। उस दिन लड़के शूर वीरों की भाँति भाला और झंडा

लेकर निकलते हैं। हर एक घर के दरवाज़े पर एक लंबा बाँस खड़ा किया जाता है। जिसमें काग़ज़ की मछली टाँगी जाती है। इन मछलियों में जब हवा भर जाती है तो वे अपनी दुम हिलाती हैं और पंख फटफटाती हैं और मछली ही सी जान पड़ती हैं।

जापानी बच्चों के लिए घर मे पालना नहीं होता। स्त्रियाँ और बड़े भाई-बहिन उनको एक कपड़े में रखकर पीठ पर झुला लेते हैं। बस यही उनका पालना है। दिन भर किसी न किसी की पीठ पर इसी कपड़े के पालने में वे झूलते रहते हैं। किसी गली-मुहल्ले, बाग़-बग़ीचे अथवा मन्दिर में जाकर देखो—५-६ बरस की लड़कियाँ अपने छोटे भाई बहिन को पीठ पर झोली में लटकाये हुए हैं और अपने खेल में मगन रहती हैं। वे पतंग उड़ाती हैं। वे दौड़ती भागती हैं। वे कूदती फाँदती हैं। उन्हें इस बात की बिल्कुल चिन्ता नहीं होती कि उनकी पीठ पर उनका छोटा भाई या बहिन है।

बच्चा भी पीठ की झोली में बड़ा मगन जान पड़ता है। बहिन के चलने फिरने में उसका सिर हिलता झुलता है, परन्तु उसे इस बात की कुछ चिन्ता नहीं, वह अपना अँगूठा या खिलौना चूसता हुआ बादशाह सा ख़ुश नज़र आता है। हँस हँस कर झुनझुना बजाता है।

जब किसी कारण से वह रोता है तो बहिन कूदने लगती है और कोई लोरी गाती है। तब धीरे धीरे बच्चे की आँखें मुँदती आती हैं और वह चुपचाप सो जाता है। बहिन फिर उसको भूलकर अपने खेल में लग जाती है।

जापान बच्चो के लिए स्वर्ग कहा जाता है। जापानियों की बराबर और लोग नहीं देखे जाते जो अपनी सन्तान से इतनी ख़ुशी प्रकट करते हों। वे इनकी उँगली पकड़ कर इधर उधर लिए फिरते हैं; इनके खेल तमाशे मे शामिल होते हैं; नये से नये खिलौने इन्हें ला देते हैं। इन्हें मेलों, तमाशों, और ज़ियाफ़तों में ले

जाते हैं। बच्चों की शक्ल देखने में बड़ी प्यारी लगती है। बच्चों के आचरण सुहावने होते हैं। वे मा-बाप की आज्ञा मानते और उनकी सेवा करने में बड़ी प्रसन्नता प्रकाश करते हैं। अपने से छोटे भाई-बहिनों पर वे बड़े मिहरबान रहते हैं।

लड़कों के खेल कई तरह के हैं। आँख-मिचौनी, ताश, लट्टू, गेंदबल्ला, शतरंज आदि।

जापानी लड़के पतंगबाज़ी के बड़े शौकीन हैं। जापानी पतंगें और कनकव्वे मोटे कागज़ के होते हैं और बाँस के ढाँचे पर कागज़ चढ़ाकर बनाये जाते हैं। वर्ग और आयताकार पतंगों पर शूर वीर लोगों और सुघड़ स्त्रियों के चित्र बने होते हैं। देवताओं के रूप भी उनपर बनाये जाते हैं। कोई कोई पतंग छः छः फुट लंबी चौड़ी होती है। हर एक लड़का यही कोशिश करता है कि दूसरे की पतंग को काट दे। गोंद मे पिसा हुआ काँच मिलाकर डोरी पर माँजा फेरते हैं। पतंगें ऐसी ऐसी बनी है कि उनपर आदमी बैठ गये हैं। कहा जाता है कि एक बार चोरों ने पतंग के सहारे से एक मकान की छत पर पहुँच कर चोरी की। तब ही से बड़ी पतंग बनाना रोक दिया गया।

जापानी लोग मन-बहलाव के लिए थियेटर अर्थात् नाट्यशाला मे जाते हैं, मल्लों की कुश्ती देखते हैं; नाचने गानेवाली स्त्रियों की महफ़िलों में शरीक होते हैं; मन्दिरों मे सैर करने और देवार्चना के लिए जाते है। बगीचों मे जब नये फूल खिलते हैं तो उनकी बहार देखते हैं। शेर-ग़जल बनाने की मजलिस करने का भी जापानियों को बड़ा शौक़ है। शतरंज भी खेलते हैं। ताश खेलने का भी रिवाज है।

शतरंज को जापानी में "शोगी" कहते हैं। यह खेल पहिले पहिल चीन से यहाँ आया है। परन्तु अब इसको अदल बदल कर जुदा ही खेल बना लिया है। शतरंज मे ८१ घर होते हैं और हर तरफ़

बीस मुहरों से खेल खेला जाता है। भारतवर्ष के खिलाड़ी को एक बार बिना समझे जापानियों की हार जीत का पता नहीं चलेगा। बाज़ी में जीते हुए मुहरों को जीतने वाला अपनी तरफ़ लड़ने के काम में लाता है। छोटे छोटे मुहरे बहुत शीघ्र बड़ा दर्जा हासिल कर लेते हैं।

जापान में सब लोग शतरंज खेलना जानते हैं। यहाँ तक कि कुली भी जब किसी काम के इंतज़ार में बैठे होते हैं तो शतरंज खेल कर ही अपना वक़्त काटते हैं। कंकड़ पत्थर जो मिला उसीके टुकड़ों से मुहरे बना लेते हैं।

बादशाह को "ओ" कहते हैं। "किन" नाम के दो मुहरे जो बादशाह के दोनो ओर बैठते हैं-वज़ीर के समान हैं। रुख़ का नाम "हीशा" है। ".फ़ू" पियादे को कहते हैं। "यारी" की चाल भी रुख़ के ही समान होती है। "जिन" (रूपा), "किन" (सोना) "कीमा" (बहादुर), ये नई तरह के मुहरे हैं। इनके समान भारतीय-शतरंज में कोई मुहरा नहीं। "जिन" एक घर तिरछा चलता है और एक घर सामने। वह एक बार चलकर एक घर पीछे भी हट सकता है। "किन" में इन चालों के सिवाय यह भी शक्ति है कि एक घर दहिने बाँएँ चले। परन्तु वह तिरछा नहीं लौट सकता। ".फ़ू" एक चाल सामने चलता और सामने ही लड़ता है। दुश्मन की तीसरी क़तार में चले जाने से ".फ़ू" भी "किन" बन जाता है। तब वह उलटा करके खेला जाता है। मुहरों पर उनका पद लिखा रहता है। दर्जा बढ़ने पर लिखा हुआ सिरा नीचे कर दिया जाता है। "होशा" और "काकू" दर्जा बढ़ने पर "किन" की चाल भी चल सकते हैं। बादशाह की गति रोक देना ही मात है।

जापानी शतरंज में मुहरों का नक़शा ।

यारी	कीमा	जिन	किन	ओ	किन	जिन	कीमा	यारी
	हीशा						काकू	
फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू
फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू	फ़ू
	काकू						हीशा	
यारी	कीमा	जिन	किन	ओ	किन	जिन	कीमा	यारी

विदेशियो के साथ ही साथ ताश का खेल भी जापान में आया है। जिनमें ४८ पत्ते होते हैं और उनको बारह महीनों पर बांटा है। हर महीने के ४ पत्ते होते हैं जो उस महीने के फूलों से पहचाने जाते हैं। इन पत्तो मे जो पुष्प बने होते हैं इन पर वाक्य लिखे रहते हैं। उनके हिसाब से ही इनकी पृथक्ता बूझी जाती है। तीन आदमी खेलते हैं।

चीन देश में से एक खेल और जापान में पहुंचा है जिसे "गो" कहते हैं। एक चौकोर लकड़ी के तख्ते पर १९ आड़ी और १९ खड़ी लकीरें खिंची होती हैं। इनसे ३६१ चौरे बनते हैं। इन पर १८० काली और इतनी ही सफ़ेद गोट बिछाई जाती हैं। दूसरे की गोट मारकर जो तख्ते का जियादा हिस्सा घेर लेता है वही जीतता है। यह खेल ऐसा पेचीदा है कि बहुत कम विदेशियों की समझ

में ठीक ठीक आया है। बिना सीखे केवल पुस्तक द्वारा इसको समझना बहुत ही कठिन है।

उपर्युक्त खेल की अपेक्षा "गोबेंग" का खेलना सरल है। उसमें भी दो प्रकार की गोटें होती हैं। एक सीध में अपनी ५ गोटें जमा लेना ही खेल की वाहवाही है।

सन् १५०० ईसवी से एक नई तरह के खेल का प्रचार हुआ है, जो बहुधा मित्र-मंडली के बीच में खेला जाता है। जापान में सुगन्धित धूप अनेक प्रकार की होती है। उसमें से मुख्य प्रकार की सुगन्धि स्थिर करके उनको नंबर दिया जाता है। तब अन्य प्रकार की कई और धूप लेकर एक पृथक् स्थान में जलाते हैं और एक एक करके मित्रों का आवाहन करते हैं। धूप मे किस नंबर की सुगन्धि है यह एक कागज़ पर लिख देना होता है। जिस तरह हमारे देश में लोग इत्र सूँघ कर उसका नाम बता देते हैं। ये लोग धुआँ सूँघ कर कह देते हैं। जो सब धुओं को ठीक ठीक बता देता है वह इनाम पाता है। जब नाक ठीक काम नहीं करती तो सिरका सूँघ कर उसको फिर ताज़ा कर लेते हैं।

थियेटर देखने से जापान की बहुत सी प्राचीन बातें जान पड़ती हैं। धर्म सम्बन्धी गीत गाने और नाचने का रिवाज इस देश में बहुत पुराने दिनों से चला आता है। बौद्ध पुरोहितों और शोगन् योशी मासा ने नृत्य गान मे बड़ी उन्नति की। पुरानी ऐतिहासिक कथाओं को नृत्य-गान द्वारा प्रत्यक्ष करने की रीति पंदरहवीं सदी से चली जो भारतवर्ष की रासमंडलियों के समान थी। जापान में इस प्रकार की मंडली का नाम 'नो' है। अब भी ऐसे लोग मौजूद हैं जो प्राचीन धर्मकथाओं को रामलीला की तरह करते हैं। जिनमें दर्शकगण पुस्तकें हाथ में लेकर बड़े अनुराग से गाना सुनते हैं। और कठिन पदों का अर्थ हस्तस्थित पुस्तकों में देखते जाते हैं। एक लीला पूरी होने में एक दिन लग जाता है। इस प्रकार के तमाशे में बड़े लोग अधिक जाते हैं।

सर्वसाधारण लोगों का थियेटर शिबाई या कुबोकी कहलाता है। इनमें वर्तमान समय के सामयिक चित्र दिखाये जाते हैं। सोलहवीं सदी से ऐसे तमाशों की चाल निकली है। आश्चर्य है कि वर्तमान रीति के खेल करने की रीति दो स्त्रियों ने निकाली है। जिन में से एक का नाम ओकुनी था। इसके वंशवालों को अब तक थियेटरवाले भेंट देते हैं। ओकुनी एक मन्दिर की पुजारिन थी। वहाँ संज़ा नाम के एक छैल से उसकी प्रीति हो गई ओर उसके साथ क्यूटो को चली गई, जहाँ नाच गाकर अपने प्रेमी का भरण पोषण करने लगी। इसी समय ओकुनी के रूप पर एक और नवयुवक मोहित हो गया। संज़ा ने क्रोधित हो कर इसका सिर काट डाला ओर दोनों यद्दो को चल दिये, जहाँ गाना नाचना करके अपनी गुज़रान करने लगे। संज़ा भी अब नाट्यकर्म में बड़ा चतुर हो गया। जब वह मर गया तो ओकुनी स्वदेश को लौट आई। अपना सिर घुटाकर वहाँ एक मन्दिर बना कर वहाँ बैठ गई, जहाँ वह संगीत शास्त्र में लोगों को शिक्षा दिया करती थी।

इन थियेटरों में खेल दो प्रकार के होते हैं—ऐतिहासिक घटना ओर सामाजिक रहस्य। सेतालीस रोनिन का क़िस्सा बहुत खेला जाता है। जिस प्रकार जापानियों ने फ़ारमूसा से डच लोगों को मार भगाया था उसकी नक़ल भी ख़ूब पसन्द की जाती है। यहाँ के थियेटरों में पर्दे बहुत अच्छे होते है। एक दृश्य से दूसरे दृश्य का परिवर्तन करना बड़ा अद्भुत है।

प्राचीन काल में थियेटरवालों की कुछ इज़्ज़त न थी। मनुष्य गणना में इनकी गिनती पशुओ के समान की जाती थी। परन्तु सन् १८६८ ई० में जब देश-दशा पलटी तो इनका यह निरादर हट गया अच्छे अच्छे लोगों का ध्यान थियेटर के सुधार की ओर हुआ।

४७ रोनिन का तमाशा बहुत प्रसिद्ध है। उसकी कथा सुनिए।

आको प्रदेश का राजा असानो जब राज-प्रतिनिधि शोगन के यहाँ उपस्थित था तो उसको मिकाडो के वकील की ख़ातिर करने का काम सोंपा गया था। असानो युद्धविद्या में तो बड़ा निपुण था परन्तु सामाजिक व्यवहार बिलकुल नहीं जानता था। अस्तु, उसने एक दूसरे राजा से सलाह ली। यह राजा जिसका नाम कीरा था हृदय में बड़ी दुष्टता रखता था। राजा असानो की मूर्खता पर अब उसने हँसना शुरू किया। राजा होकर आदर सत्कार का व्यवहार भी नहीं जानता।" इस प्रकार के निरादर सूचक वचन जब असह्य हो गये तो एक दिन असानो ने तलवार लेकर कीरा पर धावा किया। वह प्राण लेकर भागा। जब इस झगड़े का समाचार शोगन को लगा तो असानो को आत्मघात (हाराकरी) करने की आज्ञा हुई। उसी सन्ध्या को यह राजा इस संसार से चल बसा। राज सब ज़ब्त हो गया। राजा के सामन्तलोग (सामुराई) बे मालिक हो गये। उनका फिर न कोई ख़बरगीरा रहा, न कहीं रहने को जगह रही। ओशी, कुरानो, सूक इन सामन्तों में सब से पुराना था। उसने शेष ४६ वीरों को इकट्ठा करके सलाह की कि अपने मालिक का बदला लेना चाहिए। यह निश्चय करके सब से अलग अलग हो गये और भाँति भाँति के रूप धर कर राजा कीरा के महलों में प्रवेश करने का प्रयत्न करने लगे और वे इस भाँति गुप्त रहने लगे कि किसी को इनकी मंशा का भेद न चला। एक दिन, रात्रि के समय, जब कि बर्फ़ पड़ रही थी उन लोगों ने राजमहल में प्रवेश किया। पहिले सब नौकर चाकरों को मारा, फिर राजा को जो एक कोयले से भरी कोठरी में घुस गया था, वहाँ से बाहिर निकाला और उससे प्रतिष्ठापूर्वक आत्मघात (हाराकरी) करने के लिए कहा गया, जब उस से यह नहीं बन पड़ा तो लाचार उन्हों ने उसे क़तल किया। अपने स्वामी का बदला लेकर वे लोग उस मन्दिर में गये जिसके अहाते में उनके स्वामी की समाधि थी। यहाँ आकर उन्हों ने वैरी का सिर समाधि पर रक्खा और राज-नीति के अनुसार दंड-

ग्रहण करने को उद्यत हुए और बड़ी प्रसन्नता से हाराकरी की। वे सब अपने स्वामी के पास ही गाड़े गये। उनकी समाधि को देखने के लिए अब तक यात्री जाया करते हैं।

थिएटरों मे नक़लें भी होती हैं। जिनमें से एक प्रहसन यहाँ लिखा जाता है—

पसली और चमड़ा।

पात्रगण—बौद्ध मन्दिर का महन्त और उसका चेला, तीन भक्तजन।

स्थान—मन्दिर।

महन्त—मैं इस मन्दिर का महन्त हूँ। मुझे अपने चेले से कुछ कहना है। चेले! चेले!! अरे चेले!!!

चेला—आया महाराज! मुझ पर क्या कृपा हुई जो मैं बुलाया गया?

महन्त—मैं ने तुझे केवल यह कहने को बुलाया है, कि मैं अब बुड्ढा हो गया हूँ और बिलकुल निकम्मा हूँ। मन्दिर का काम काज मुझ से नहीं चलता, सो आज मैं मन्दिर की महन्ती तुझे देता हूँ।

चेला—आप की इस दया के लिए मैं परम कृतज्ञ हूँ। परन्तु अभी मेरी शिक्षा अधूरी है। कुछ दिन और ठहरिए जिससे मैं दुनिया के ऊँच नीच अच्छे प्रकार समझ लूँ।

महन्त—मैं तेरे उत्तर से बहुत सन्तुष्ट हूँ। तू यह न समझ कि मैं तुझे महन्त बना कर इस मन्दिर को ही छोड़ जाऊँगा। मैं इसी मन्दिर के पिछवाड़े एक कुटी मे रहा करूँगा। जब किसी काम की आवश्यकता हो मुझसे सलाह ले लिया करना।

चेला—जो यह विचार है तो आप की आज्ञा मेरे सिर माथे पर है।

महन्त—मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि तू मन्दिर की प्रतिष्ठा बढ़ाने और भक्त लोगों को प्रसन्न करने की पूर्ण चेष्टा करेगा ।

चेला—आप निश्चिन्त रहिए । मैं अपना आचरण ऐसा अच्छा रखूँगा कि मन्दिर के भक्त लोग सर्वदा सन्तुष्ट रहेंगे ।

महन्त—तो बस मैं अब जाता हूँ । मुझसे अगर कुछ पूछना हो तो मेरी कुटी में आकर पूछ जाना ।

चेला—श्रीमहाराज की आज्ञा सिर माथे ।

महन्त—यदि कोई भक्त आवे तो मुझे ख़बर देना ।

(प्रस्थान)

(२)

चेला—आप पधारिए । ओ हो ! आज मेरा भाग्य खुला, भक्त लोग मुझे महन्त जान कर बड़े खुश होंगे । उन सब को राज़ी रखना ही अब मेरा प्रधान कर्तव्य होगा ।

(एक भक्त का प्रवेश)

भक्त—घर से तो मैं ख़ाली हाथ चला आया, दूर जाना है, इधर बादल भी घिर आया है, बरसे बिन नहीं रहेगा । चलो मन्दिर मे महन्तजी से छाता माँगलें। महन्तजी ! महन्तजी !!

चेला—दरवाज़े पर कौन पुकार रहा है ! कौन है रे !

भक्त—मैं हूँ !

चेला—भगत जी आप हैं ? आइए !

भक्त—बहुत दिन से मन्दिर में मेरा आना नहीं हुआ । आशा है महन्त जी प्रसन्न होंगे ।

चेला—हाँ ! हम दोनों बहुत अच्छे हैं । आप यह जान कर प्रसन्न होंगे कि महन्त जी अब अपना समय भजन करने मे काटेंगे और एकान्तवास करेंगे । महन्त की पदवी उन्होने मुझे दे दी है सो आशा है आप पहिले की भाँति मन्दिर मे आते रहेंगे ।

भक्त—बड़ी ख़ुशी की बात हुई, मैं आप को बधाई देता हूँ। इस समय मुझे एक आवश्यक काम के लिए कहीं जाना है। ऊपर से बादल आ गया है। यदि आप मुझे एक छाते की कृपा करें तो बड़ा उपकार हो।

चेला—अजी! यह कौनसी कठिन बात है। मैं अभी छाता लाये देता हूँ। ज़रा ठहरिए।

भक्त—बड़ी कृपा होगी!

चेला—(छाता देकर) मेरे योग्य जो काम हो सर्वदा कहा कीजिए।

भक्त—धन्य महाराज! आप बड़े दयालु हैं। मुझे आज्ञा दीजिये।

चेला—आप जाते हैं? अच्छा आशीर्वाद।

भक्त—प्रणाम महाराज! (प्रस्थान)

(२)

चेला—मन्दिर में किसी के आने जाने का समाचार महन्त जी को सुनाना ज़रूरी है। चलूँ उनसे बात करूँ (कुटी के द्वार पर पहुँच कर) गुरू जी!

महन्त—हाँ बच्चा!

चेला—आप को सुनसान अखरता नहीं?

महन्त—नहीं! मैं भजन में लीन रहता हूँ।

चेला—अभी एक भगत आया था?

महन्त—दर्शन करने आया था कि कुछ और काम था।

चेला—वह एक छाता माँगने आया था, मैंने उसे दे दिया।

महन्त—अच्छा किया। कौनसा छाता दे दिया?

चेला—वही नया छाता जो उस दिन आया था।

महन्त—तू बड़ा मूर्ख है। कोई नया छाता भी उधार देता है? अभी तो हमने उसे एक दिन भी नहीं लगाया। फिर कभी ऐसा हो तो कुछ बहाना बना देना चाहिए।

चेला—बहाना बनाने के लिए क्या कहा करते हैं?

महन्त—तुम्हें कहना चाहिए—"बात तो कुछ नहीं है, परन्तु दो तीन दिन हुए उसे लेकर महन्त जी बाहिर जा रहे थे, बड़े ज़ोर से आँधी आई, पसलियाँ* एक ओर हो गईं और चमड़ा* फटकर एक ओर। बस, हम ने उस की पसली और चमड़े को बीच में बाँध कर उसे छत में लटका रक्खा है"। बस, इसी प्रकार की कोई बात कह कर टाल देना चाहिए।

चेला—मैं आप के उपदेश को स्मरण रक्खूँगा और जब कोई आवेगा तो ऐसे ही कहूँगा। अब आप आराम करें। नमस्कार। (मन्दिर में आकर)

महन्त जी क्या कहते हैं! कुछ कहा करो। भक्तों को प्रसन्न रखने के लिए उन्हें ज़रा सी बात के लिए वंचित नहीं रखना चाहिए।

(४)

दूसरे भक्त का प्रवेश—मुझे आज एक अन्य ग्राम में अपने रिश्तेदार के यहाँ जाना है; दूर बहुत है। चलो महन्त जी का घोड़ा ले चलें। (दरवाज़े के पास पहुँच कर)। महन्त जी! महन्त जी!!

चेला—कौन है रे!

दूसरा भक्त— मैं हूँ!

चेला—आप हैं, भगत जी? आइए आइए?

दूसरा भक्त—मैं एक बड़े ज़रूरी काम को आया हूँ। मुझे कहते शर्म आती है, परन्तु काम नहीं चल सकता। प्रार्थना यह है कि मुझे दूर जाना है। यदि आप अपना घोड़ा दे दें तो बड़ी कृपा हो।

चेला—बात तो कुछ नहीं है, परन्तु दो तीन दिन हुए उसे लेकर महन्त जी बाहिर जा रहे थे। अचानक बड़े ज़ोर से आँधी आई जिस से उसकी पसलियाँ एक ओर को गईं और चमड़ा

---

*छाते की तानों को जापानी पसली और ऊपर के कपड़े को चमड़ा कहते हैं।

फटकर एक ओर । बस हमने उसकी पसली और चमड़े को बीच में बाँध कर उसे छत मे लटका रक्खा है। ऐसी चीज़ से आपका क्या काम निकलेगा ?

दूसरा भक्त—आप क्या बात करते हैं ! मैं तो घोड़ा माँगता हूँ ।

चेला—हाँ हाँ घोड़ा । मैं भी तो उसी का हाल कहता हूँ ।

दूसरा भक्त—ख़ैर लाचारी है । आज्ञा दीजिए ।

चेला—आप जायँगे ? आशीर्वाद ।

दूसरा भक्त—प्रणाम । (चलते चलते आपही आप) मेरी समझ में इसका कहना कुछ भी नहीं आया ।

चेला—भक्त तो चला गया । अब गुरू जी से इसके आगमन का समाचार दूँ । आशा है इस बार मेरे व्यवहार से गुरु जी प्रसन्न होंगे । (कुटी के द्वार पर पहुँच कर) गुरु जी !

महन्त—बच्चा ! कुछ काम है ?

चेला—अभी एक दूसरा भगत हमारा घोड़ा माँगने आया था ।

महन्त—सो तुमने घोड़ा दे दिया होगा । आज कल तो घोड़ा बेकाम खड़ा है ।

चेला—मैं ने घोड़ा नहीं दिया, जैसे आपने सिखाया था वैसेही कह कर टाल दिया ।

महन्त—घोड़े के विषय में तो मै ने कभी कुछ नही कहा, बताओ तो सही तुमने उस से क्या कहा ?

चेला—मैने कहा—"गुरु जी उसे लेकर बाहिर गये थे । अचानक बड़े जोर से आँधी आई, जिससे उसकी पसलियाँ एक ओर को गईं और चमड़ा दूसरी ओर । अब हमने पसली और चमड़ा बीच से बाँध कर उसे छत मे लटका रक्खा है । ऐसे पदार्थ से किसी का क्या काम निकलेगा ?"

महन्त—तेरी इस बकवाद का क्या अर्थ हुआ ? मै ने तो छाते के सम्बन्ध में यह बात कही थी । मुझे क्या मालूम था कि तू

उसे घोड़े के लिए कह बैठेगा। इसके लिए ठीक उत्तर और ही था।

चेला—वह क्या?

महन्त—तुझे कहना था—"कल जब उसे हमने चरने को छोड़ा उस ने बड़ी कूद फाँद शुरू की। अन्त को एक गढ़े मे गिर जाने से उसकी टाँग टूट गई। अब वह अस्तबल के एक कोने मे घास में पड़ा है और इस योग्य नहीं कि आप की इच्छा पूर्ण कर सके" बस इस भाँति कह कर अपना काम निकालना था।

चेला—मैं इस उपदेश को स्मरण रख कर भविष्यत् में ऐसा ही करूँगा।

महन्त—ख़बरदार! कुछ का कुछ और न कह डालियो। जा, मुझे भजन करने दे।

चेला—(मन्दिर में आकर) आश्चर्य है कि जैसा गुरु जी कहते हैं वैसाही मैं दुहरा देता हूँ, तिस पर भी फिटकार सहनी पड़ती हैं। क्या कहूँ कुछ समझ मे नही आता।

(५)

(तीसरे भक्त का प्रवेश)—

तीसरा भक्त—चलो आज मन्दिर में नौता दे चलें।

महन्त जी! अजी महन्त जी!!

चेला—कौन है रे!

तीसरा भक्त—मैं हूँ।

चेला—आप हैं। आइए! आइए!

तीसरा भक्त—बहुत दिन से आप के दर्शन नहीं हुए। मुझे विश्वास है कि आप और महन्त जी दोनों कुशल पूर्वक होंगे।

चेला—हाँ! सब आनन्द हैं। आप यह जान कर प्रसन्न होंगे कि महन्त जी अब अपना समय एकान्त भजन मे काटेंगे। उन्हों ने महन्त की पदवी मुझे दे दी है। आशा है, आप पहिले की भाँति मन्दिर में आते रहेगे।

तीसरा भक्त—बड़े आनन्द की बात है। मैं आपको बधाई देता हूँ। कल हमारे यहाँ वार्षिक श्राद्ध है। महन्त और आप अवश्य मेरे घर को पवित्र करें।

चेला—मैं अपने शरीर से तो हाज़िर हूँगा परन्तु महन्त का आना असम्भव है।

तीसरा भक्त—क्यों, उन्हें क्या काम है?

चेला—महन्त को काम तो कुछ नहीं है परन्तु "कल जब हमने उसे घास चरने छोड़ा। उसने बड़ी कूद फाँद शुरू की। अन्त को एक गढ़े में गिर जाने से उसकी टाँग टूट गई। अब वह अस्तबल के एक कोने में घास में पड़ा है और इस योग्य नहीं है कि आपकी इच्छा पूर्ण कर सके।"

तीसरा भक्त—मैं तो महन्त की बात कह रहा हूँ।

चेला—हाँ! हाँ! महन्त।

तीसरा भक्त—जो हो, मैं इस दुर्घटना से बहुत दुःखी हूँ। ख़ैर आप अवश्य कृपा कीजिएगा।

चेला—मैं ज़रूर आऊँगा।

तीसरा भक्त—मुझे आज्ञा दीजिए। नमस्कार।

चेला—आप जाते हैं? प्रणाम!

तीसरा भक्त—मैं इस चेले की बात का अर्थ कुछ भी नहीं समझा।

(प्रस्थान)

चेला—अब की बार गुरु जी अवश्य प्रसन्न होंगे। (कुटी के पास पहुँच कर) गुरू जी!

महन्त! क्यों बच्चा! कुछ काम है?

चेला—अभी एक और भगत आया था। कल उसके यहाँ वार्षिक श्राद्ध है। उसने मुझे और आप को नेता दिया। मैं ने अपना जाना तो स्वीकार कर लिया परन्तु आप का जाना क्योंकर हो सकता है।

महन्त—निमंत्रण में तो मैं अवश्य जा सकता था। तू ने मेरे न जाने का क्या कारण बताया।

चेला—जैसा आपने सिखाया था।

महन्त—क्या सिखाया था ?

चेला—मैं ने कहा—"कल जब हम ने उसे घास चरने छोड़ा उस ने बड़ी कूद फाँद शुरू की। अन्त को एक गढ़े में गिर जाने से उसकी टाँग टूट गई। अब वह अस्तबल में एक किनारे घास में पड़ा है और इस योग्य नहीं है कि आप की इच्छा पूर्ण कर सके"।

महन्त—क्या सचमुच तू ने इसी प्रकार कहा था ?

चेला—हाँ, सचमुच।

महन्त—तू बड़ा मूर्ख है। मैं ने कई बार समझाया परन्तु तेरी समझ में कुछ न आया। घोड़े के लिए जो बात कहनी थी वह मेरे लिए कह डाली! जान पड़ा; तू महन्ती के योग्य नहीं है। निकल मन्दिर से।

चेला—ओ हो!

महन्त—निकल, निकल, जल्दी इस मन्दिर से बाहिर हो।

(मारता है)

चेला! गुरु जी, क्षमा कीजिए। इतना न मारिए। कूदना फाँदना आप के लिए मिथ्या नहीं था।

महन्त—मुझे तू ने कब कूदते फाँदते देखा ? जल्दी बता ?

चेला—मैं कह डालूँ ? और लोग सुन पावेंगे तो आप की क्या शेखी रहेगी ?

महन्त—मैं ऐसा कोई दुष्कर्म नहीं करता जिस से मुझे शर्म आवे। जो तुझे कहना है सो शीघ्र कह ?

चेला—उस दिन की बात याद है, जब सुकुमारी इच्छी, जो हमारे पड़ौस में रहती है, मन्दिर में आई थी ?

महन्त—सो इच्छी के आने से क्या हुआ ?

चेला—आप उस को देखकर कितने मगन हुए। कितने उछले कूदे और फिर चुपचाप उसे लेकर कुटी मे जाकर अन्तर्धान हो गये।

महन्त—दुष्ट! चांडाल! प्रवंचक! खड़ा रह। अब मैं तुझे जीता न छोड़ूँगा।

चेला—आप गुरु जी हैं जो चाहे सो करें।

(दोनों गुत्थमगुत्था हो गये) चेला गुरु को गिरा देता और भागता है।

महन्त—चेलो! चेलो!! देखो इस दुष्ट ने मेरी कैसी दुर्गति की है। पकड़ो! पकड़ो!! भागने न पावे, भागने न पावे।

—जापानियों के मन्दिर में नाच देखने में आता है। सबसे पुराने नाच का नाम "कगूरा" है। नाचने वाले मुँह पर बनावटी चिहरे लगाते हैं और बेल बूटेदार पोशाक पहिनते हैं। एक बार सूर्य्यदेवी संसार मे प्रकाश करना छोड़कर एक गुफा में जा छिपी थी। भक्त लोगों ने इसी प्रकार का नाच नाच कर देवी को प्रसन्न किया और संसार को अंधकार से बचाया। मन्दिरो में इसी भाँति के नाच होते हैं।

बौद्ध लोगों ने जिस प्रकार के नाच का प्रचार किया है उसका नाम "बनआदारी" है। इसमे गोल चक्र बाँधकर नाचते हैं और मेर कासा दृश्य दिखाते हैं। बाजा बीच मे रहता है और बाजे की गति पर ही इनका पैर उठता है। बड़े शहरों मे नाच का काम 'गीशा' नाम की स्त्रियों के द्वारा होता है। दो एक नाचती हैं। दो एक गातीं और बाजा बजाती हैं। नाच के साथ गाना अवश्य होता है। गली गली में नाच गा कर गुजारा करने वाले भी जापान मे बहुत देखे जाते हैं। यूरोपियन लोगो की भाँति नाचने की प्रथा भी जापान में चली है परन्तु बहुत से प्राचीन प्रेमी जापानी स्त्री-पुरुषो का जोड़े से नाचना पसन्द नहीं करते।

जापानियों के मुख्य त्यौहार ये हैं—

जनवरी १–२–३—नया वर्ष

जनवरी ३०—पिछले मिकाडो (कोमी तीनो) का मृत्यु-दिवस।

फ़रवरी ११—सब से पहिले मिकाडो का राज्यारोहण और राज-सभा का नियत होना।

मार्च २१—निर्वाणप्राप्त पुरुषो का श्राद्ध ।

अपरैल ३—जीमो तीनो का मृत्यु-दिवस ।

सितंबर २३—राजकुल के पितरो का श्राद्ध ।

अक्टूबर १७—शिन्तो-देवताओ को नूतन-फल-अर्पण ।

नवंबर ३—वर्तमान मिकाडो की जन्मतिथि ।

” २३—नूतनफल-भक्षण ।

उपर्युक्त त्यौहार वे हैं जिनमे सरकारी दफ़्तर बन्द रहते हैं। परन्तु प्राचीन काल से जो त्यौहार चले आते हैं उनका क्रम इस प्रकार है—

दिसम्बर १३—"कोटो हाजिमी"। इस दिन से बड़े दिन की तय्यारियाँ शुरू होती हैं। लोग अपने घर बार बुहारना शुरू करते हैं। पूरी बनाने के लिए आटा पीसना आरम्भ होता है। नौकरो को इनाम मिलता है। लाल मटर, आलू, मछली, कुकरमुत्ता और कन्याकू नाम की जड़ मिलाकर सबको पकाते हैं और खाते हैं।

दिसंबर २२—"तोजी"। इस दिन हकीम लोग चीनियों के रोग-निवारक देवता का पूजन करते हैं।

जनवरी १–३—"संगानीची"। नये वर्ष के तीन दिन। इन दिनों में 'जोनो' नाम की पदार्थ खाया जाता है जो चावल, मछली और मटर के संयोग से बनता है। चीन और जापान मे वर्ष के नये दिन बड़ी धूम धाम से मनाये जाते हैं। जिस दिन दोनों वर्ष मिलते हैं उस रात को जागरण रहता है। घरो में लक्ष्मी आने के लिए दरवाज़े खुले रहते हैं। घरों के दरवाज़ो पर बन्दनवार लटकाई जाती हैं। "टोशी डामा" नाम की भेंट आपस में बाँटी जाती है।

जनवरी ७—"ननकुसा" के दिन चावलों का दलिया खाया जाता है। प्राचीन काल में आज राजपरिवार तथा अन्य लोग जंगल में से सात प्रकार की रूखड़ी चुनकर लाते थे।

जनवरी २०—"कुराविराकी" के दिन नये गोदाम खोले जाते हैं।

"सत्सुबन" का त्यौहार भी जनवरी महीने में पड़ता है। इस दिन घर में मटर फैला दिये जाते हैं, जिससे घर में भूत-प्रेत की बाधा नहीं होती। इन्हीं मटरों में से अपनी अवस्था के वर्षों की संख्या के अनुसार दाने चुनकर घर के लोग खाते हैं। दानों की तादाद उम्र के वर्षों से एक अधिक होती है।

मार्च ३—गुड़ियों का मेला।

मार्च १७—दिन रात बराबर होने का त्यौहार है।

अप्रैल ८—बुद्ध महाराज की बाल-मूर्ति के ऊपर मुलहटी का चाय चढ़ाते हैं और चरणामृत पान करते हैं जिससे सब प्रकार के रोग दूर होने का विश्वास किया जाता है। इस जल को घर में छिड़क देने से कीड़े मकोड़े भी नष्ट हो जाते हैं।

मई ५—लड़कों का त्यौहार। इसका वर्णन पहिले हो चुका है।

जुलाई १३-१६-बुद्ध लोगों का "बोन" त्यौहार है। इस दिन मृत पितरों की समाधि पर भोजन चढ़ाया जाता है। इन्हीं दिनों में "कावा विराकी" नामका उत्सव नदी किनारे होता है। किश्तियाँ सजाई जाती हैं। लालटेनों की रोशनी होती है। आतिशबाज़ी छुटता है। गाँवों में नाच होता है। मालिक अपने नौकरों की दावत करते हैं।

अक्टूबर २०—इस दिन जापान के देवताओं का 'ईज़ीमो' के बड़े मन्दिर में निमंत्रण होता है। केवल भाग्यदेवता जो बहरा है निमंत्रण का शब्द न सुनने के कारण पीछे रह जाता है। यह उत्सव इसी देवता के नाम पर है। इस दिन दुकानदार लोग अपना

पुराना सब माल बेच डालते हैं। अपने बँधऊ ग्राहकों, आढ़तियों और मिलनेवालों की दावत करते हैं। नये विचार के लोग भी इस दिन बड़ा भोज देते हैं।

नवम्बर के महीने में कई त्यौहार होते हैं। धौंकनी का त्यौहार इसी महीने में होता है। पूर्वकाल में कोकाजी नाम के कारीगर ने मिकाडो के लिए एक तलवार बनाई थी उस समय इनारी नाम के देवता ने आप आकर धोंकनी धोंकी थी।

नवंबर की १५ तारीख़ को तीन वर्ष के बच्चों की हजामत बनाना बन्द कर दिया जाता है परन्तु अब यह कम होता है।

दिसम्बर ८ तारीख़ को स्त्रियाँ सीनेपिरोने का काम नहीं करतीं और अपनी सहेलियों को भोजन देती हैं।

सन् १८७३ से जापान में सन् ईसवी का चलन हुआ है। चन्द्रमा के हिसाब से महीने होने का कारण त्यौहार एक ऋतु में सर्वदा नहीं पड़ते थे। अब अंगरेज़ी हिसाब हो जाने से यह बात उठ गई है। महीनों के साथ तारीख़ वे पुरानी ही रक्खी हैं। क्यूटो और टोकियो में रथयात्रा का उत्सव भी बड़े ठाठ से होता है। इनके सिवाय गाँवों में और भी अनेक उत्सव हुआ करते हैं जिनका दृश्य पृथक पृथक् रीति का होता है। कुश्तीबाज़ी अथवा मल्लबाज़ी का तमाशा जापान में देखने योग्य है। मल्ल बड़े मोटे ताज़े होते हैं और बहुत सा खाते हैं। मल्लों के अखाड़े और उनका समुदाय अलगही है। अखाड़ों में बालू बिछाई जाती है। चार खंभों के ऊपर, छाते की तरह छत लगाई जाती है। पहलवान शरीर पर सिवाय एक कपड़े के और कुछ नहीं रखते। अखाड़े के चारों तरफ़ दर्शकों के बैठने के लिए सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। जब दो मल्ल कुश्ती करने लगते हैं तब एक आदमी अपने हाथ में पंखा लिए उनके पास अखाड़े में रहता है और देखा करता है कि कोई बेईमानी तो नहीं करता। कभी कभी एक ही अखाड़े में कई कई

जोड़ छुटते हैं। जो मल्ल तीन कुश्ती पछाड़ता है वह इनाम पाता है। जब मल्ल अखाड़े में उतरते हैं तो पहिले अपनी जाँघों पर ताल देते हैं और इधर उधर उछलते हैं और फिर दो बिल्लियों की तरह अपनी अपनी घात करने लगते हैं। तब अचानक दोनों झपटते हैं। फ़िर मिलकर अलग हो जाते हैं और थोड़ा थोड़ा पानी पीकर फिर तैयार होते हैं। एक कागज़ के रूमाल को पानी से भिगोकर वे बग़लों को पोंछते हैं। फिर एक साथ गुत्थमगुत्था होकर लड़ने लगते हैं। जब तक दोनों में से एक चित्त नहीं हो जाता तब तक अलग नहीं होते। कभी कभी चालाक पहलवान ऐसे पेंच खेलते हैं कि बात की बात में, अपने से अधिक मोटे ज्वान को उठाकर, अखाड़े से भी बाहिर फेंक देते हैं। कोई ऊंचा ऊपर फेंक कर चित नीचे गिराते हैं। जब कोई पहलवान जीतता है तो ख़ुश होने वाले अपनी टोपी उसके ऊपर फेंकते हैं जिन्हें वह बड़े आदर से रखता है और टोपी वालों से इनाम पाकर टोपी वापिस देता है।

युयुत्सु की चर्चा तो भारतवर्ष तक आपहुँची है। युयुत्सु एक प्रकार के ऐसे दाव-पेंच हैं कि हलका आदमी भारी को गिरा सकता है। इसका रिवाज अमीर लोगों में है। पुलिस में विशेपकर सामुराई लोग हैं। इन लोगों को युयुत्सु जानना बड़ा ज़रूरी है। जापान में इस प्रकार के दाँव पेंच सिखाने के लिए कई मदरसे हैं। पहिले यह विद्या बहुत गुप्त रक्खी जाती थी परन्तु आजकल इसकी कोई भी युक्ति छिपी हुई नही है।

हमारे देश में जैसे कोई कोई शौकीन चिड़ियों का शिकार करने के लिए बाज़ और जुर्रा पालते हैं, जापान में एक प्रकार के मत्स्यभक्षक पक्षियों से मछली पकड़ने का काम लिया जाता था। ओवारी सूबे में नगर नदी के ऊपर इनका तमाशा खूब देखने मे आता है।

इस पक्षी को पकड़ने की युक्ति यह है कि पहिले लकड़ी की मूर्ति बनाकर उन झाड़ियों में रख देते हैं जहां बहुधा उपर्युक्त पक्षी

आया करते हैं। अपने एक साथी को वहाँ बैठा देख कर कोई कोई उसके पास आकर बैठते हैं। वहाँ जो बैठने के लिए लकड़ियाँ होती हैं उन पर चिपकने वाला लासा लगा होता है। जो पक्षी बैठता है वहाँ से जा नहीं सकता। फिर उसे पकड़ लेते हैं। फिर इसकी सहायता से अन्य पक्षी जाल में आ फसते है। इन पक्षियों को वे बड़े आराम से रखते हैं। यहाँ तक कि इनको मच्छरों से बचाने के लिए मसहरी बनाते हैं। ये पक्षी रात्रि को मशाल की रोशनी में शिकार करते हैं। टाइम्स अख़बार में इस कौतुक का वृत्तान्त इस प्रकार प्रकाशित हुआ है।

"सात किश्तियों का एक बेड़ा था। हर एक नाव में चार आदमी बैठे हैं। अगली किश्ती पर बेड़े का मालिक है जिसकी अद्भुत प्रकार की टोपी है। इसके अधिकार में १२ पक्षी हैं। बीच की किश्ती मे चार पक्षी हैं। एक किश्ती में बाँस का यंत्र लिए एक आदमी बैठा है जो यंत्र को बजाता और हल्ला करता रहता है। पक्षियों को शाबाशी देता रहता है। पक्षी के गले में एक छल्ला ऐसा पड़ा होता है कि जिसके कारण बड़ी मछली निगली नहीं जाती। वह उन छोटी छोटी मछलियों को ही खा सकता है जो उसकी उदरपूर्ति के लिए दी जाती हैं। इन पक्षियों के शरीर के साथ एक १२ फ़ीट की लंबी रस्सी का संयोग है, जिसका एक सिरा मालिक अपने हाथ में रखता है। एक एक करके, नंबरवार, पक्षी मछली पकड़ने के लिए छोड़े जाते हैं। ज्यों ही पक्षी पानी में पहुँचता है, बड़ा मगन होकर मछली के लिए डुबकी मारता है। ऊपर जो मशाल जलती है उसके प्रकाश से आकर्षित होकर मछलियाँ ऊपर को आती हैं। उन्ही को पक्षी मुँह में ले लेता है और गर्दन फुलाये पानी के ऊपर आता है। मालिक इसको किश्ती पर खैंच कर बाएँ हाथ के सहारे से मछली उगलवा लेता है। शिकारी को इस समय बड़ी फुर्ती करनी होती है। बारहो पक्षियों पर ध्यान रखना पड़ता

है। रस्सियाँ ऐसी सावधानी से रखनी होती हैं कि आपस में उलझ न जायँ।

यह पक्षी जितना बच्चा पकड़ा जाय उतना ही अच्छा काम देता है। कोई कोई बीस वर्ष तक अपने स्वामी का कार्य किया करता है।

इन पक्षियों के लिए जो छोटी छोटी मछलियाँ खाने को दी जाती हैं वह पकड़ी हुई मछली को उगलवाने के बाद ही दे दी जाती हैं। इन पक्षियों में जो सब से पुराना सेवक है वह अव्वल नंबर होता है। शेष को नौकरी के समय के अनुसार नंबर दिया जाता है। नया पक्षी सब से पहिले छोड़ा जाता है और सब से पीछे निकाला जाता है। पुराना पक्षी सब से पीछे छोड़ा जाता है और सब से पहिले उसको आराम दिया जाता है। सब से पहिले उसको भोजन प्रदान होता है और टोकरे में बैठना मिलता है। किश्ती के किनारे पर पहली जगह अव्वल नंबर की होती है तथा अन्य पक्षी अपने पदानुसार बैठते हैं। बुड्ढा पक्षी सब का सर्दार दिखाई पड़ता है और वह खुद भी अपने पद को जानता है। अपने से छोटे नंबर वाले के पहिले यदि किसी को शिकार के लिए छोड़ा जाय तो वह बड़ा हल्ला मचाता है।

छोटी छोटी मछलियाँ जो मिलती हैं उन्हें ये पकड़ते ही निगल जाते हैं। मालिक उनका पेट टटोल कर यह बात मालूम कर लेता है और उनके भोजन में से उतनी ही मछली काट लेता है।

अपना काम करके जब ये पक्षी अपने स्थान पर आ बैठते हैं तो बड़े मगन दिखाई देते हैं। पंख फड़फड़ाते हैं, देह खुजाते हैं, पड़ोसियों से कलोल करते हैं।

धर्म।

जापान के प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि इस भूमंडल पर पहिले देवता बसते थे। वर्तमान सृष्टि के बनाने की आज्ञा ईज़ानागी और ईज़ानामी देव-दम्पति को मिली, जिन्हे एक भाला सहायता के लिए दिया गया। इस भाले को उन्हों ने इस तरल भूमि से छुआ दिया और यह दृढ़ तथा स्थिर हो गई। भाले में से कुछ बूँदें टपकीं और उनके टपक कर जमने से ओनोगोरो टापू बना। इस टापू के ऊपर ही उन्हो ने आठ योजन का एक महल बनाया। यहाँ रह कर उन्होंने अन्य कई टापू दृढ किये। वेही द्वीप-समूह आज कल जापान कहलाते हैं। इनमें बसाने के लिए लगभग तीस देवताओं को जन्म दिया गया। अग्निदेव का जन्म इनमे सब के पीछे हुआ। इसके पीछे माता ईज़ानामी मर गई और यमलोक को चली गई। ईज़ानागी को बड़ा शोक हुआ और रो कर अश्रु-देवी को जन्म दिया तथा कमर से तलवार लेकर अग्निदेव का सिर काट डाला। उस तलवार के ख़ून से तीन देवता पैदा हुए; तीन मियान से और दो मुँह में लगी हुई छींटों से; आठ देवता मृत शरीर में से उपजे। स्त्री को देखने के लिए उसने यमलोक की यात्रा की। ईजानामी अपने पति से मिलने के लिए दरवाज़े पर ही खड़ी हुई मिली। जब पति अपनी वियोग-कातरता कह चुका तो स्त्रीने कहा कि वह पुनः धरा-धाम पर आने

के लिए यमराज से आज्ञा लेकर लौटेगी । जब दरवाजे पर खड़े खड़े बहुत देर हो गई और स्त्री न लौटी तो ईज़ानागी अधीर हो उठा । अपने सिर के कंघे का एक दाँत तोड़ कर जलाया और प्रकाश से अंधकार के भीतर जा घुसा। भीतर नरक की इतनी दुर्गन्धि थी कि वह वहाँ ठहर न सका और उसने भाग कर अपने प्राण बचाये ।

उस दुर्गन्धिमय स्थान में जाने से अपने तईं ईज़ानागी ने अपवित्र समझ कर सुकूशी टापू की एक नदी में स्नान किया। हाथ की लकड़ी फेंक दी । उसने तत्काल देव-रूप धारण कर लिया। कमरबन्द की भी यही दशा हुई । अन्य वस्त्र भी शरीर से पृथक होते ही देवता बन गये । इस समय उसके वस्त्राभूषणों से बारह देव उत्पन्न हुए ।

स्नान करने में कई देवता जन्मे । जब उसने अपनी बाईं आँख को धोया तो सूर्यदेवी का आविर्भाव हुआ और दहिनी आँख से चन्द्र देव निकले। नरदेव का जन्म नाक से हुआ । शरीर से इस समय चौदह देवता उपजे ।

पिछली तीन सन्तान ईज़ानागी को बड़ी प्यारी लगीं । सूर्य-देवी को अपने गले का कंठा देकर उसे दिन का राज्य दिया और रात्रि का राज्य चन्द्रमा को सौंपा । नरदेव को संसार-सागर दिया गया परन्तु वह सिवाय रोने के और कुछ न सुनता था । रोते रोते उसकी डाढ़ी पेट से आ लगी । पिता ने पूछा, तू अपना राज्य क्यों नहीं सँभालता और किस कारण इतना रोता है ? उसने कहा-जब तक मैं अपनी माता का दर्शन न कर लूँ, कुछ भी नहीं करूँगा । अपनी आज्ञा का उल्लंघन करते देख कर पिता ने उसको देवयोनि से पतित कर दिया ।

नरदेव ने कहा कि मैं अपनी बहिन सूर्य्यदेवी से भेट कर चलूँ। जब वह आकाश में चढ़ने लगा तब बहिन घबड़ाई और बोली-तू मेरे पास क्यों आता है ? उसने उत्तर दिया-"पिता ने मुझे देव-

योनि से पतित कर दिया है, अस्तु, विदा होते समय मैंने अपनी बहिन से मिलना उचित समझा।" बहिन को भाई की बात पर विश्वास नहीं आया। इसी लिए कहा कि "जो तू सच्चा है तो अपनी तलवार मुझे देदे।" भाई ने ऐसा ही किया। सूर्य्यदेवी ने तलवार के तीन टुकड़े करके मुँह से पकड़े और फूँक के साथ उन्हे बाहिर फेंक दिया। उन तीनों टुकड़ों से तीन सुन्दर स्त्रियाँ बन गईं। नरदेव ने क्रोध में आकर बहन के गहने छीन लिये और मुँह में रख कर उसी भाँति फुर्र कर दिये, जिनसे पाँच पुरुष बन गये। बहन का बग़ीचा उजाड़ दिया और महल की छत तोड़ कर और एक घोड़े की खाल उतार कर छत के छिद्र द्वारा महल में डाल दिया।

इस पर सूर्य्यदेवी बहुत क्रोधित हुई और मुँह छिपा कर सो गई। सब लोको में अंधकार हो गया। देवगण त्राहि त्राहि करने लगे। आकाशगंगा के किनारे पर सब देवगण इकट्ठे हुए और सूर्य्यदेवी के जगाने की युक्ति सोचने लगे। सब स्वर्ग लोक़ के मुर्ग़ एकत्र किये गये, उन्होने ज़ोर से बाँग देना आरम्भ किया, देवगण गंभीर शब्द से स्तुति-पाठ करने लगे, अप्सरा नाचने और उच्चस्वर से हँसने लगी, देवताओं ने एक बड़ा दर्पण भी तैयार कर रक्खा था। जब इस कोलाहल का शब्द सूर्य्यदेवी के कानों तक पहुँचा तो उसे बड़ा विस्मय हुआ। महल से बाहिर निकल कर उसने इस सब का कारण जानना चाहा। देवताओं ने कहा कि उनके पास अब एक और देवी आ गई है। वे उसकी स्तुति कर रहे हैं। सूर्य्यदेवी के सामने जब दर्पण रक्खा तो उसी की झलक उसे दिखा दी और पीछे से महलों का दरवाज़ा बन्द करके उसे बाहिर ही रोक रक्खा। नरदेव को उसी समय देव-समूह में से पृथक् करके पृथ्वी पर भेज सूयदेवी को राज़ी कर लिया।

तब नरदेव कोरिया के सामने वाले इज़ूमो टापू की 'ही' नामक नदी के किनारे आया। उस नदी के किनारे पर एक बुड्ढा अपनी

जवान लड़की के साथ बैठा था और वे दोनों रो रहे थे। नरदेव ने इसका कारण पूछा। बुड्ढा बोला—"मेरे आठ लड़की थीं, परन्तु हर साल एक आठ फन वाला साँप आता और एक एक को खा जाता रहा है, अब केवल एक लड़की रह गई है सो इसका भी समय आ गया है।" इस पर नरदेव ने कहा कि यदि बुड्ढा उसे अपनी कन्या दे दे तो वह इस बार उसकी रक्षा करेगा। बुड्ढा राज़ी हो गया। तब नरदेव ने आठ कढ़ाव शराब के भरवा कर रख दिये। जब सर्प आया तो उसने हर एक में अपना एक एक फन डाल कर, खूब शराब पी और बेहोश होकर सो गया। नरदेव ने उसी दम तलवार निकाल कर उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये। जब तलवार पूँछ को काटने लगी तो टूट गई और पूँछ की परीक्षा की तो उसके भीतर एक बड़ी तलवार निकली।

नरदेव ने एक महल बनाया और वहाँ अपनी स्त्री-सहित रहने लगा। बुड्ढे को काम काज का भार दिया।

जापान-देश को स्थिर करने के लिए स्वर्ग में देवताओं ने, पंचायत की और वर्तमान दशा जानने के लिए एक देवता को भेजा। वह केवल स्वर्गमार्ग के पुल तक हो आया और देश की अस्थिरता देख उलटा लौट गया। एक और देवता कुछ दिन पीछे आया उसको नरदेव ने रोक लिया। इसका पता लगाने के लिए एक मोर भेजा गया जो नरदेव के महलों में एक वृक्ष के ऊपर आकर बैठा। इसको नरदेव ने एक तीर से मार दिया। फिर दो देवता और आये और नरदेव से मिलकर उन्हों ने देश का वृत्तान्त लिखा तथा शान्ति की रिपोर्ट स्वर्गलोक को भेजी।

शान्ति के समाचार पाकर देवताओं ने सूर्यदेवी के पौत्र को इस परमोत्तम देश का राज्य करने के लिए स्वर्ग से भेजा। उसके साथ पाँच छः देवता और भी आये। सूर्यदेवी के भुलाने के लिए जो दर्पण और माला बनाया गया था वह भी उसे दि[illegible] गया। नरदेव

ने आठ फन वाले साँप की पूँछ से निकली हुई तलवार इस स्वर्गीय राजपुत्र को सौंपी । देवताओं ने कह दिया था कि इस दर्पण को उतने ही आदर से रखना चाहिए जितना आदर स्वर्गीय पितृकुल का होता है ।

राजपुत्र ने अपना महल वर्तमान क्यूशू टापू के सुकुशी पहाड़ पर बनाया और यहीं एक देवकन्या का इसने पाणिग्रहण किया । उस से तीन पुत्र हुए, जिनके नामों का अर्थ अग्निप्रकाश, अग्निवृद्धि और अग्निशत्रु था ।

अग्निप्रकाश को मछली पकड़ने का बड़ा शौक़ था और अग्नि-शत्रु को शिकार का । अग्निशत्रु ने अपने बड़े भाई से कहा—आओ हम अपना अपना शौक़ बदल लें और देखें कौन क्या करता है? बड़ा भाई इस बात पर राज़ी हो गया । अग्निशत्रु को मछली पकड़ने का कुछ भी अभ्यास नहीं था इसलिए उससे काँटा टूट गया और समुद्र में रह गया । अग्निप्रकाश ने शिकार के हथियार लौटा कर अपना काँटा माँगा । छोटे भाई ने कहा कि काँटा तो खो गया । इस पर अग्निप्रकाश अपने काँटे के लिए और भी ज़िद करने लगा । अग्नि-शत्रु ने अपनी तलवार में से कई काँटे बनवा कर बड़े भाई को दिये परन्तु वह अपना असली काँटा ही माँगे गया ।

अग्निशत्रु समुद्र-किनारे बैठकर रोने लगा इस पर समुद्रदेव को बड़ी दया आई और राजकुमार के पास आकर रोने का कारण पूछा । राजकुमार ने उत्तर दिया कि मैंने अपने बड़े भाई से एक दिन मछली पकड़ने का काँटा लिया था । वह मुझसे टूट कर समुद्र में जा गिरा है और मेरा बड़ा भाई उसी काँटे को मुझसे माँगता है । तब समुद्रदेव ने कुमार को एक नाव में बिठाया और अपने महलों को ले गया । यह महल मछली के परों से तैयार किया गया था । महल में एक वृक्ष के ऊपर राजकुमार को बैठने के लिए कहा गया और बताया गया कि जब समुद्र-पुत्री आवे तो जैसा वह कहे वैसा

ही करना । जब कुछ दासियाँ इस महल में आई और इस सुन्दर युवा को वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ देखा तो वे बहुत विस्मित हुईं । उनसे कुमार ने पीने के लिए पानी माँगा । उन्हों ने एक जवाहिरात जड़े हुए पियाले से पानी पिलाया और शीघ्र राजपुत्री को समाचार दिया कि एक बड़ा सुन्दर पुरुष उद्यान के एक वृक्ष के ऊपर बैठा है । समुद्रदेव को ख़बर दी गई । उसने बड़े आदर से उसको एक ख़ास कमरे में उतारा और अपनी लड़की का विवाह उसके साथ कर दिया और तीन वर्ष बड़े आराम से कटे ।

समुद्र-कन्या ने एक दिन पिता को समाचार दिया कि यद्यपि राजपुत्र बहुत प्रसन्न दिखाई देता है परन्तु कल रात को उसने एक बड़ी आह भरी थी, जिसका कारण यह था कि उसका बड़ा भाई उसी काँटे को माँगता है जो समुद्र मे गिर पड़ा है । इस पर समुद्र ने सब मछलियों को बुलाया और पूछा कि वह काँटा किसने निगला था । तब ताई नाम की एक मछली के गले से वह काँटा निकला और राजकुमार को दे दिया गया ।

समुद्रदेव ने राजकुमार को विदा करते समय दो मोती दिये, जिनमे एक से ज्वारभाटा आता और दूसरे से लौट जाता था । एक मगर की पीठ पर बैठकर कुमार समुद्र किनारे आया और भाई को वह काँटा लौटा दिया । उस समय से दोनों के हृदय में शत्रुता समा गई ।

एक दिन अग्निशत्रु ने ज्वारभाटा लाने वाले मोती को आज-माया तो बात की बात में ऐसे वेग से समुद्र उमड़ा कि अग्नि-प्रकाश को बहा ले चला । अग्निशत्रु को फिर दया आगई और दूसरे मोती के द्वारा ज्वारभाटा हटाकर भाई के प्राण बचाये । अग्निप्रकाश ने उस दिन से भाई की अधीनता स्वीकार की और सच्चे सेवक होने का वचन दिया ।

अग्निशत्रु पिता की जगह पर राजा हुआ और उसने ५८० वर्ष राज्य किया । "ख़ूशू" टापू के "तकाचीहू" पहाड़ पर अब तक उसकी

समाधि का चिन्ह बताया जाता है। समुद्र-कन्या के गर्भ से इसके एक पुत्र हुआ था। वही पुत्र जापान का पहिला महाराजा "जिम्मू" के नाम से इतिहास मे प्रसिद्ध हुआ।

प्राचीन इतिहास मे जिन देवताओं का नाम है उनके नाम पर, आज कल कोई मन्दिर या मूर्ति नहीं मिलते। सब से अधिक प्रतिष्ठित सूर्यदेवी है जिसकी सन्तान इस देश मे राज करने आई। शिंतो मन्दिरों मे कई जगह सूर्यदेवी की ही प्रधान मूर्ति हैं। सब से प्राचीन धर्म शिन्तो कहलाता है। शिन्तो शब्द का अर्थ स्वर्गमार्ग है। पितृ-पूजा इस धर्म का प्रधान अंग है। इस धर्म की कोई ख़ास पुस्तक नहीं है। कहा जाता है कि प्राचीन काल मे सब लोग स्वतः ही धार्म्मिक और शिक्षित होते थे। उनको समझाने के लिए किसी पुस्तक की आवश्यकता न थी। पापी देशों के लिए ही धर्मग्रन्थ, अवतार और पैग़ंबरो की आवश्यकता हुई है। प्राचीन काल में जापानियों के कर्म बहुत अच्छे होते थे। वे यह नहीं जानते थे कि संसार में धर्म एक पृथक् पदार्थ है। पितृ-कुल की पूजा वे लोग बड़ी भक्ति के साथ करते थे। अग्नि, वायु, यम और अन्नपूर्णा देवी की पूजा की जाती थी। मृतक-देह के छूने से वे लोग सूतक मानते थे। नरक स्वर्ग का पूरा पूरा विवरण उनको ज्ञात न था। देवताओं में अच्छे बुरे दोनों प्रकार के समझे जाते थे। मन्दिरों में पुजारी लोग केवल देवपूजन करते थे। लोगों को उपदेश देने की रीति न थी। देवताओ के बनाये हुए दर्पण, माला और (सर्प में से निकली हुई) तलवार जिस मन्दिर मे रक्खी रहती थी उसकी रक्षा का भार एक राजकन्या के हाथ में रहता था।

जापान मे बौद्ध-धर्म का आगमन होने से शिन्तोधर्म में दूसरा परिवर्तन हुआ। बौद्ध-पंडितो ने शिन्तोधर्म के देवताओ की गणना भी अवतारो में करली और उनकी सब रीति-नीति को अपने चमक

दमक वाले धर्मोपदेश में ढक लिया। शिन्तोधर्म के मंत्र जो पहिले कंठस्थ रहते थे, पुस्तकाकार लिखे गये और उसी काल में पुराने धर्म का नाम भी 'शिन्तो' रक्खा गया। पहिले किसी को धर्म का पृथक् नाम रखना सूझा ही न था। शिन्तोधर्म के सीधे सादे पण्डित भी भारतवर्ष की भाँति जादू-टोना और ज्योतिष-गणना करने लगे। केवल राजमहलों और कुछ बड़े बड़े मन्दिरों में शिन्तोधर्म का पुराना नमूना बाक़ी रह गया। ईसे और ज़ूमो के बड़े मन्दिरों के सिवाय शिन्तोधर्म के अन्य मन्दिरों में बौद्ध-पुजारी ही पूजा करते थे, जो मन्दिरों को अपनी अपनी तर्ज़ पर सजाते और अपनी रीति का पूजन करते थे। फिर दोनों धर्म मिल जुल गये। मध्यम श्रेणी के लोग दोनों की बातों में श्रद्धा रखते थे। यह मिश्रित धर्म 'रोबू-शिन्तो' कहलाता था।

सत्तरहवीं शताब्दी में शिन्तोधर्म ने फिर अपना पृथक् रूप धारण किया। तोकूगावा घराने के शान्तमय राज्य में लोगों को अपने सनातन शिन्तोधर्म का फिर विचार उठा। प्राचीन-लेखों की तलाश हुई, पुराना इतिहास खोजा गया और जापानी विद्वान् उस प्राचीनतम काल की रीतियों की प्रशंसा करने लगे। शिन्तोधर्म को एक स्वतंत्र रूप दिया गया। सूर्य्य-कुलोत्पन्न (सूर्यवंशी) मिकाडो महाराज में परमभक्ति उत्पन्न हुई। उस काल में मिकाडो के बदले राजकाज शोगन लोगों के हाथ में था। वे लोग मिकाडो में प्रजा की श्रद्धा बढ़ती देखकर बहुत घबराये। स्वधर्म में प्रेम बढ़ने के कारण विदेशों से आये हुए धर्म घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे। इस धर्म के मुख्य सिद्धान्त दो ठहरे। मिकाडो में भक्ति और अपनी आत्मा के उपदेशानुसार सांसारिक व्यवहार। बौद्धधर्म का आदर घट गया। प्राचीन शिन्तोधर्म ही दर्बार का धर्म हुआ। पुजारियों को बड़े बड़े पद मिले और धर्मसम्बन्धी सब काम उनको सौंपे गये। बौद्ध लोगों के हाथ में आये हुए मन्दिर फिर ख़ाली कराये गये और पवित्र करके शिन्तो-पुजारियों को दिये गये।

परन्तु शिन्तोधर्म में ऐसी बातें नहीं हैं जिनसे सर्व साधारण का मन आकर्षित हो, इसलिए सिवाय सरकारी-मन्दिरों के अन्य जगह बौद्ध-मन्दिरों की सी रौनक़ नहीं है। आज कल शिन्तोधर्म के पुजारी धर्मोपदेश छाप छाप कर बाँटा करते हैं। एक सज्जन ने बुद्ध, कनफ़ूशस और ईसा-इन सब के उपदेशों में से अच्छी बातें ग्रहण करके प्रचार करने का प्रबन्ध किया है। जापानियों में जो स्नान करने का इतना प्रचार है उसका कारण यह शिन्तोधर्म ही है। स्नान द्वारा शरीर की शुद्धि का वर्णन उस आदि काल से चलता है जब कि ईज़ानागी नरक में अपनी स्त्री को देखकर आया और स्नान द्वारा वहाँ की अशुद्धि को उसने दूर किया था।

यद्यपि बौद्ध-धर्म में मूर्ति-पूजा की जाती है; धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ता है; पुजारी लोग सिर घुटाकर रहते हैं; उत्सव करते हैं; माला जपते हैं; परन्तु यह सब भोले भाले लोगों के लिए है। निर्वाण-पदप्राप्ति के लिए उनका यह विश्वास है कि बिना आत्मज्ञान के मनुष्य इस संसार से मोक्ष नहीं पाता। बौद्ध लोग इस जगत् में जन्म लेना बहुत बुरा समझते हैं तथा आवागमन से छुट जाने का नाम ही मोक्ष गिनते हैं।

जापान में बौद्ध-धर्म कोरिया से आया। कोरियावालों ने चीन से लिया था। जापान के इतिहास में लिखा है कि सन् ५५२ ई० में कोरिया के ह्याकुसाई नामक प्रान्त के राजा ने सोने की एक मूर्ति और बौद्ध-धर्म के सूत्रों का एक गुटका जापान के मिकाडो "किमेई" के पास भेजा। मिकाडो तो नये धर्म से प्रसन्न था परन्तु दर्बारी लोग जो अपने शिन्तोधर्म से सन्तुष्ट थे, नयी बात करना नहीं चाहते थे। उन्होने परीक्षा के लिए मूर्त्ति सोगाना इनामे नामक एक दर्बारी को दी जिसने अपनी एक गढ़ी को मन्दिर बना दिया और वहाँ मूर्त्ति पधरादी। दैवात् इन्हीं दिनों मे महामारी फैली जिस का कारण वह मूर्त्ति ही समझी गई। निदान मन्दिर तुड़वा दिया गया और

मूर्त्ति समुद्र में डाल दी गई। ऐसा होने से महामारी ने और ज़ोर पकड़ा और लोगों को इतना घबरा दिया कि उन के मन बुद्ध-महाराज का निरादर इस भारी विपत्ति का कारण जम गया। उन्होंने फिर उस मूर्त्ति को समुद्र से निकाला और मन्दिर को नये सिरे से बनवाया। कोरिया से अनेक पण्डित बुलाये गये। राज-कुमार "शोतोकू" जो अपनी महारानी सुइको के अधीन राजकाज सँभालता था, इस धर्म का दृढ़ भक्त बन गया। यह सन् ५९३-६२१ ई० की बात है। सब प्रकार की शिक्षा और पुण्य के काम इन्हीं बौद्ध-पुजारियों के हाथ मे थे। जापान में कारीगरी, वैद्यक, ग्रंथ-रचना, आदि आदि बातें इन्हीं बौद्ध लोगों के साथ फैलीं। यद्यपि जापानी अब इस बात को चाहे न मानें, परन्तु भारतवर्ष के बौद्ध धर्म ने उनका प्राचीन काल में बड़ा उपकार किया था। आज कल के जापानी उस प्राचीन धर्म का तनक भी महत्व नहीं समझते।

समय के प्रभाव से, बौद्ध धर्म के अनेक भेद हो गये हैं। जापान में 'महाथान' सम्प्रदाय का प्रचार हुआ था। लङ्का और स्याम में भी इसी संप्रदाय के मानने वाले हैं। जापानियों ने बौद्ध धर्म के ग्रंथों का अपनी भाषा में अनुवाद नहीं किया है; वही चीनी भाषा की पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। सन् १८७१-४ मे बौद्ध-धर्म राज-धर्म नहीं रहा, उस की जगह प्राचीन शिन्तो ने ली।

महात्मा कनफूशस का जन्म चीन मे हुआ था। वहाँ अनेक लोग उसी के उपदेशों पर चलते हैं। जब जापान में चीन से और और बातें गईं तो कनफूशस के उपदेश भी पहुँचे। जिन दिनों जापान में बुद्ध-देव का यश छा रहा था, इनको कोई न पूछता था। सत्तरहवीं शताब्दी में ऐयासू महाराज ने इसका प्रचार जापान में फैलाया। ऐयासू विद्या का बड़ा रसिक था। उसने चीन के महात्मा कनफूशस की वाणी को जापान में छपवाया। इस के पीछे दो ढाई सैा वर्ष तक इस उपदेश की खूब चर्चा रही। अपने स्वामी और पितरों का आदर करना कनफूशस का बड़ा उपदेश था। जापान

उन दिनों में छोटे छोटे ताल्लुकों में बटा हुआ था, ताल्लुकेदार यही चाहते थे कि उन की प्रजा उन्हे भक्तिभाव से देखे। जो धर्म ऐसी शिक्षा दे उस के लिए राजा लोग पूरी चेष्टा करते थे। जापानियों ने इस धर्म की पुस्तकों को चीनी-भाषा ही मे पढ़ा, अपनी मातृ-भाषा में अनुवादित नहीं किया।

सीडो नाम का बड़ा मन्दिर जो टोकियो मे कनफूशस का था, वह अब शिक्षा-विभाग की प्रदर्शनी के काम आता है।

जापान के अकसर मन्दिरों मे, दरवाज़े के भीतर जाने पर, एक मिहराब सी बनी रहती है जिसे "होरी" कहते हैं। बहुत लोगों का ख़याल है कि पुजारी लोग प्रातःकाल जगने के लिए मुर्गे पाल रखते थे जो इस मिहराब के ऊपर चढ़ कर बाँग देते थे। इस प्रकार की रीति शिन्तो-मन्दिरों मे थी। जब बौद्ध लोग आये तो उन्हों ने इस मिहराब मे धर्मोपदेश लिखे हुए तख़्ते टाँगे। बाजों का ख़याल हैं कि चीन देश की भाँति ये मिहराब पूजनीय पुरुषों के स्मरण मे बनाई गई हैं। अथवा यह रीति कोरिया से गई है जहाँ राजमहल के पास ऐसी मिहराब बनाये जाने का अब तक रिवाज है।

ईसाई-धर्म की चर्चा पहिले आचुकी है। वर्त्तमान में ईसाइयों के साथ वहाँ अब कोई विरोध नहीं है। आजकल संसार में यूरोप अपने को सब से सभ्य समझता है और समस्त यूरोप ईसाई-धर्म को मानने वाला है। उन देशों से ईसाई पादरी बड़े जोर शोर से ईसाई-धर्म फैला रहे हैं। एक बार ऐसा भी सुना गया था कि समस्त जापान, राजाज्ञा से, ईसाई होने को है। लाभ इस में यह सोचा गया था कि जापान फिर किसी बात में यूरोपवालो से कम न रहेगा। परन्तु जब सन् १८८८ में स्वदेशी जोश फैला तो यह आशा केवल दुराशा मात्र रह गई। यूरोपवालों की राजनीति-सम्बन्धी किसी बात से नाराज़ होकर, जापानियों ने सब विदेशी बर्ताव छोड़ देने की ठान

ली थी। वह एसे मूर्ख न थे जो यूरोपवालों से प्राप्त किये हुए ज्ञा
को छोड़ देते; रेल, तार, व्यापार और डाक्टरी को त्याग देते-जि
से प्रत्यक्ष लाभ मिलता था। उन्हों ने केवल यूरोपियन ढंग के कपड़े
पहिनना, खान पान करना, नाच, थियेटर इत्यादि नई चालों के
छोड़ने का मंसूबा कर लिया। साथही ईसाई-धर्म को जो यूरोप क
था, त्याग देना उचित ठहर गया। वहाँ आज कल ईसाईयों की संख्य
अधिक नहीं बढ़ती। ईसाइयों के हृदय में भी ईसाई पन का उतन
जोश अब वहाँ नही रहा है।

जापानियों का आज कल कुछ ऐसा स्वभाव बदला है कि उन्हें
किसी धर्म में अन्ध विश्वास नहीं है और न किसी से शत्रुता है।
सरकार की नज़र में भी सब धर्म एक से हैं। समझदार लोगों
का ख़याल है कि केवल एक धर्म को सर्वोच्च मान लेने से देश का
कभी कल्याण नहीं होगा। जिस शिन्तोधर्म को सरकार से सहायता
मिलती है वह असल में धर्म कहलाने योग्य नहीं है। इतने बड़े
संसार के लिए एक धर्म, एक गुरु, या एक उपदेश का यथेष्ट होना
जापानियों की समझ में नहीं आता। इसी से वे सब धर्मों की
अच्छी बातों को मान कर चलते हैं। एक पादरी साहिब ने इनके
विश्वास पर लिखा है-"वर्त्तमान जापान के लिए यह कहना
बिल्कुल सच है कि वे किसी एक मत पर नहीं चलते। शिन्तो,
कनफ्यूशिएनिज़्म तथा बौद्ध, तीनों की बातों को मिला जुलाकर
मानते हैं। उनकी किस धर्म मे सर्वाधिक श्रद्धा है यह पहिचानना
कठिन है। जापान, शिन्तो-धर्म से राजभक्ति सीखता है, कनफ़ूशस
से लौकिक नीति, और सामाजिक व्यवहार तथा बौद्ध धर्म से मोक्ष
का मार्ग प्राप्त करता है। ये तीनों प्रकार के उपदेश बड़े सद्भाव से
जापानियों के हृदय में बसते हैं"।

वैरन सूयमत्सु जिसने जापान के अनेक रहस्य लिखे हैं, कहता
है-"यह बात साफ़ तौर पर कह दी जा सकती है कि जापान
एकही समय में शिन्तो भी है और बौद्ध भी है। वह सांसारिक

उन्नति के लिए शिन्तो बनता है और पारलौकिक अभिलाषाओं के लिए बौद्ध हो जाता है। शिन्तोधर्म बहुत सीधा सादा है परन्तु बौद्धधर्म गम्भीर और दुरूह है। कनफूशस के सिद्धान्त एक प्रकार के ऐसे उपदेश हैं जो हमलोगों को लौकिक नीति में कुशल बनाते हैं।

शिन्तोधर्म्म की प्रधान शिक्षा पितृभक्ति और राजभक्ति है। शेष जो सब धर्म हैं वे सब बाहर से आये हैं। उन में हमें जो अच्छा लगा है वह सीख लिया है। इन धर्मों का जो रूप चीन में है वह जापान मे नहीं है। इन में बहुत सी बातें जापानीपन की समा गई हैं।

शिन्तोधर्म की बड़ी शिक्षा 'शुद्ध हृदयता' है। उसका उपदेश है—"हमारी आँखें कदाचित् मैली चीज़ें देखलें, परन्तु मन की नज़र अपवित्र चीज़ों पर न जानी चाहिए"। आश्चर्य्य है कि शिन्तो-धर्म में कोई ग्रंथ नहीं है, केवल कुछ पुरानी गाथा और भजन हैं। ऐसे आडंबर-शून्य धर्म का भी जापानी बड़ा आदर करते है। एक भजन मे आया है कि "यदि मनुष्य केवल सत्य का प्रेमी हो जाय तो फिर उससे बड़ी तपस्या हो और देवता गण उसकी रक्षा करें। शिन्तो लोग अपने पुराने देवता और पितरों का पूजन करते हैं। मनोकामना पूरी करने की इच्छा से उन्हे नहीं पूजते, परन्तु ये लोग अपने सब कार्यों की पूर्णता उनकी कृपा से ही समझते हैं। शिन्तोधर्म में परलोक की चर्चा कुछ कुछ है; परन्तु बौद्धधर्म के समान वहाँ का चित्र नहीं खींचा गया है। यद्यपि वे जीव को अमर मानते हैं परन्तु उसके लिए सद्गति का कारण सांसारिक कर्म ही हैं"।

बौद्धधर्म को वहाँ वालों ने अब अपने ढंग का कर लिया गया है। डाक्टर क्लीमेंट ने लिखा है—"जापानियों के बौद्धधर्म की शिक्षा है कि भक्ति के समान ही कर्मों का दर्जा है। भक्ति बिना कर्म के कुछ काम की नहीं है। जापानी बौद्धमहन्त विवाह करते हैं और मांस मछली भी खाते हैं।"

जापानियों में एक बड़ी तारीफ़ यह है, कि इन्होंने बाहर से आये हुए सब धर्मों का लाभदायक अंश ही ग्रहण किया है; सब धर्मों के उपदेशों से अपनी देशभक्ति बढ़ाई है। देश-विरोधी बातें उन्होंने कभी नहीं सीखीं। प्रारम्भ में जब ईसाई-धर्म के प्रचारकों ने अपने पोप का प्रभाव जापान में जमाना चाहा तो जापानियों ने एकदम उनका नाम निशान मिटा दिया। देश के लिए प्राण देना जापानी अपना बड़ा धर्म समझते हैं। शिन्तोधर्म के नूतन उत्साह के दिनों में यह उपदेश था कि लोग देवताओं से डरें और जन्म भूमि को प्यारा समझें; सृष्टि के नियमों को पहिचानें और सदाचरण सीखें; मिकाडो में भक्ति रक्खें और उसकी आज्ञा मानें"। ये ही बातें धर्म का मूल समझी गईं।

सन् १८९५ में एक आज्ञा पुरोहितों के लिए निकली थी कि वे उपदेश करने की पूर्ण योग्यता प्राप्त करें जिससे लोग सादर उन की शिक्षा को मानें। उनका निज का आचरण बहुत ही अच्छा होना चाहिए क्योंकि यदि उपदेशकों का चरित्र अच्छा न होगा तो प्रजा का सुधार किसी प्रकार सम्भव नहीं है। जापान में ईसाई-धर्म का प्रबन्ध अभी तक यूरोपियन वकीलों के हाथ में है जो उनके चरित्र की उत्तमता पर विशेष ध्यान नहीं देते।

जापान ने सब धर्मों को स्वतंत्रता दी है। इसकी मूल धारा इस प्रकार है—"यदि शान्ति और प्रबन्ध की प्रणाली में गड़बड़ न करे तो जापानी प्रजा, धर्मसम्बन्धी विश्वास के लिए पूर्ण स्वतंत्र है" मार्किस ईटो ने इस धारा पर टीका करते हुए लिखा है—"श्रद्धा और विश्वास मानसिक कर्म हैं। परन्तु पूजन-अर्चन, कथा-वार्ता, धर्म-प्रचार और सभा-संगत जोड़ने के लिए सर्वदा क़ानून का विचार रखना होगा। कोई मनुष्य धार्मिक रीतियो के बहाने से शान्ति-भङ्ग नहीं कर सकेगा और प्रजा होने के कारण राजसेवा से कदापि स्वतंत्र न हो सकेगा। अपने मानसिक विचारों में मनुष्य यद्यपि पूर्ण स्वतंत्र है परन्तु अपने सांसारिक व्यवहारों में धर्म के दिखावटी

कर्मों की क्रिया—क़ानून के अनुसार ही करनी होगी, उसे प्रजा-धर्म से कदापि विमुख न होना होगा"। राज-सभा की यह आज्ञा राजनैतिक और धार्मिक नीति का परस्पर सम्बन्ध स्थिर करती है।

जापान की धर्म-सम्बन्धी स्थिति को सरकार ने इस प्रकार किया है—"यदि शान्ति और प्रबन्ध में अन्तर न आवे तो इस देश में किसी धर्म का प्रचार रोका नहीं जाता। प्रचलित धर्मों में से शिन्तो की १२ सम्प्रदाय हैं और बौद्ध की १३। कनफ्यूशियेनिज्म पृथक् धर्म नहीं समझा जाता परन्तु उसकी शिक्षा का असर जापान पर बहुत होता है। कुछ दिन से, ईसाई-धर्म ने भी ज़ोर पकड़ा है, परन्तु इसका प्रभाव उपर्युक्त धर्मों के समान अभी तक नहीं हुआ है। सन् १९०१ मे शिन्तो के ८४०३८ मन्दिर थे, जिनमें ११३८ पंडित शिक्षा पाते थे। बौद्ध-मन्दिर ७१७८८, पुरोहित ११७३५ और विद्यार्थी ११६८ थे। ईसाइयो के पादरी १३८९ और गिरजे १०५५ थे। प्राचीन महात्माओं की समाधि सरकार की ओर से रक्षित रहती हैं। उनकी संख्या लग भग दो लाख तथा इनके पुजारियों की संख्या १६ हज़ार थी।

धर्मप्रचारक ईसाइयों में रूस के पादरी भी वहाँ हैं। जब लड़ाई शुरू हुई तो सरकार ने इस बात का ख़ास प्रबन्ध किया कि रूसी पादरियों को कोई क्लेश न दिया जाय। एक बड़े पादरी का पत्र रूस के "नोवी व्रिमया" पत्र में इस प्रकार प्रकाशित हुआ था-"जापान-गवर्नमेंट को धन्यवाद है कि रूस के कैथोलिक ईसाई लड़ाई के दिनों में पूरी धार्मिक स्वतंत्रता से रहे। सरकारी पुलिस ने रात दिन मिशन की चौकसी की।"

रूस के क़ैदी जब जापान में आये तो उनके देश के ईसाइयों ने उनकी ख़ूब ख़बरगीरी की। उनके पढ़ने को समाचार-पत्र और पुस्तकें भेजीं।

होता है। सूर्यदेवी के मन्दिर से प्रसाद लाकर घर घर बाँटा जाता है। जापानी इसको कामिदाना में रखकर इसके सामने प्रतिदिन चावल, शराब, श्रौर सकाकी वृक्ष के पत्ते चढ़ाते हैं। प्रातःकाल घर के सब आदमी इकट्ठे होकर हाथ जोड़ सिर झुकाते हैं। संध्या का दीपक जोड़ा जाता है। शिन्तो-धर्मवाले एक श्रौर आलमारी रखते हैं जिनमे अपने पितरों के नाम की तख़्तियाँ डिब्बों मे बन्द करके रखते हैं। ये डिब्बे मन्दिर के आकार के होते हैं। तख़्ती पर पितरो के नाम, उनकी उम्र श्रौर मरने की तिथि लिखी रहती है। इनके लिए चावल, शराब, सकाकी वृक्ष के पत्र, श्रौर दीपक रक्खे जाते हैं। वत्सुदम उस आलमारी को कहते हैं जो बौद्ध लोग अपने घरो मे रखते हैं। इस स्थान पर इनके पुरुखो के नाम की तख़्ती डिब्बो मे बन्द करके रक्खी जाती हैं। तख़्ती पर एक ओर पितरों के प्रचलित नाम श्रौर दूसरी ओर उनका मरणोपरान्त का नाम रक्खा जाता है। डिब्बों श्रौर तख़्तियो के ऊपर अपने कुल का चिन्ह भी बना लिया जाता है। बौद्ध लोग पुष्प, पत्र, चाय, चावल चढ़ाते हैं; धूप जलाई जाती है। शाम को चिराग जलाया जाता है। प्रत्येक महीने मे मरण तिथि के दिन ख़ास त्यवहार मनाया जाता है। वर्ष में एक तिथि सब से बड़ी समझी जाती है। एक जापानी इस प्रकार इस त्यवहार का वर्णन करता है—

"शिन्तो-धर्मवाले शराब, चावल, मछली, भाजी, फल—खान पान के लिए, रेशम श्रौर सन, वस्त्र का टुकड़ा–पोशाक के लिए, तथा पत्र पुष्प चढ़ाते हैं। पुजारी मंत्र पढ़ते हैं जिन में कहा जाता है कि पितृदेव कुल की रक्षा करें, श्रौर भक्ति के साथ दिये हुए भोजन को ग्रहण करें। घर का मुखिया सकाकी वृक्ष की डाली लेकर पूजा के स्थान पर चढ़ाता है श्रौर हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है। बौद्ध लोग अपने पितरों पर कमल के फूल चढ़ाते हैं। वे लोग मांस-मछली नहीं चढ़ाते क्योंकि हिंसा

में बैठकर, अपने पितरों का पूजन करते हैं। बाहिरी भेद इनको कुछ ही हो, अन्तःकरण की भक्ति सब की एक सी है। जापान में सब कुछ यूरोपियन तरीक़े पर होता है। नये नये कानून बनते हैं, रीति-रिवाज ग्रहण की जाती हैं परन्तु पितृ-पूजन पर वर्तमान परिवर्तन का कुछ असर नहीं हुआ। देश मे यह कर्म बहुत प्राचीन काल से चला आता है। चीनी सभ्यता ने जब देश मे प्रवेश किया तब इस कर्म मे और भी वृद्धि हुई। बौद्ध-धर्म भी इसका सहायक हुआ। देश मे अनेक परिवर्तन हुए हैं परन्तु इस कर्म में अभी कुछ अन्तर नहीं आया है।

जापानियों का विश्वास है कि मृत पितरों की आत्मा मनुष्यों को सुख दुःख पहुँचा सकती हैं। इसके सिवाय यह भी कारण है कि ये लोग अपने पितरों के उपकार को कभी भूलना नहीं चाहते। पितृ-पूजा किसी भय का चिन्ह नहीं है। बरन भक्ति और सम्मान का लक्षण है। प्राचीन ग्रन्थों से भी यही बात पाई जाती है कि अपनी आन्तरिक भक्ति प्रकाश करने के लिए ही जापान अपने पुरखो को पूजते हैं। जिनके द्वारा हमने इस संसार मे जन्म पाया है उनका सम्मान हम क्यों न करें? जो अपने पिता और पितामह को प्रेम और आदर दृष्टि से देखता रहा है वह उनकी आत्माओं के लिए अपनी भक्ति क्यों नहीं प्रकाश करेगा? जिनके परलोक-वास होने पर पुत्र इतना शोक मानते हैं उनका स्मरण हृदय से कभी नहीं जाता। अपनी भक्ति को ताज़ा बनाये रखने का ही नाम श्राद्ध या पितृ-पूजन है। ईसाई लोग भी अपने पुरखों की समाधि पर अपनी भक्ति प्रकाश करने के लिए पुष्प चढ़ाते हैं; जिस दिन उनके मरने का वार्षिक होता है समाधि पर जाते हैं। जापानी लोग श्राद्ध के दिन उन्हें साक्षात् जीवित-कल्पना करके उनकी शुश्रूषा करते हैं।

प्रत्येक घर मे दो पूजा के स्थान होते हैं। "कामिदाना" और "वत्सुदम"। कामिदाना में सूर्य्यदेवी के बड़े मंदिर से प्रसाद लाकर रक्खा जाता है। यह स्थान एक छोटी आलमारी के समान

होता है। सूर्यदेवी के मन्दिर से प्रसाद लाकर घर घर बाँटा जाता है। जापानी इसको कामिदाना में रखकर इसके सामने प्रतिदिन चावल, शराब, और सकाकी वृक्ष के पत्ते चढ़ाते हैं। प्रातःकाल घर के सब आदमी इकट्ठे होकर हाथ जोड़ सिर झुकाते हैं। संध्या का दीपक जोड़ा जाता है। शिन्तो-धर्मवाले एक और आलमारी रखते हैं जिनमे अपने पितरो के नाम की तख़्तियाँ डिब्बों मे बन्द करके रखते हैं। ये डिब्बे मन्दिर के आकार के होते हैं। तख़्ती पर पितरो के नाम, उनकी उम्र और मरने की तिथि लिखी रहती है। इनके लिए चावल, शराब, सकाकी वृक्ष के पत्र, और दीपक रक्खे जाते हैं। वत्सुदम उस आलमारी को कहते हैं जो बौद्ध लोग अपने घरो मे रखते हैं। इस स्थान पर इनके पुरुखों के नाम को तख़्ती डिब्बों में बन्द करके रक्खी जाती हैं। तख़्ती पर एक ओर पितरों के प्रचलित नाम और दूसरी ओर उनका मरणोपरान्त का नाम रक्खा जाता है। डिब्बे और तख्तियो के ऊपर अपने कुल का चिन्ह भी बना लिया जाता है। बौद्ध लोग पुष्प, पत्र, चाय, चावल चढ़ाते हैं; धूप जलाई जाती है। शाम को चिराग़ जलाया जाता है। प्रत्येक महीने में मरण तिथि के दिन ख़ास त्यवहार मनाया जाता है। वर्ष मे एक तिथि सब से बड़ी समझी जाती है। एक जापानी इस प्रकार इस त्यवहार का वर्णन करता है—

"शिन्तो-धर्मवाले शराब, चावल, मछली, भाजी, फल—खान पान के लिए, रेशम और सन, वस्त्र का टुकड़ा—पोशाक के लिए, तथा पत्र पुष्प चढ़ाते हैं। पुजारी मंत्र पढ़ते हैं जिन में कहा जाता है कि पितृदेव कुल की रक्षा करें, और भक्ति के साथ दिये हुए भोजन को ग्रहण करे। घर का मुखिया सकाकी वृक्ष की डाली लेकर पूजा के स्थान पर चढ़ाता है और हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है। बौद्ध लोग अपने पितरों पर कमल के फूल चढ़ाते हैं। वे लोग मांस-मछली नहीं चढ़ाते क्योंकि हिंसा

करना बुद्धदेव ने निषिद्ध किया है। मंत्रोच्चारण होता है। सब लोग धूप देते हैं और दंडवत् प्रणाम करते हैं।

जब कोई विद्यार्थी यूरोप को पढ़ने के लिए रवाना होता है, सिपाही लड़ने को जाता है। हाकिम एक जगह से बदल कर नयी जगह में जाता है या रोजगार के लिये परदेशों को निकलता है तो अपने पितरों की समाधि पर जाकर उनसे विदा माँगता है। जवान और बुड्ढे सब को यह विश्वास है कि पितृगण सर्वदा उन पर दृष्टि रखते हैं।

हज़ारों वर्ष से जापानियों का यही हाल है। इतने दिन से पितृ-भक्ति करते करते अब यह कर्म उनके लिए स्वाभाविक हो गया है। राजकुल की आदिमाता-सूर्यदेवी-का पूजन उनका प्रतिदिन का कर्म है। वर्तमान महाराज को अपने पूज्य देव का वंशज मानकर देवता की भाँति ही आदरणीय मानते हैं। सूर्यदेवी के तीन मन्दिर हैं। एक का नाम दाइजिंगू है जो ईसे में है, दूसरा मन्दिर राजमहिलों मे और तीसरा घर घर में प्रतिष्ठित है। पहिले और दूसरे मन्दिर में सूर्यस्थानीय एक दर्पण की पूजा होती है। यह दर्पण सूर्य्यदेवी का दिया हुआ है और उसी की नक़ल राजमहिल के मन्दिर मे रक्खी गई है। जैसे मुसल्मान लोग हज करना अपने जीवन का सब से बड़ा फ़र्ज़ समझते हैं, इसी भाँति इस देश के लोग सूर्यदेवी के मन्दिर की झाँकी के लिए लालायित रहते हैं। घरों से लोग रूठकर छिपकर इस मंदिर की झाँकी करने के लिए जाते हैं। क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी एकत्र होते हैं। राजमहिल में दो मन्दिर और हैं। एक में पहिले महाराज से लेकर पिछले महाराज तक की पूजा होती है और दूसरे में अन्य देवगण पूजे जाते हैं।

जब कोई महाराजा गद्दी पर बैठता है तब 'शिन्शोशाई' नामक तिवहार के दिन, वह नये फल अपने पूर्व-पुरुषों की भेट करता है। इस कर्म को "दैजोसाई" कहते हैं। राज्यारोहण के समय इसकी

सूचना दी जाती है कि नये महाराज "दैजोसाई" करेंगे। यह भी प्रकाश किया जाता है कि राजगद्दी पर बैठने वाले महाराज पैतृक-सम्पति के अधीश्वर बनेंगे। इस पैतृक-सम्पत्ति मे एक दर्पण, एक तलवार और एक रत्न की गिनती है। जब महाराज भार्या-ग्रहण करते हैं तब उसकी सूचना उपर्युक्त तीनों मन्दिरो में भी की जाती है।

सरकारी तातीलें सब से बड़ी ग्यारह समझी जाती हैं। उनमे ९ पूर्व-पुरुषों के स्मरण में, १० वीं महाराज के जन्म-दिन की, और ग्यारहवीं बड़े दिन की है। जापान के राज्य का मूल पितृगणों पर ही निर्भर है। गवर्नमेंट के लिए जापानी शब्द 'मत्सुरीगोतो' है जिसका अर्थ है पूजनीय कर्म। सन् १८९९ मे महाराज ने अपनी राज-सभा में इस प्रकार अपनी स्पीच आरम्भ की थी—"अपने पूर्व-पुरुषों के प्रताप से हम उस घराने की गद्दी पर बैठे हैं जिसका क्रम अनादि काल से चला आता है। यह स्मरण करके कि हमारी प्रजा उन्हीं लोगों की वंशधर है जिनपर हमारे पूर्व-पुरुष परम प्रीति और सावधानी के साथ शासन करते थे, उनका मंगल, आचरण और सुख बढ़ाने तथा देश की उन्नति के लिए हम राजनीति स्थिर करते हैं जिसके अनुसार हम, हमारी भविष्यत् सन्तान, हमारी प्रजा और प्रजा की सन्तान चलें। यह राज्याधिकार हमें अपने पुरखों से मिला है। इसे हम अपनी सन्तान के लिए छोड़ जायँगे। न हम और न वे इस नीति के अनुसार चलने में चूकेंगे"।

यही कारण है कि जापान में लड़का गोद लेने का रिवाज इतना अधिक है। पितृपूजा के लिए सन्तान छोड़ जाना बड़ा ज़रूरी है। किसी कुल का लोप कदापि न होना चाहिए। लड़कियाँ बाप के घर इतनी अच्छी इसी लिए समझी जाती हैं कि वे विवाहोपरान्त अपने पति के पुरखों को पूजने लगती हैं और अपने पिता के पूर्वजों से कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं।

जापानियों को अपने पूर्वजों का यश बनाये रखने के लि अपना आचरण बहुत अच्छा रखना पड़ता है तथा वे अपनी भाव सन्तति के लिए भी पूजनीय पिता बनना चाहते हैं । अच्छे लो को जीते जी और मरण पश्चात्, दोनों दशा में, राज्य से सम्मा दिया जाता है ।

इस देश-निवासियों को इस पितृभक्ति ने ही ऐसा शूर वी बना दिया है कि आज भूमंडल पर इनकी वीरता के गीत गाये जा हैं । यथार्थ में जापानी लड़ाकू लोग नहीं हैं, उनको शान्ति बड़ी ह प्रिय है । फ़ौज मे जो लोग प्रजा में से लिये गये थे वे सीधे सादे किसान थे जिन्हों ने कभी लोहू की बूँद भी नहीं देखी थी, वे मांस तक न खाते थे, परन्तु इन लोगों ने सिपाहियों से बढ़कर काम कर दिखाया । वीरता, सहनशीलता, अध्यवसाय और साहस में इनका उदाहरण मिलना कठिन हो गया है । "अपने पुरखों के नाम में बट्टा न लगाना" केवल इतनी बात दुर्बल से दुर्बल जापानी को भी वीर बना देती है । पोर्ट आर्थर पर सिपाही गोली के सामने जा जा कर, रूसियों के फैलाये हुए जाल मे, जान बूझ कर, कठिन चट्टानों पर क्यों चढ़ते थे ? एक दर्शक ने लिखा है "—पिछली बार जब जीते हुए पोर्ट आर्थर को विदेशीय शक्तियों के दबाव से फिर वापिस देना पड़ा तो सौ से ऊपर सिपाहियों को जो युद्ध में लड़े थे बड़ी शरम आई । उन्हों ने यह बात जापान के लिए महालज्जाजनक समझी और लोहू से इसका प्रतिवाद लिखा और आत्महत्या करली । उन्हों ने अपने देश का यह लज्जाजनक कर्म जीवित रह कर, देखना उचित नहीं समझा । इस बार रूस के मुक़ाबिले में जब पोर्ट आर्थर पर धावा हुआ तो सिपाहियों को पूर्व-कथित वीरों की आत्मा उस क़िले पर फिरती हुई देखाई देती थीं । इनके साथ और भी सिपाही थे जिन्होंने चीनियों से पोर्ट आर्थर विजय करने में अपने प्राण दिये थे । इस बार जब पोर्ट आर्थर फ़तह हुआ तो एडमिरल टोगो ने इस विजय का समाचार उन प्राचीन मृत योद्धाओं की आत्माओं को सब से पहिले

इस भाँति सुनाया—"आप लोगो की आत्माओं के सामने खड़े होकर मैं बड़ी कठिनता से अपने हृदय का भाव प्रकाश कर सकता हूँ। आप लोगो ने अपने वीर-व्रत मे प्राण दिये थे। आज हमारी सेना इस समुद्र की एक मात्र अधिकारिणी है। मैं समझता हूँ इस समाचार से आप लोगों की आत्माओं को शान्ति प्राप्त होगी। मुझे महाराजा से आज्ञा मिली है कि जिन लोगों के प्राण इस चेष्टा में गये हैं उन की आत्माओं को इस विजय का समाचार दूँ"।

इसी प्रकार, जनरल नोगी ने अपने मृत साथियों से ईश्वर-प्रार्थना की; तब कहा—"पोर्ट आर्थर जीतने का अभिमान उन को भी उचित है जिन के प्राण इस चेष्टा मे गये हैं"। जीवित योद्धाओं की संख्या थोड़ी रह जाने पर मृत योद्धाओ की आत्मा को अपने साथ समझ कर जापानी फ़ौज सर्वदा लड़ने मे लगी रहती थी और निराश न होती थी। देश-सेवा मे प्राण देना बड़े सौभाग्य का कारण था। इस सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए वे सब आपदा और संकटों को सहने और जान बूझ कर मृत्यु के मुख मे गिरने को तय्यार थे।

मंत्र, यंत्र और चित्र जापानी मन्दिरों में बहुत बिकते हैं। इन का प्रचार बौद्ध लोगो के द्वारा हुआ है। परन्तु आजकल शिन्तोधर्म के मानने वाले भी इस व्यवहार को करते हैं। इन यन्त्रों के द्वारा बुरे दिन टल जाते हैं; भाग्य खुल जाते हैं; समुद्रयात्रा निष्कंटक पूर्ण होती है; न अग्नि का भय रहता है, न रोग शोक का; स्त्रियों को बच्चा जनने की पीड़ा नहीं होती। ये यंत्र काग़ज़ पर लिखे होते हैं। काग़ज़ की लंबी धज्जियों पर किसी देवता का नाम, या कोई मंत्र लिख दिया जाता है और साथही एक चित्र भी बना होता है, लोमड़ी, कवा, और कुत्ता इन में से किसी का चित्र बहुधा बनाया जाता है। ग़रीबों के घर पर इस प्रकार सचित्र मंत्र की धज्जियाँ किवाड़ों मे चिपकी हुई बहुधा देखी जाती हैं। अमीर लोग इन्हे बड़ी सावधानी से घर मे सजाकर रखते हैं। इन चित्रो के लिए लोग

दूर दूर के तीर्थों को जाते हैं, यूरोपियन सभ्यता का विस्तार होने पर भी, अभी इस प्रकार के विश्वासी बहुत मौजूद हैं। मन्दिरों के रङ्गीन चित्र सब यात्री अवश्य ख़रीदते हैं और प्रसाद की भाँति अपने घरों को ले जाते हैं। बच्चों का पजा कागज़ पर छाप लिया जाता है और भूत प्रेत हटाने के लिए परम समर्थ समझा जाता है। 'ईसे' मे सूर्य्यदेवी के मन्दिर पर धाती मुद्रा बिकते हैं। जापान मे प्रत्येक बीसवें वर्ष पुराने मन्दिर तोड़कर नये बनाये जाते हैं और पुराने मन्दिर की लकड़ी टुकड़े टुकड़े करके विश्वासी लोगों में बाँट दी जाती है। धर्म-सूत्र गुटका रूप में, भाग्यदेवी के छोटे छोटे चित्र, बुद्ध देव के चरणचिन्ह पत्थर पर बने हुए तथा अनेक पवित्र देवों की मूर्त्ति को लोग बड़े विश्वास से अपने घर रखते हैं। एक लकड़ी के टुकड़े पर नरितदेव का नाम लिख कर बहुधा लोग उसी प्रकार पहिनते हैं जैसे भारत मे कोई कोई 'सीतारामी' गले में धारण करते हैं। इसके पहिनने से मनुष्य किसी दुर्घटना में नहीं पड़ता। स्त्रियाँ इसे अपने कमरबन्द मे लगा लेती हैं। बच्चो को भी तावीज़ पहिनाये जाते हैं।

इस देश में लोमड़ी को बड़ा शक्तिशाली जीव होने का विश्वास किया जाता है। उस से घटकर बिज्जू और कुत्ते का विचार है। ग्यारहवीं शताब्दी की पुस्तकों मे लोमड़ी की अद्भुत करतूत की चर्चा पाई जाती है। आज कल के सभ्य समय में भी ऐसी बुढ़िया और बुड्ढे मिलते हैं जिन्होंने आखों देखे मनुष्यों की ज़बानी इन जीवो की आश्चर्य्यमय शक्ति सुनी है। सन् १८८९ में घर घर यह चर्चा फैल गई थी कि एक लोमड़ी ने रेल का रूप धारण कर लिया है। असली रेल वालों को यह रेल सामने से आती हुई नज़र आई परन्तु बहुत देर बाट देखने पर भी वह असली रेल तक नहीं पहुँची। इंजन-ड्राइवर ने बहुतेरी सीटी बजाई परन्तु उधर से कुछ जवाब नहीं मिला, केवल भ्रम समझ कर गाड़ी आगे बढ़ी तो और कुछ नहीं मिला, केवल एक लोमड़ी रेल से कटी हुई पाई गई। समाचारपत्रों

में भी लोमड़ी की लीलाएँ छपती रहती हैं। जैसे हमारे देश में किसी किसी आदमी के सिर भूत चढ़ जाता है, वैसे ही इस देश में मनुष्य के शरीर में लोमड़ी प्रवेश कर जाती है। डाक्टर वेल्ज ने अपने अस्पताल मे इसके कई केस देखे हैं। उन्हों ने लिखा है—

"लोमड़ी का मनुष्य के शरीर में प्रवेश करना एक प्रकार का वहम है जो जापान में अधिक मनुष्यों को सताता है। जब शरीर मे लोमड़ी ने अधिकार जमा लिया तो नर देह-पर उस को पूरा शासन मिल जाता है। मनुष्य की आत्मा दबी बैठी रहती है। लोमड़ी जो कुछ कहती व करती है उसे मनुष्य देखता सुनता रहता है। कभी दोनों मे झगड़ा भी उठता है। लोमड़ी की आवाज़ और, और मनुष्य की आवाज़ और होती है। लोमड़ी बहुधा नीच ज़ात की स्त्रियों पर अधिक प्रभाव डालती है। जो स्त्रियाँ दुर्बल बुद्धिवाली वहमी और कठिन रोग ग्रस्त होती हैं उन्हीं की यह अधिक ख़बर लेती है। जिन को पहिले से ही लोमड़ी की अद्भुत शक्ति का भय लगा हुआ है उन्हीं के सिर लोमड़ी आ चढ़ती है।

"मनुष्य के शरीर में भूत का भ्रम जिस कारण से होता है वह यह है कि नीरोगता की दशा में मनुष्य का केवल एक ओर का दिमाग़ काम करता है। दहिने हाथ से काम करने वालों का बायाँ और बाएँ हाथ से काम करने वालो का दहिना भाग चेष्टा करता है; परन्तु रोग की दशा मे दूसरा भाग भी सोचने विचारने लग जाता है और मनुष्य के विचार गड़बड़ हो जाते हैं। उसने जो कुछ अद्भुत बातें सुनी थीं वह अब दिमाग़ मे से निकलने लगती हैं। ऐसे रोगियों को बातों से ही अच्छा किया जाता है और वह वहम हट जाता है। झाड़ फूँक करने वाला दृढ़ चित्त, प्रभावोत्पादक प्रकृति का होना चाहिए तथा रोगी को भी उसके सामर्थ्य मे श्रद्धा होनी आवश्यक है। बौद्ध-धर्म के मानने वालो मे एक फ़िरक़ा ऐसा है जो भूत उतारने चढ़ाने का ही काम करता है, उस पर लोगों का बड़ा विश्वास है। स्याने लोग कभी कभी आखें दिखाकर, चिल्लाकर-

और डराकर लोमड़ी को भगा देते हैं। भूत उतरने के पीछे रोगी कई दिन तक बड़ा दुर्ब्बल रहता है। बाज़े रोगी बेहोश हो जाते हैं।

"मैं एक केस का वर्णन करना चाहता हूँ। एक लड़की को बड़ा विषमज्वर हुआ, जब उस से बच कर दुर्बल शरीर रह गयी थी उन दिनों मे, उसने सुना कि पड़ौस की एक स्त्री के सिर पर लोमड़ी सवार है और पड़ौसिन इस चेष्टा मे है कि वह अपने सिर की बला किसी दूसरे पर चढ़ा दे। इस बात के सुनतेही लड़की का अजब हाल हुआ। वह चिल्लाने लगी कि "लोमड़ी वह आई—लोमड़ी वह आई अब मैं कैसे करूँ, वह आई वह आई"। तत्कालही उसके मुख से दूसरे प्रकार का शब्द निकलने लगा जो उस लोमड़ो का वाक्य था। तीन सप्ताह [तक उसका यही हाल रहा। तब एक बौद्ध-स्याना बुलाया गया। स्याने ने उस से बहुत बात चीत की। वह थक गई और बोली—"मै इसे छोड़ दूँगी, मुझे क्या दोगे?" स्याने ने कहा—"जो माँगना हो सो माँगो" इस पर लोमड़ी ने कुछ रोटी और दूसरी चीजें बताई जो अमुक दिन तीसरे पहर अमुक मन्दिर के पास पहुँचा दी जायँ। लड़की उस समय इन सब बातों को सुनती और समझती जाती थी। जब लोमड़ी के कथनानुसार खाना भेज दिया गया, लड़की अच्छी भली हो गई।

"टोकियो से दो दिन के रास्ते पर भूत उतारने वाले सम्प्रदाय का मिनोबू नामक स्थान में एक मन्दिर है। उस मन्दिर में एक बड़ी भयानक दीर्घाकार मूर्ति है। यहाँ बैठ कर वे लोग भजन करते हैं और इस मंत्र को जपते हैं—"नमो मोहो रंगे क्यो—नमो मोहो रंगे क्यो"। कुछ देर पीछे उनमे से किसी भक्त के शरीर में दैवी माया प्रवेश करती है और साथ ही सब खेलने लग जाते हैं। जब माया लोप हो जाती है तो वे सब अचेत होकर गिर पड़ते हैं।"

यह तो डाक्टर साहिब की बातें हुईं। इनके सिवाय वहाँ ऐसे भी स्याने हैं कि वे जिसके ऊपर चाहें लोमड़ी चढ़ा देते हैं। "नोचीनीची

शिम्बन" नामक समाचार-पत्र ने १४ अगस्त सन् १८९१ में निम्न लिखित लेख छापा था।

"ईजूमो सूर्य के पश्चिमीय प्रान्त में एक प्रकार के स्याने लोग रहते हैं जिनके साथ व्यवहार करने मे अन्य लोग बहुत हिचकते है। जब किसी सगाई व्याह की चर्चा चलती है तो अन्य गुण दोषों के साथ साथ यह भी छान बीन होती है कि ये लोग स्यान-पन करने वाले तो नहीं हैं? उस प्रान्त मे ऐसा विश्वास है कि स्यानों के साथ व्यवहार करना अपने लिए एक आफ़त मोल ले लेना है। इन लोगों के खेत और माल मते को लेने से भी लोग डरते हैं, क्योंकि लेनेवाले के सिर पर लोमड़ी आ चढ़ती है। उसके मुँह से उसका दोष कहलवा देती है और बहुतों को दंड स्वरूप उनका मृत्यु-समाचार सुना देती है। स्याने लोगों के साथ सम्बन्ध करने वालों से भी अन्य लोग डर जाते हैं। विवाह सगाई स्थिर करते समय, बहुत गुप्त रीति से, इस बात का सन्देह मिटाया जाता है। भय के कारण कोई खुल्लमखुल्ला यह नहीं पूछ सकता कि "आप स्यानों के घरानों मे से तो नहीं है?"

स्याने लोग स्वयं भी अन्य लोगों से व्यवहार करना ठीक नहीं समझते। वे अपने ही समुदाय वाले टटोलते हैं। यदि स्यानों के लड़के या लड़की अन्य समुदाय के लड़की-लड़के से प्रेमवश विवाह कर लेते हैं तो स्याने लोग उन्हे अपने दल में से निकाल देते हैं।

जो बौहरे लोग इनसे देन लेन करते हैं उनसे भी अन्य लोग बहुत डरते हैं और उधार लिया हुआ रुपया कौड़ी कौड़ी चुका देते हैं। इस सूत्रे मे लोमड़ी का बड़ा ज़ोर है। एक डाक्टर को २१ केस मिले थे।

ओकू नाम के टापुओ में लोगो के सिर कुत्ता आता है। जो लोग इनकी झाड़ फूँक करते है वे कूकर-देव के भक्त कहलाते हैं।

जब कुत्ते की आत्मा किसी मनुष्य के शरीर में चली जाती है तो उसका शरीर दिन दिन दुर्बल होकर नष्ट हो जाता है। इस दशा में कुत्ते की आत्मा मनुष्य-देह से निकल कर छिपकली में चली जाती है।

जापान में ज्योतिषी भी हैं। आठ कोठे की कुंडली बना कर वहाँ के ज्योतिषी भाग्य-गणना करते हैं। हर एक बाज़ार में ज्योतिषियों की बैठक हैं जिनमें पासे सामने रक्खे हुए ज्योतिषी जी बैठे होते हैं। पासे हिलाकर कुछ हिसाब लगाते हैं और अनेक बातें बता देते हैं। चीज़ों की चोरी, नौकरी की बदली, लड़का गोद लेने की उत्तम तिथि, विवाह और यात्रा का मुहूर्त, तथा मुक़दमों की हार-जीत भी कह देते हैं। मिस्टर ताकीशामा योकोहोमा के प्रसिद्ध रईस हैं, वे लड़कपन में क़ैद हुए थे। उन्हीं दिनों में उनको शकुनावली की पुस्तक मिल गई जिसके सहारे से उन्हें लाभ पर लाभ हुए। उन्होंने इस शकुनावली की वृहद् टीका कराके उसे प्रकाशित कराया है।

जापानी भाषा के विद्वान् मिस्टर चेंवर लेने कहते हैं कि जापानियों ने अनेक यूरोपियन-आचरण ग्रहण करने पर भी ज्योतिष पर से विश्वास नहीं उठाया है।" उन्होने यहाँ के ज्योतिषियों की अनेक बातें सत्य होते देखी हैं। उनका एक निज का कुत्ता खो गया था जिसके लिए उन्होंने ख़ूब ढंढोरा पिटवाया, तलाशी ली, समाचार पत्रो में विज्ञापन दिये, परन्तु कुछ पता न चला। वे निराश होकर बैठ गये। तब उनके एक जापानी नौकर ने एक ज्योतिषी से प्रश्न किया। ज्योतिषी ने एक मंत्र लिख कर दिया और कहा कि यदि इसको दरवाजे पर चिपका दोगे तो अपरैल के महीने में कुत्ता आजायगा। नौकर ने ऐसा ही किया। प्रोफ़ेसर साहिब ने बड़ा आश्चर्य माना कि तीन वर्ष पीछे अपरैल के महीने ही में उनका खोया हुआ कुत्ता आ मौजूद हुआ।

करामात दिखाने वालों की कमी जापान में भी नहीं है। नंगे पैर दहकते हुए कोयलो पर चलना, खौलता हुआ पानी ऊपर डाल लेना, नंगी तलवारों से बनी हुई सीढ़ी पर चढ़ना, आदि बातें वहाँ प्राचीन काल से चली आती हैं और ख़ास टोकियो शहर मे इनका दृश्य देखने मे आता है। कूदन पहाड़ के नीचे "ओनतेके" के छोटे मन्दिर मे अग्नि पर चलने का खेल अपरैल और सितम्बर के महीने में दिखाया जाता है जो इस प्रकार है—

पहिले एक चटाई बिछाई जाती है। इसके ऊपर एक तह बालू की होती है। यह वेदी एक फुट ऊँची, चार-पाँच गज लंबी और गज़ भर चौड़ी होती है। किनारे ठीक चौकोर होने चाहिएँ। वेदी के कोनों पर सपत्र बाँसों के खंभ गाड़ कर कागज़ की बनी हुई बन्दनवारें टाँगी जाती हैं। कोयलों को पंखे से ख़ूब दहकाया जाता है और ऊपर से ठोक ठोक कर धरातल एक सा किया जाता है। इसके पश्चात् मंत्रोच्चारण होने लगते हैं। जिनमे अग्नि शीतल करने के लिए वरुण देवता का आवाहन किया जाता है। फिर पंडित-गण वेदी के चतुर्दिक् परिक्रमा देते हैं। परिक्रमा पूर्ण होने पर हरएक पंडित नमक भरे हुए कूँड़े में से एक मुट्ठी नमक लेकर अग्नि के ऊपर छिड़क देता है। वेदी के दोनों सिरों के पास चटाई के ऊपर नमक बिछा होता है। जिन लोगों को आग पर चलना है वे अपने पैर इस नमक के ऊपर रखते हैं। सब से आगे बड़ा पंडित बड़े शान्ति भाव से अग्नि पर चलता है, तिसके पीछे स्वेतवस्त्रधारी शिष्यगण चलते हैं। एक बार पूर्ण करके फिर लौटते हैं। इनके पीछे बड़े पंडित की आज्ञा से दर्शकगण भी उस अग्नि पर चलना चाहते हैं। स्त्री, पुरुष, बच्चे—परिवार के परिवार वे-खटके वेदी को पार कर जाते हैं।

जापानी सप्त-देव ये हैं १—'फुकूरो कुजो' जिसका लंबा सिर है। दीर्घ-जीवन और ज्ञान इनके हाथ में है। २—'दाइकोकू' धन के

मालिक कुबेर हैं। इनकी मूर्ति के पास चावल भरी बोरी बनी रहती है। ३—'इबीसू' जो मछली लिये हुए हैं; धर्म-कार्य की रक्षा करते हैं। ४—'होतई' जिनका पेट नंगा, पीठ पर बोरी, और हाथ में पंखा है, सन्तोष और अच्छे स्वभाव के दाता हैं। ५—'बिष्मन' युद्ध के देवता हैं, शरीर में कवच धारण किये और हाथ में भाला लिये हुए हैं।६—'बन्टन' प्रेमदेवी है जिसका रूप स्त्रियों के सदृश है। ७—'जुरूजन' देव के साथ एक हरिण और सारस होता है। इन देवताओं में चीन और भारतवर्ष के देवता भी हैं।

एक देवता नौका का रूप धारण करके नये साल के दिन जापान में आया करते हैं। उनका रूप ऐसा है—टोपी किसी पर दिखाई नहीं देती, बरसाती कोट पहिने हुए हैं, रुपयों भरी थैली जो कभी ख़ाली नहीं होती, रत्न, लौंग और तराजू, साथ में होती है। नये वर्ष के दिन इस भाग्यवान् नौका का चित्र गली गली बिकता है। जो कोई इस चित्र को नये वर्ष के दिन तकिये के नीचे रख कर सोता है वह अवश्य कुछ न कुछ लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस चित्र के साथ एक ऐसा कवित्त छपा रहता है जिसको दोनों ओर पढ़ने से एक ही बात निकलती है।

जापानी इस बात पर विश्वास रखते हैं कि मनुष्य इस संसार में जो दुःख पाता है वह उसके उन कर्मों का फल है जो पूर्व काल में किये थे। उदाहरण के लिए उस बच्चे को लीज़िए जो नेत्र-हीन होकर इस संसार में आता है। यह किसी पूर्व-जन्म के कर्म का दंड है। यदि इस जन्म में सावधान होकर चलेगा तो भविष्यत में उत्तम दशा प्राप्त करेगा। यदि अब न चेतेगा तो और अधःपतन होगा। मनुष्य का उतार-चढ़ाव एक चक्र के समान है। इस बात के समझाने के लिए ये लोग एक चक्र बनाते हैं और इस संसार-चक्र से बचने के लिए इस चक्र को घुमाते हैं। दुष्कर्म से घृणा और सुकर्मों में रुचि रखते हैं। केवल शिनगाई और तेंदन-सम्प्रदाय के बौद्ध इस चक्र द्वारा भजन करते हैं। तोकियो में आसाकुसा के

बड़े मन्दिर के पास 'फ्यूदो'-देव का एक छोटा सा मन्दिर है। इसके बाहर तीन चक्र खड़े हैं। इनको "गोशो गुरुमा" कहते हैं।

बौद्ध-मन्दिरों में ऐसा भी देखा गया है कि चर्खे के ऊपर स्तोत्र लिखे रहते हैं, जिन्हें पाठ करनेवाले सुगमता से फेर सकते हैं। जितना शीघ्र पाठ करने की योग्यता हो उतना ही शीघ्र इस चर्खे को चलाते हैं। समय पाकर इन्हें लोग पढ़ते कम हैं। केवल चला देते हैं। चरखे के एक चक्र में एक पाठ समझा जाता है। जितने पाठ करने हों उतने ही बार इसको चक्कर दे देते हैं। बहुत से बौद्ध मन्दिरों में संसार-चक्र के चित्र भी बने रहते हैं।

तीर्थयात्रा के लिए जापानी कभी कभी निकलते हैं। हर एक सूबे में ऐसे ख़ास ख़ास स्थान हैं जहाँ बहुधा यात्री एकत्र होते हैं। यद्दो अर्थात् पूर्वी जापान के लोग नरिता, फ्यूजी पर्वत और ओयामा की यात्रा करते हैं। क्यूटो के आस पास बसने वाले अर्थात् मध्यदेश-निवासी कोयासन नाम के धर्म-मठ को जाते हैं। यह यमातो की यात्रा कहलाती है। मीवा, हेस और तानोमिन के मन्दिर भी इस यात्रा में पड़ते हैं। ईसे में सूर्य्यदेवी के दर्शनों के लिए बहुत लोग इकट्ठे हुआ करते हैं। उत्तर में किंक, वाज़न तथा भीतरी समुद्र में मियाज़ीमा नाम के टापू यात्रा-स्थल हैं। मियाज़ीमा में न कोई मनुष्य जन्म लेने पाता है न मरने। यह स्थान बहुत पवित्र गिना जाता है। यह सुन्दर भी बहुत है। इस स्थान में पालतू हिरन बहुत हैं जो मनुष्य से नहीं डरते। यात्रियों के हाथ पर से दाना खा जाते हैं। बहुत से देवताओं के स्थान कई शहरों में बने होते हैं। क्यूटो में लोमड़ी रूपी इनारी देव का बड़ा मन्दिर है। परन्तु देवता के छोटे छोटे मन्दिर गाँवों में भी पाये जाते हैं। कहीं कहीं तीर्थों का समूह भी है।

इस देशवालों ने तीर्थ-यात्रा के लिए भी आपस मे एका कर रक्खा है। बहुधा गाँवों में धर्म-सभा (कोयाकोजू) बना रक्खी हैं।

सभासद लोग चार पाँच पैसे महीना चन्दा देते हैं और जब यात्रा का समय आ पहुँचता है तो सभा अपने प्रतिनिधि चुन कर तीर्थ-दर्शन को भेजती है और उनका खर्च सभा के कोश में से देती है। जिसने पहिले यात्रा की है वह अपने गाँव के टोली का पथ-दर्शक बनता है; प्रत्येक तीर्थ के नाम और फल का कीर्तन करता है जिसे नूतन यात्री बड़े चाव से सुनते हैं। मार्ग मे ठहरने के लिए जो धर्मशाला हैं उनमें सभा की ओर से जाने वालो के जानने के लिए तख्ती या झंडी पर "अमुक सभा की धर्मशाला" ऐसा लिखा रहता है। यात्री गण कोई ख़ास तरह का वेष धारण करके दर्शनार्थ नहीं जाते। परन्तु फयूजी, अन्तक तथा अन्य ऊंचे पर्वतों के यात्री सफेद कपड़े और चटाई की बड़ी टोपियाँ पहिने होते हैं। पहाड़ पर चढ़ते समय ये लोग घंटे बजाते जाते हैं और बार बार एक मंत्र को गाते हैं जिसका अर्थ है—"हमारी इन्द्रियाँ पवित्र रहे और ऋतु मनभावन हो"।

जापानी लोग धर्म की इन बातों के लिए कोई जाँच पड़ताल नहीं करते। कौन देवता किसका इष्ट है, इस बात की चिन्ता उन्हें नहीं। वह केवल यात्रा के लिए आते हैं। किसी सम्प्रदाय का कोई तीर्थ क्यों न हो वे सब को नमस्कार करते हैं। ग्रामीण-यात्रियों में विशेष करके किसान या कारीगर लोग होते हैं। उन्हे इस बात की चिन्ता नहीं कि बौद्ध और शिन्तो-धर्म में बड़ा अन्तर है। इसी भाँति दोनो के देव-गण भी पृथक् पृथक् हैं। वे तो सब देवताओं को पूजनीय समझते हैं और करामाती गिनते हैं। बनिये लोग यात्रा में मिल कर बड़ा रोज़गार कर ले जाते हैं और मुफ़्त में यात्रा कर जाते हैं।

जिन लोगों ने पुराने दिन देखे हैं उनका कथन है कि अब तीर्थों की महिमा घटती जाती है। यात्रियों की भीड़ पहिले के अनुसार नहीं होती। यह सब पश्चिमीय सभ्यता का फल है। आज कल प्रजा को और भी अनेक प्रकार के चन्दे देने पड़ते हैं इसलिए धर्म-

सभी शिथिल हो गई हैं। तिसपर भी अभी हर साल हज़ारों आदमी फ्यूजी पर्वत पर दर्शनार्थ चढ़ा करते हैं। पिछले वर्ष नये साल के दिन उस पर्वत के यात्रियों की संख्या ११ हज़ार गिनी गई थी। टोकियो के पास इनकेगामी का मन्दिर है। वहाँ सन् १९०० ई० में, एक दिन, स्टेशन पर से, ५१,००० आदमी गुजरे थे। अनेक यात्री किसी धर्म-भाव से नहीं, केवल आमोद-प्रमोद के लिए भी जाते हैं। मित्र गण टोली की टोली बनाकर जाते हैं। अपनी मौज उठाने के सिवाय देवदर्शन करने, नगाड़े पीटने, और पैसा चढ़ाने के बदले में स्वर्गलाभ की आशा कर लेते हैं।

तीर्थों में बुद्धदेव के चरण-चिन्ह, मूर्ति और चित्र ही विशेष पाये जाते हैं। इनका दर्शन करना और दंडवत् प्रणाम करना यात्रा का मुख्य उद्देश है। इनके सिवाय महन्त कोबोदेशी, कुमार शोतूको तेशी, जिनकी बड़ी अद्भुत लीलाएँ बखान की जाती हैं, देवताओं के शस्त्र, वस्त्र, अक्षयकूप भी दर्शन में आते हैं। कोई कोई मूर्तियाँ ऐसी पवित्र हैं कि यदि पापी मनुष्य उनको छूले तो रुधिर निकल आता है।

हमारे इस संसार के समान ही वहाँ चन्द्रलोक है। शरद् ऋतु में जो चन्द्रमा ऐसा सुन्दर जान पड़ता है उसका कारण यह है कि उन दिनों में वहाँ के वृक्षों में नवीन पत्र आते हैं जिनकी चमक इतनी तीव्र है कि चन्द्रमा में एक अद्भुत तेज आ जाता है। चन्द्रलोक में देवगण और अप्सराओं का वास है। शापवश एक अप्सरा ने जापान में जन्म लिया था। बहुत से लोग ऐसा समझते हैं कि चन्द्रमा में एक ख़रगोश है जो धान कूट रहा है। चीनियों का भी ऐसाही ख़याल है। ऐसा विश्वास करनेवाले लोग कहते हैं कि चन्द्रमा की ओर देखने से कठिन रोग नष्ट हो जाते हैं। द्वितीया का चन्द्रमा अभी तक पूज्य समझा जाता है। शरद के दिनों में टोकियो के लोग समुद्र-किनारे अथवा अन्य उत्तम स्थान में जाकर बैठते हैं और चन्द्रोदय देखकर प्रसन्न होते हैं तथा बड़ी रात तक

शराब पीते रहते हैं और कवित्त बनाया करते हैं। पौर्णमासी के दिन पत्र, पुष्प और मिष्टान्न भेट करते हैं। आकाश के तारों के सम्बन्ध में कुछ अधिक बातें नहीं सुनी गईं, केवल एक कथा पुराणो में मिलती है कि एक नक्षत्र आकाश का गड़रिया और दूसरा जुलाही है। ये दोनों आकाश-गङ्गा के इस पार और उस पार रहते हैं और वर्ष में एक दिन भेट होती है। जुलाही स्वर्गाधिपति के वस्त्र बनाने मे इतनी मग्न रहती थी कि उसे अपने प्रेमी से मिलने के दिन शृंगार करने तक का अवकाश नहीं मिलता था। स्वर्गाधिपति ने प्रसन्न हो कर उसके प्रेमी को आकाश-गङ्गा के इसी पार बुलादिया और वे सर्वदा आनन्द से रहने लगे। अब जुलाही अपने आनन्द में ऐसी लुप्त हुई कि भगवान् के लिए वस्त्र बनाना भूल गई। तब उनको फिर शाप मिला कि दोनों नदी के आर पार रहे और वर्ष दिन में एक से अधिक बार न मिला करें। आकाश-गङ्गा के किनारे वाले इन दोनों नक्षत्रों के विषय में कहीं कहीं यह भी प्रसिद्ध है कि ये धार्मिक पुरुष-स्त्री हैं जो इस संसार में १०३ और ९९ वर्ष जीवित रहे और अपने पुण्य प्रताप से नक्षत्र बने। इनके सिवाय किसी को आकाश-गङ्गा मे स्नान करने का अधिकार नहीं है। अन्य लोग केवल एक उसी दिन नहा सकते हैं जब कि ये दोनो बुद्ध महाराज के दर्शनों को जाते हैं।

भयानक भूतों की कथा यहाँ के लड़के भी सुना करते हैं। भूतों के सींग होते हैं। कमर में चीते का कपड़ा पहिनते हैं। उनका शब्द मेघ की गर्जना के सदृश होता है। शरीर मे पैर के पंजे नहीं होते। ऊपर का धड़ आकाश तक लम्बा होता है। गर्दन साँप सी लम्बी होती है। जापानी-देवताओं में उड़ने वाले अजगर का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वह मेघमाला में रहता और तूफानों में विचरता है। समुद्र की लहरो में भी उसके महल हैं। नमज़ू नाम का एक देवता है जिस का आकार ईल-मछली के सदृश है। यह पाताल में रहता है और भूचाल पैदा करता है। जापानी लोगों का विश्वास है

कि जल में ऐसे जीव भी हैं जिन का आधा धड़ मनुष्य के सदृश है। "नू" नाम का एक पक्षी है जिस का सिर बन्दर का सा, धड़ चीते का सा, और पूँछ साँप की सी है।

सात का अंक चाहे जिस अंक के साथ हो, वहाँ मनहूस समझा जाता है। जिन वर-कन्याओं की अवस्था मे ३ वर्ष का अथवा ९ वर्ष का अन्तर हो उनका विवाह ठीक नहीं समझा जाता। भले और बुरे दिन जानने के लिए समाचार-पत्रों मे शुभाशुभ वारों की एक फ़िहरिस्त छपा करती है। किसी किसी दिन तो मरना तक बुरा समझा जाता है। 'तोमी-बीकी-नो-हो' नाम के मुहूर्त में किसी के घर एक मौत हो जाय तो उसी घर में शीघ्र ही दूसरी मौत भी होती है।

दक्षिण की ओर पैर करके सोना जापान में भी उत्तम नहीं समझा जाता। इस तरह से केवल मुर्दे समाधिस्थ किये जाते हैं। पूर्व की ओर सिर करके सोना बहुत अच्छा है। ईशान में राक्षसों का बास समझा जाता है, इस ओर को मकानों मे खिड़की भी नहीं रक्खी जाती। जब एक मकान छोड़ कर दूसरे में उठ कर जाना हो तो वहाँ सीधे नहीं चले जाते। पहिले दिन प्रस्थान करके किसी के घर रह जाते हैं और तब उस घर में पहुँचते हैं।

जहाँ लकड़ी के मकान हैं। वहाँ आग से लोग बड़ा भय करते हैं। नुह काटकर आग मे डालना इस लिए बुरा समझा जाता है कि ऐसा करने से अग्नि-देव क्रोधित हो जाता है और घर को भस्म कर देता है। पहिले लोगो को यह विश्वास था कि महाराज मिकाडो को नज़र भर कर देखने से मनुष्य अन्धा हो जाता है। इसी से जब मिकाडो किसी से बात चीत करते थे तो बीच मे चिक पड़ जाती थी। पहिले पहल जब फ़ोटो का प्रचार हुआ था तब यह वहम बढ़ा था कि फ़ोटो लेने से आदमी की उम्र घट जाती है। अनपढ़ लोग और स्त्रियों में ही ऐसे मिथ्याविश्वास बहुत हैं जो अब शिक्षा के प्रभाव से कम होते जाते हैं।

व्यापार।

जापानियों ने अपनी चेष्टा और अध्यवसाय से, थोड़े ही दिनो मे व्यापार की बड़ी उन्नति की है। वर्तमान महाराज जब गद्दी पर बैठे थे तब बाहिरी तिजारत नाम को भी न थी। अमरीकन कमाडोर पैरी के आते ही देश की दशा बदल गई। सन् १८६८ में, २,६२,४६,५४५ जापानी डालर (जिसको येन कहते हैं) का व्यापार था। १९०४ मे वह बढ़कर ६९,०६,२१,६३५ का हो गया, अर्थात् तीस वर्ष में २३ गुनी वृद्धि हुई, सीधी तरह से जानने के लिए ७० करोड़ का व्यापार हुआ। ३२ करोड़ का माल बाहिर गया, ३८ करोड़ का देश में आया। ज्यों ज्यों माल अधिक आने जाने लगा त्यों त्यों उसको दूर देशों में पहुँचाने और वहाँ से लाने के लिए, जापानियों ने अपने जहाज़ बनाये। जापानियों ने अपना व्यापार बढ़ा कर विदेशियों को लाभ नहीं होने दिया। जापानियों ने कोई दरवाजा ऐसा नहीं छोड़ा जिस में से विदेशी कुछ लाभ उठा सकें। जो कुछ थोड़ा बहुत निकास शेष रह गया है उस को भी अब वे बन्द करने की चेष्टा कर रहे हैं। विदेशियों के हाथ में, आजकल, सब से बड़ा काम दलाली का है। विदेशी सौदागर इन्हीं की मारफ़त सौदा करते हैं। पर जापानियों की चेष्टा है कि सब देशों से सीधा व्यवहार करें। जापानी अपने देश का रुपया विदेशियों को खिलाकर अपने वैरी बढ़ाना नहीं

चाहते। विदेशी सौदागर जापान में बस कर जो जापानियों की निन्दा समाचार-पत्रों में छापते रहते हैं यह अच्छी नहीं है। जब जापानी अपने व्यापार की दलाली आप करने लगेंगे तब इन विदेशी दलालों को जापान में टिकने का कोई आश्रय नहीं रह जायगा। अभी तक बहुत से जापानी अंधों का सा व्यापार करते हैं। अपने देश से माल लाद कर वे यह नहीं जानते कि इस का विदेशों में कहाँ किस तरह फ़ैसला होगा।

फ़ौजी बढ़ती दिखा कर जापानी अपनी प्रशंसा नहीं चाहते। उनकी लालसा यह है कि उनका माल संसार भर में सब से बढ़कर बिके। क्योंकि वर्त्तमान में सब से प्रधान देश वही समझना चाहिए जिसका माल सर्वत्र सब से अधिक बिके। अभी रूस के साथ जो इतना भारी युद्ध हो गया उसका लाभ जापानियों ने अपने व्यापार का चीन में प्रसार ही समझा है। जापान का विश्वास है कि यदि उसे बे रोक टोक, अन्य देशों के समान, व्यापार करने का अधिकार मिलता रहे तो वह सब से बढ़कर लाभ उठावेगा। संसार भर में अपना यश फैलाने के साथ साथ जापानी एशिया-निवासियों के साथ ख़ास ताल्लुक़ पैदा करना चाहते हैं।

जापानियों को इस बात का विश्वास है कि यूरोपवालों की अपेक्षा एशिया में वे बड़ी क़िफ़ायत के साथ माल पहुँचा सकते हैं और स्वयं एशियाई होने के कारण एशिया के बाजार में उनका हक़ सब से पहिले है। माल सस्ता तैयार करने का यह भी एक कारण है कि उनको कोयला, मज़दूरी और किराया बहुत सस्ता मिलता है। जापानी अपने आस पास के देशों में पूर्ण शान्ति चाहते हैं; क्योंकि यदि लोग प्रसन्न होंगे तो अवश्य माल ख़रीदेंगे। जापानियों की यह इच्छा कदापि नहीं है कि अपना राज्य दूर दूर फैलावें। वे यही चाहते हैं कि उनके पड़ोसी राज्य सुखपूर्वक रहें, जिस से व्यापार स्थिर रहे तथा सब में भाई चारा बढ़े। जैसे आज

कल यूरोप की सब सौदागरी हाँगकाँग में अङ्गरेज़ों के द्वारा समस्त चीन मे प्रचार पाती है। इसी भाँति एक दिन, जापान समस्त यूरोप की दलाली एशिया भर के लिए करेगा।

जापानियों का विचार है कि उन के देश के सामाजिक तथा राजनैतिक बन्धनों में ऐसा एक भी न हो जो उनको समस्त पृथ्वी पर व्यापार करने से रोके। हमलोगों को यह परमावश्यक है कि हम समस्त संसार का वृत्तान्त हस्तामलक करें और लोगों की आवश्यकताओं को समझें तथा अपना सच्चा व्यवहार दिखाकर समस्त भूमण्डल पर अपना विश्वास दृढ़ जमावें।

जापानी जब शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में गये और यूरोप मे व्यापार का उत्साह देखा तब से वह सब देखकर ही इन के हृदय मे व्यापार का अनुराग उपजा है। जापान के धनी और राजाओ के लड़के अमरीका में जाकर कलों का काम सीख आये हैं। किसानों ने जाकर कृषी-विद्या-सम्बन्धी रसायन क्रियाएँ सीखी हैं। विद्योपार्जन में किसी प्रकार की रोक नहीं है। न धर्म का निषेध है, न बिरादरी की दहशत है। विद्या प्राप्त करने के लिए जापानी किसी देश को तुच्छ नहीं समझते। वे सब राज्यो के साथ स्नेह रखना चाहते हैं।

जापानी सर्वदा जवान लड़कों को वाणिज्य-शिक्षार्थ बाहिर भेजते हैं। क्योंकि उन में नई उमंग और नया उत्साह होता है। सर्व साधारण के भेजे हुए विद्यार्थियों के सिवाय सैकड़ों विद्यार्थी सर्कारी ख़र्च से कला-कौशल सीखने के लिए भेजे गये हैं और सर्कार ने इस मद मे ख़र्च करना बहुत ही अच्छा समझा है। बड़ी अवस्था वाले लोगों की अपेक्षा लड़कों का विदेश में जाना अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। बड़ी उम्र के लोग यद्यपि सीख बहुत आते हैं परन्तु उन मे लड़को का सा उत्साह नहीं होता। लड़के जो अच्छी बाते अन्य देशो से सीख आते हैं उनको स्वदेश में प्रचार करने के लिए वे बहुत ही यत्नवान् होते हैं।

सन् १८९५ में, पहिले पहिल, एक पार्टी ऐसी तैयार की गई जो अन्य देशों मे जाकर इस बात का भेद ले कि किस जगह किस पदार्थ की अधिक खपत है। पिछले वर्ष "विदेशी वाणिज्य-समाज" के नाम से एक सभा स्थिर हुई है जिस का यह काम है कि जापान के जो जो पदार्थ अन्य देशो मे विक सकते हैं, उन की एक तालिका वनाई जाय और उन के प्रचार की सुगमता की जाय। धोखे की और नक़ली चीज़ें बाहिर न जाने पावे। विदेशी व्यापार के लिए सर्कारी सहायता मांगी जाय। इस व्यापार के लिए अच्छे गुमाश्ते तैयार किये जायँ। माल तैयार करने वालों से मेल बढ़ाया जाय। बाहिर माल भेजने का पूरा प्रबन्ध हो। विदेश के बाज़ारो की ख़बर रक्खी जाय कि कहाँ माल की ज़रूरत और कहाँ इफ़रात है।

सन् १८९५ से लेकर १९०१ तक जितने लोग व्यापार-विद्या की खोज के लिए अन्य देशों को गये उनका आने जाने का ख़र्च राज्य ने अपने ऊपर लिया। चीन यूरोप, उत्तर और दक्षिण अमरीका, दक्षिण समुद्र की रियासतें, साइवेरिया, कोरिया, भारतवर्ष, फ़िल-पाइन आदि आदि देशों मे जापानी व्यापार-विषयक सिद्धान्त प्राप्त करने के लिए फैल गये।

सौदागरी के दफ़्र का काम सीखने और कारख़ानों का प्रबन्ध जानने के लिए जो विद्यार्थी भेजे गये उनकी संख्या पृथक् है। इन में वे लोग होते हैं जो जापान के सौदागरों के यहाँ काम करते हैं या किसी कारख़ाने में नियत हैं। मालिक लोग जब इन कर्म-चारियों मे किसी को परम चतुर और होनहार देखते हैं तो पूर्ण शिक्षा के लिए, उन को अन्य देशों मे भिजवाने की सिफ़ारिश करते हैं। राजकुमार भी मन माने हुनर को सीखने के लिए विदेश को भेजा जा सकता है। विदेश मे जापानियों की रक्षा, उनके देश के राजदूत (जो सब देशों मे है) करते हैं। जिन को सर्कार से वज़ीफ़ा मिलता है, उनकी उन्नति का समाचार समय समय पर राज-दूत

द्वारा जापानी सर्कार को भेजा जाता है। पिछले वर्षों में जापानी विद्यार्थी विदेशों को इस प्रकार गये थे—

१८९६—मेक्सिको, जर्मनी, इंगलैंड, फ़्रांस, और चीन में एक एक। यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका में ५।

१८९७—पिछले साल के विद्यार्थियों के सिवाय अमरीका में २ और गये और १ बम्बई को भेजा गया।

१८९८—पिछले वर्ष के १३ विद्यार्थियों के सिवाय ४ सर्कारी और २ प्राइवेट लड़के और गये। जो इस प्रकार बटे हुए थे कि मेक्सिको, जर्मनी इंगलैंड, भारतवर्ष में एक एक, चीन और फ़्रांस में तीन तीन और यूनाइटेड अमेरिका में ८।

१८९९—इस साल १५ विद्यार्थी पुराने शेष रहे। उनके सिवाय २७ नये भेजे गये। ५ प्राइवेट थे। मेक्सिको, इंगलैंड, बेल्जियम, रूस, साइबेरिया, आस्ट्रेलिया, इंडिया, इन मे एक एक, फ़्रांस में ६, जर्मनी में ५, यूनाइटैड स्टेट अमेरिका में १५ और चीन में १९।

१९००—पिछले वर्ष के ३२ विद्यार्थियों के सिवाय २४ नये, और २ प्राइवेट और बढ़े। यूनाइटैड स्टेट को १६, फ़्रांस को १२, जर्मनी को ६; इंगलैंड, रूस और साइबेरिया को दो दो; बेलजियम और आस्ट्रेलिया को एक एक और चीन को १४।

१९०१—पुरानों में से ३१ रहे, ५९ और बढ़ाये गये। प्राइवेट ७ थे। फ़्रांस और जर्मनी में ग्यारह ग्यारह। बृटिश कनाडा, मिक्सिको, पेरू, स्ट्रेट सैटिलमेंट और जावा को दो दो; बेल्जियम, हाँगकाँग, आस्ट्रेलिया और साइबेरिया को तीन तीन। रूस, स्विट्ज़रलैंड, और फ़िलेपाइन्स को एक एक। यूनाइटेड स्टेट को १४ और चीन को २४।

इस सर्कारी कार्रवाई का ऐसा फल हुआ कि व्यापारियों ने भी प्राइवेट लड़के बाहिर भेजने शुरू कर दिये। एक सौदागर ने इनकी सहायता के लिए तीस हज़ार जापानी रुपया हर साल देने कर दिये।

जापान में व्यापार-विषयक ज्ञान बढ़ाने के लिए ४० अजायब-घर हैं, जिनमें व्यापार के पदार्थों के नमूने सजे रक्खे हैं। कोरिया के फ्यूसन शहर में एक नया अजायब-घर बनाने के लिए वहाँ के चेम्बर आफ़ कमर्स ने ७० हज़ार येन मंज़ूर किये हैं। कृषि-सम्बन्धी म्यूज़ियम भी खोले गये हैं। देश भर के अजायब घरों में सब से बड़ा और नमूने के लायक़ घर टोकियो में है जो सन् १८९७ ई० में बना था। इसमें २३,००० चीज़ों के नमूने रक्खे गये हैं। १२,००० अन्य देशों के पदार्थ और १०,००० जापान के, शेष मिली जुली चीज़ें हैं। विदेशी चीज़ों के साथ साथ उनकी नक़ल जो जापानियों ने की है अर्थात् वैसे ही पदार्थ जापानियों के बनाये हुए भी दिखाये जाते हैं। विदेश से जो कच्चा माल आता है उसके नमूने भी यहाँ होते हैं। इस अजायब-घर से दुनिया भर की उपज और कारीगरी का भेद खुल जाता है। अन्य देशों में भी जापानियों ने अपने देश के नमूने दिखाने के लिए कोठियाँ खोल रक्खी हैं। शासी, हानकू, चनकिंग, बंबई, सिंगापुर, बंकोक में ऐसी कोठियाँ हैं जिनमें जापानी चीज़ों के नमूने सजे रहते हैं। इन नमूनों को दिखाकर ही दलाल सीधा जापान से माल मँगा देते हैं।

व्यापारियों की सभा अर्थात् चेम्बर आफ़ कमर्स लग भग ६० के हैं। पहिले पहिल यह सभा टोकियो में खड़ी हुई थी। परन्तु अब सब बड़े बड़े शहरों में है। इस सभा में चतुर चतुर व्यापारी होते हैं जो व्यापार के लिए सुभीता और नये बाज़ार तलाश करते रहते हैं। व्यापार को सहायता पहुँचाने के लिए सरकार ने एक ख़ास कौंसिल नियत की है जो व्यापार, खेती और मज़दूरी पर नज़र रखती है। इसमें बीस मेम्बर, एक चेअरमैन और एक वाइस-चेअरमैन है। इनमें १५ बढ़िया सौदागर हैं और शेष सर्कारी मेम्बर हैं जो वाणिज्य, कृषि, खज़ाना और विदेशीय महकमों के बड़े बड़े कर्मचारी हैं। सन् १८९७ में मेम्बरों की संख्या ३० करदी गई और जापान का घरेलू व्यापार भी इस कौंसिल के अधीन हो गया।

कौंसिल ने अपने पहिले सिशन में निम्न लिखित बातों पर मन्त
स्थिर किये थे—

(१) यांगसोकियांग को कमिश्नर भेजे जायँ जो वहाँ यह दे
कि जहाज़ और किश्तियों पर किस तरह से माल कहाँ कह
पहुँचता है।

(२) अन्य देशों के साथ हुंडी पुरज़े का व्यवहार बढ़ाया जाय

(३) बाहिरी देशों को जाने वाले माल की बिक्री किस तर
और अधिक हो।

(४) विदेशों में बड़े बड़े गोदाम अपने देश के वकीलों
अधिकार से बनाये जायँ।

(५) विदेशों में बाज़ार की क्या दशा है।

(६) जहाज़ में जाने वाले माल का बीमा।

(७) कारीगरों की रक्षा और उनके काम का प्रबन्ध।

(८) व्यापार पर सोने के सिक्के का क्या असर होता है।

(९) विदेशी व्यापार में सोने के सिक्के से क्या लाभ होगा।

(१०) हानि घटाने और लाभ बढ़ाने का उपाय।

(११) अन्य देशों को अधिक चाय भेजने का सुभीता।

(१२) रेशम का व्यापार बढ़ाने के उपाय। इत्यादि

इस के सिवाय हर एक पेशे की पंचायतें अलग अलग है
जिनका काम यह है कि वे अपने पेशे का ख़राब माल बाहिर
नहीं जाने देते। इनको सर्कार से भी सहायता मिलती है।
चाय के सौदागरों की बड़ी पंचायत को साढ़े तीन हजार यन
सहायता की भाँति राज्य से मिले थे। इस धन को उन्होंने इस
तरह ख़र्च किया कि अमरीका के सेंटलूइस स्थान में एक अजायब
घर बनाया जिसमें सब प्रकार की चाय का नमूना रहे। कितने ही
नये शहरों में चाय परीक्षार्थ बेची गई। पेरिस में एक कोठी चाय
के नमूनों की खोली गई। प्रदर्शनी में बनी बनाई चाय पिलाने की
दुकान खोली गई।

जापान-गवर्नमेंट पहिले टेकनीकल स्कूल और वर्क-शाप में नये नये पदार्थ तैयार कराती है और जब परीक्षा से यह सिद्ध हो जाता है कि विदेशी माल के मुक़ाबिले में जापान की चीजें ख़ूब बिकेंगी, तब समाचार-पत्रों में उन पदार्थों के बनाने की युक्ति छपा दी जाती है जिससे कि देश के कारीगर नई चीज़ों को अपने हाथों बनाकर लाभ उठावें। इससे देश को बड़ा लाभ पहुंचा है और पहुँचेगा।

जापानी इस बात को ख़ूब जानते हैं कि जैसे बरसों की सिखाई और अभ्यास के बिना फ़ौज तैयार नहीं हो सकती, उसी भाँति व्यापार-शिक्षा पाये बिना अच्छा व्यापारी नहीं बन सकता। जापान में व्यापारिक शिक्षा का ३० वर्ष पहिले कोई नाम भी नहीं जानता था। सिवाय बही खाता जानने के उनको और कुछ ज्ञान न था। इस समय जो व्यापार का ढंग है उन्हें तब इसका स्वप्न भी नहीं था। गाहक के साथ भलमनसाहत से पेश आना, दाम ठहराने में घंटों ऊंचनीच करना, सस्ता ख़रीदना और ख़ूब महँगा बेचना; यही व्यापारी का सबसे बड़ा काम समझा जाता था।

सब से पहिला व्यापारिक स्कूल टोकियो में विसकोटमोरी ने खोला था जो अब कालेज है। पहिले जापानी लोग व्यापार को अच्छा काम नहीं समझते थे, इसीलिए इसकी शिक्षा की ओर किसी का ध्यान नहीं था। परन्तु जब स्कूल के पढ़े हुए लड़के व्यापार में आश्चर्य-जनक उन्नति करने लगे तब लोगों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ। सब कोठीवाले अब स्कूल के पढ़े हुए असिस्टेंट ही नौकर रखते हैं। सन् १९०५ में उपर्युक्त कालेज में १०८९ लड़के व्यापारी-शिक्षा पाते थे। इसके सिवाय छोटे छोटे पचास स्कूल अन्य शहरों में और मौजूद हैं। कोबे में एक बड़ा मदरसा और खुला है। स्कूल से पढ़े हुए लड़कों की तरक्क़ी देखकर अब अनेक युवक इस विषय को सीखने ही में अनुराग दिखाते हैं। अब यह काम सर्वोत्तम समझा जाता है। इन स्कूलों का प्रबन्ध

शिक्षा-विभाग के प्रधान मंत्री के अधीन है। विद्यार्थियों को पास होने पर 'व्यापाराचार्य' की उपाधि दी जाती है। टोकियो के कालेज में जापानी शिक्षकों के सिवाय कई यूरोपियन प्रोफ़ेसर भी हैं जो व्यापार और यूरोपियन-भाषा की शिक्षा देते हैं। इनके सिवा टोकियो-यूनीवर्सिटी के देशी और विदेशी प्रोफ़ेसर, जहाज़ कालेज के उस्ताद, हाइकोर्ट और अपील की बड़ी अदालत के जज लोग भी विविध विषयों पर व्याख्यान देने के लिए नियत किये जाते हैं। इसी कालेज में से होनहार लड़के ख़ास ख़ास बातें सीखने के लिए यूरोप को भेजे जाते हैं। कालेज में ६ साल पढ़ाई होती है। पहिले साल साहित्य, व्यापार सम्बन्धी रसायन, आचरण और व्यायाम सिखाया जाता है। विद्यार्थी शरीर से हृष्ट पुष्ट और सदाचरण वाले भरती किये जाते हैं। प्राइमरी शिक्षा के पीछे तीन वर्ष असल पढ़ाई होती है जिसमें अन्य बातों के सिवाय संसार भर का व्यापारिक भूगोल, इतिहास, आवश्यकता और उपज, न्यायनीति और धन-सम्बन्धी दशा, समस्त देशों का अन्य देशों से सम्बन्ध, उनकी भाषा और रीति भाँति सीखनी होती है। इस के पीछे दो वर्ष अभ्यास बढ़ाने के लिए उनको व्यापार का चलता हुआ काम दिखलाया जाता है।

जापान राज्य की ओर से जो प्रतिनिधि (वकील) सब देशों में रहते हैं उनको भी इस कालेज में कुछ दिन शिक्षा पानी होती है। इन वकीलों को यह बड़ी ज़रूरी बात है कि जहाँ उन्हें मौक़ा मिले अपने देश की तिजारत का प्रसार करें। विदेशों में जो जापानी माल के नमूने की कोठियाँ हैं उन पर जापानी वकीलों का ही अधिकार है। व्यापारिक विषयो में निपुण होने से वकील लोग जहाँ रहते हैं वहाँ के रोज़गार और तिजारत का सब हाल संग्रह करके अपने देश को भेजते रहते हैं।

जापानियों ने एशिया की भूमि पर अपना वीर रूप धारण करके समस्त संसार के चकित कर दिया है। अब उनकी इच्छा है कि व्यापारी बनकर भी संसार में अपनी दुहाई मचादें।

लोगों का विचार था कि जब जापान रूस को जीत लेगा तो मंचूरिया और कोरिया में किसी को न घुसने देगा। यदि जापान भी रूस की नक़ल करता तो अवश्य रूसी नीति का ही अवलबन करता, और किसी को पूर्वी देशों में फटकने तक न देता। परन्तु जापान किसी से डरता नहीं है। उसको पूर्ण विश्वास है कि एशिया में जापान का मुक़ाबिला यूरोपियन सौदागर कदापि नहीं कर सकते। जापान एशिया वालों से ख़ूब निकट है। उनकी आवश्यकताओ को वह अच्छी तरह समझ सकता है। जापान की यह भारी चेष्टा है कि चीन पर किसी यूरोपियन जाति का अधिकार न हो, क्योंकि चीन ही जापान का एक बड़ा बाज़ार है।

देश देशान्तर में माल ले जाने के लिए जहाज़ों की बड़ी ज़रूरत होती है। इस बात का ध्यान न रखने से अमरीका वालों ने बड़ा नुक़सान उठाया था। माल तो उन्होने बहुत सा तैयार कर लिया था परन्तु अन्य देशों में पहुँचाने के लिए उनको जहाज़ किराये पर लेने होते थे। मुल्क का बहुत सा रुपया विदेशियों के हाथ में किराये के रूप मे चला जाता था। इस दोष के दूर करने में अमरीका को बड़ी कठिनता पड़ी।

जापानियों ने अपनी दूर-दर्शिता से काम लिया और पहिले ही जहाज़ बनाना शुरू कर दिया। पिछली शताब्दी के अन्त में जो लोग जापान गये थे, उन्होने वहाँ जहाज़ो की बढ़ती देख कर बड़ा आश्चर्य माना। उस समय वह सब जापानियों की फ़ज़ूल-ख़रची जान पड़ती थी, परन्तु समय ने दिखा दिया कि जापानियो ने किस तरह भविष्यत् का प्रबन्ध पहिले ही करना प्रारम्भ कर दिया था। अब वहाँ दिन दिन अन्य देशो के साथ व्यापार बढ़ता जाता है और किराये का सब रुपया अपने देश मे ही रहता है।

जापानी जब किसी काम को करना विचार लेते हैं तो उसे कर के ही छोड़ते हैं, और सब प्रकार की विघ्नबाधाओं को वीर बन कर सहते हैं । जापानियो ने अन्य देशो में जाकर जहाज़ नहीं ख़रीदे, वरन अपने हाथों, अपने ही देश में, इस काम को शुरू किया । वर्तमान में जहाज़ों के कारख़ाने इस योग्यता को पहुँच गये हैं कि सब प्रकार के जहाज़ स्वदेश मे ही तैयार हो सकते हैं । तिजारती जहाज़ों के सिवाय लड़ाई के फ़र्स्टक्लास क्रूज़र तैयार हो सकते हैं । ५० वर्ष पहिले, जापानी, केवल नाव बनाना जानते थे । जापानियों ने पृथक् पृथक् कम्पनी बनाकर जहाज़ो का बनवाना शुरू किया था और राज्य से भी इन्हें सब प्रकार की सहायती दी गई थी । जब तक अपने देश के जहाज़ बनकर तैयार नहीं हुए थे, जापानी विदेशी जहाज़ों से काम निकालते थे । उनको भी सर्कारी सहायता मिलती थी । परन्तु सन् १८९६ से पीछे केवल स्वदेशी जहाजो को सहायता मिलना स्थिर हुआ ।

सहायता पाने के हक़दार वे ही जहाज़ हो सकते थे जो केवल जापानियो के अधीन थे तथा जापानी द्रव्य से बनाये जाते थे । कम से कम हज़ार टन वज़न हो और फ़ी घंटा १० 'नाट' चाल हो । ज्यों ज्यों जहाज़ पुराने होते जाते थे त्यों त्यों सहायता हटा दी जाती थी । सर्वदा नये और भारी जहाज़ो को उत्साह दिया जाता था । जिस जहाज़ को बने १५ वर्ष हो गये हों, जो जहाज़ सर्कारी काम करते हो उनको सहायता नहीं दी जाती ।

पाँच वर्ष पीछे सर्कारी सहायता कम कर दी जाती है । इस सहायता के बदले में सर्कार को अधिकार होता है कि वह चाहे जिस जहाज़ को किराये पर ले सके । किराये में कमी हो तो सर्कार पर अदालत में नालिश हो सकती है । सर्कार की आज्ञा से सब तरह की डाक मुफ़्त ले जानी पड़ती है ।

सहायता-प्राप्त जहाज़ो में कोई विदेशी नौकर नहीं रक्खा जाता जब तक कि सर्कार से आज्ञा न ले ली जाय । इन जहाज़ों को

काम सिखाने के लिए अपने जहाज़ में विद्यार्थी रखने पड़ते हैं। सहायता प्राप्त जहाज़ के मालिक सर्कारी आज्ञा के बिना अपना जहाज़ किसी विदेशी को नहीं बेच सकते, न गिरवी रख सकते, और न बदल सकते हैं। सर्कारी सहायता लेने के लिए जो जहाज बनाये जायँ उनका नक़शा सर्कार से मंज़ूर कराना होता है। जहाज मे माल स्वदेशी लगाया जाता है। व्यापार के लिहाज से जापानी जहाजों का ९ वाँ नम्बर है और कम्पनियों के हिसाब से 'निप्पन यूशेन कैशा' कम्पनी का छठा नम्बर है।

जब से जापानियों के जहाज़ चल निकले हैं माल का महसूल बहुत घट गया है। जापान और बम्बई के बीच का किराया पहिले १७) टन था, वह अब १०॥) रह गया है। सर्कारी सहायता ने जापानी जहाज़ों की बढ़वारी में बड़ा उपकार किया है। यदि सर्कार सहायता न देती तो सन्देह था कि ऐसे बड़े बड़े जहाज़ जापान मे नज़र आते। जहाज़ी विद्या सिखाने के लिए पृथक् स्कूल हैं जहाँ अफ़सर तैयार किये जाते हैं और मल्लाह तथा ख़लासी शिक्षा पाते हैं।

जहाज़ो के बढ़ने के साथ ही साथ जापान का सैनिक बल भी बढ़ता जाता है। देश धनी हो गया है। व्यापार बढ़ने के साथ साथ देश की धन-सम्बन्धी दशा और भी बढ़ेगी। जापानी अपने देश की रक्षा करने मे पूर्ण स्वतंत्र हैं, और व्यापार में सब की बराबरी करने को समर्थ हैं। जापानी यदि जहाज़ी ताक़त न बढ़ाते तो चीन और एशिया का सब व्यापार यूरोपियन सौदागरों के हाथ में चला जाता।

एक वह समय था कि जापानी अपने देश मे किसी विदेशी को आने देना नहीं चाहते थे। सन् १६२४ ई० में इन्हीं जापानियों ने अपने देश से सब विदेशियों को मार भगाया था। विदेशी विद्या, विदेशी व्यापार और विदेश-यात्रा सब कुछ बन्द कर दी थी।

जापानी सौदागरों को कहीं जाना आना नहीं मिलता था। उन के मन मुरझा गये थे। उनके जहाज़ तोड़ डाले गये थे। केवल नागासाकी होकर विदेश की कुछ हवा आती थी। देश रजवाड़ों में बटे रहने से देश के भीतर भी व्यापार की स्वतंत्रता नहीं थी। महाराज तो व्यापारियों से नाराज़ थे ही, राजा लोग भी अपने राज्य में किसी पड़ौसी राज्य के दूकानदारों को नहीं आने देते थे। दुकानदारों की गिनती किसानों से भी नीचे थी। उन दिनों में ओसाका और यद्दो दो बड़ी मण्डियाँ थीं जहाँ जमीन के लगान में आया हुआ चावल बिकता था। यह केवल ४० वर्ष की बात है कि जापान ने फिर अन्य देशों के लिए अपना दरवाज़ा खोला है, और तभी से व्यापार चमकने लगा है। पहिले इस देश में सर्वसाधारण प्रजा खेती पर जीती थी। सब तरह के महसूलों के बदले में सर्कार को अन्न ही दिया जाता था। किसान लोग व्यापारियों से ऊपर समझे जाते थे। परन्तु जापानियों ने समझ लिया था कि निरे खेती के सहारे रहने से उनका देश सर्वदा वर्षा के अधीन सुखी दुखी रहेगा और अन्य देशों के समान शक्तिशाली कदापि न बन सकेगा। उन्हों ने सोचा कि देश को आबादी दिन पर दिन बढ़ती जाती है, इनके पेट की भी फ़िक्र ज़रूरी है। लोग अनेक भाँति की शौक़ीनी करने लगे हैं, इन का शौक़ पूरा करना आवश्यक है। केवल खेती के आसरे रहने से ये बातें पूरी न होंगी, अस्तु, यूरोपियन देशों की भाँति कल कारख़ाने खोलने का विचार जापानियों ने दृढ़ कर लिया। नये प्रकार की कलों को काम में लाने से खेती में भी अधिक लाभ होगा, यह विश्वास था। उन की यह इच्छा नहीं हुई कि इंगलैंड की तरह, खेती बिलकुल छोड़ ही दी जाय जिसके कारण उस देश को अन्न के लिए दूसरे देशों का आश्रय लेना पड़ता है। जापानी यह कदापि नहीं चाहते कि उन को किसी बात के लिए किसी अन्य देश का मुँह ताकना पड़े। उन्हों ने खेती के साथ ही साथ कल-कारख़ानों का स्थापन करना भी शुरू कर दिया। जापान में मनुष्य-संख्या सन्

१८७२ से लेकर १९०५ ई०-तक मील पीछे १०० आदमी के हिसाब से बढ़ी है। इस बढ़ती हुई संख्या की उदर-पूर्ति के लिए कल-कारख़ानों के सिवाय और कुछ उपाय नहीं हो सकता।

जापानी यह भी जान गये थे कल-कारखानों के कारण देश की प्रधानता एशिया ही में नहीं, यूरोप मे भी हो जायगी। फ़ौजी दबाव के साथ साथ व्यापार का दबाव भी ख़ूब चलता है। लड़ाई में जीतने की अपेक्षा बाज़ार में फ़तह पाना अधिक नामवरी की बात है। जापानियों की इच्छा दूसरा इंगलेंड बनने की थी, लड़ाई भिड़ाई करके नाम पाने की नही, वरन कल कारख़ानों में इंगलेंड के समान होने की। जापान युद्ध की अपेक्षा शान्ति से अधिक लाभ सोचता है। सर्वसाधारण जापानियों ने कल-कारख़ानो की कमाई को देश-सेवा करने के लिए समझ रक्खा है, और व्यापार में ऐसा मन लगाया है कि एशिया में अद्वितीय हो उठा है। उन को जितना अपने सिपाही होने का अभिमान है उतनाही कारीगर कहलाने का। उनकी दोनों बातें दिन रात उन्नति करती जाती हैं। इस संसार में जापानियों ने पहिली नामवरी चीन जीतने में की। दूसरा यश जब कमाया जब कि चीनियों के विरुद्ध समस्त यूरोपियन शक्तियाँ एकत्र हुई थीं। और सब से भारी कीर्त्ति रूस के दाँत खट्टे करके प्राप्त की। जापान इतनी विजय प्राप्त कर के भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। उस को इच्छा कल-कारख़ाने बढ़ाने, व्यापार फैलाने, और विद्या प्राप्त करके सर्व-शिरोमणि बनने को है। आजकल अमेरिका इंगलेंड, जर्मनी, और फ़्राँस में जापानियों का आदर उन की शूर-वीरता के कारण होता है, परन्तु जापानी सब गुणों में उन के समान बनकर प्रतिष्ठा पाने में प्रसन्न होगे। जापानी कल-कारख़ानों को जैसा आवश्यक समझते हैं वह इसी से सिद्ध हो जायगा कि जापान ने इस काम के लिए यूरोप से बहुत सा धन उधार लेने में कुछ भी शर्म नहीं की। चीन से जुर्माने में जितना रुपया आया था सब कल-कारख़ानो की सहायता में लगाया गया। जापानी इस

इस काम को अपने हाथ में लिया। रेल खोलने तथा अन्य प्रकार के सब नये कार बार खोलने में सरकार सहायक बनी। जापान की बनी चीज़ों को जापान मे तथा अन्य देशो में प्रदर्शनी करने का सर्कार ने प्रबन्ध किया। अमरीका के सेंट लुइस की प्रदर्शनी जिन दिनों मे हुई थी उस समय रूस जापान का घनघोर युद्ध चल रहा था। इस प्रदर्शनी मे रूस का कुछ माल न आसका। परन्तु जापान ने यथावत् अपने दर्शनीय पदार्थ भेजे। व्यापार की रक्षा के लिए सरकार उचित क़ानून बनाती है। नई बात निकालने वालो को उत्साह देती है। पेटेंट और ट्रेड मार्क की रक्षा करती है। चतुर कारीगरों को शिक्षा प्रदान के लिए नियत करती है जो देश भर में घूम घूम कर व्याख्यान देते हैं और नये नये तजरिबे लोगो को समझाते हैं। उपयोगी पदार्थों का बनाना जानने के लिए, लेबोरेटरी (रासायनिक कर्मशाला) स्थापित की गई। शराब बनाने का तजरिबा करने के लिए भट्टी बनाई गई। अन्य देशों में पदार्थों के बनाने की क्रिया जानने के लिए विद्यार्थी भेजे गये। रँगने और बुनने की कलें सर्कार लोगों को भाड़े पर देती थी। इत्यादि इत्यादि जापान-सर्कार की सहायता देश की कारीगरी बढ़ाने में भारी सहायक हुई। "देश की उन्नति का कारण शिल्पप्रचार है," यह जापानियों को अच्छी तरह निश्चय हो गया है और वे लोग तन मन धन से इसमें लग गये हैं और चाहते हैं कि जापान को बनी चीज़ों से बढ़कर सुन्दर संसार में कहीं की चीज़ न हो। सब विलायती ढंग की कलों को जापानियों ने अपनी आदत के अनुसार बदल लिया है। जापानी इंजीनियर अपनी बुद्धि के अनुसार विलायती ढंग की कलों में बहुत अच्छा परिवर्तन कर लेते हैं। जापानियों को नक़ल करने का दोष लगाया जाता है परन्तु यह यथार्थ में जापान की बुद्धि-मत्ता है कि अनेक वर्षों के फल-स्वरूप नूतन यंत्रों से उन्होंने

एक साथ फ़ायदा उठा लिया । उन्होंने अब अनेक नये नये यंत्र निकाले हैं और विलायती कलों मे अनेक सुधार किये हैं। अन्य देश के लोगो ने विदेशी माल पर बहुत सा महसूल लगा कर अपनी चीज़ों के प्रचार में बड़ी सहायता पाई है । परन्तु अन्य देशों के साथ जापानियों की शर्तें इस प्रकार की हैं कि वह नियत से अधिक महसूल नहीं बढ़ा सकता तिसपर भी सर्वदा उनके मुक़ाबिले मे अपना व्यापार करता है ।

विदेशी सस्ती चीज़ों के मुक़ाबिले में स्वदेशी महँगी चीज़ें ख़रीद कर सर्कार ने अपने देश की कारीगरी में बहुत तरक़्क़ी दी है-जैसा कि बैरन कन्तारो ने कहा था—

"यह बात बिलकुल ठीक है कि फ़ौज के ख़र्च से देश को कुछ लाभ नहीं होता । यूरोप और अमरीका वालों को जापान की अपेक्षा यह लाभ है कि फ़ौज के ख़र्च का रुपया देश का देश ही मे रहता है । जहाज़ी और फ़ौजी इन्तज़ाम में रुपया ज़रूर ख़र्च होता है और ख़र्च का रुपया दूसरे लोगो के हाथ में पड़ता है । जापान का वह रुपया फ़ौजी चीजें ख़रीदने के लिए बहुत सा अन्य देशों में चला जाता है। इस रुपये को यदि अपने देश के कारीगरों को दिया जाय तो बड़ा लाभ हो । सर्कार को जहाँ तक संभव हो अपने देश की चीज़ें ही वर्तनी चाहिए। यह बात कही जा सकती है कि स्वदेशी चीज़ महँगी होने के कारण प्रजा को फ़ौज का ख़र्च और भी अधिक देना पड़ेगा। परन्तु साथ ही यह भी होगा कि देश के कारीगर भी विदेशियों के समान उत्तम माल बनाने लगेंगे । दूर दूर देशों से माल मँगाने में बड़ी बड़ी जोखम सहनी पड़ती है। गोदाम-ख़र्च और महसूल देना पड़ता है और अन्त को वही भाव पड़ जाता है जो स्वदेशी चीज़ों का होता है। कई वर्ष हुए ओसाका के एक कारख़ाने ने सफ़ेद फ़लालैन तैयार की थी जो हर तरह अंगरेज़ी माल के बराबर थी। परन्तु

दामों में ज़रा महँगी थी। सर्कार ने उसी माल को लेना मंजूर कर लिया, शर्त यह रही कि माल और भी बढ़िया बनाया जाय और दाम घटा दिया जाय। अब वही कारख़ाना अंगरेज़ी से कहीं बढ़कर सुन्दर फ़लालेन तैयार करता है और दाम भी बहुत कम हो गये हैं। यदि उस समय उसको सर्कारी सहायता न मिलती तो कदापि वह कारख़ाना इस योग्य नहीं होता। इसके सिवाय सब से भारी बात यह है कि जब तक हम लोग अपनी फ़ौज की ज़रूरतों को अपने देश मे पूरा नहीं कर सकते तब तक स्वतंत्र नहीं रह सकते।"

"आसाही" नामक समाचार-पत्र ने इस बात की खोज लगाई थी कि रूस के साथ लड़ाई होने मे देश के कारख़ानों पर क्या असर हुआ।" उसने लिखा था—"उन दिनों सरकारी कारख़ाने लगातार काम मे लगे रहे। बन्दूक़, बारूद और वर्दी का सामान बनाते रहे। इनके सिवाय देशी कारख़ानों ने भी अपने काम में अच्छी तरह तरक्की की। केवल नाच तमाशे, थियेटर और चाय घरों की दशा अच्छी नहीं रही। बीमा-कंपनी, कोयले की खान और छापेख़ानों का काम भी ढीला रहा; परन्तु काग़ज़, शराब, जहाज़, बिजली की रोशनी, गैस, डेरे, जूता, बूट और कपड़े के कारख़ानों ने ख़ूब काम किया। कपड़ा, जूता और बूट बनाने वालों ने इस लड़ाई से अच्छा फ़ायदा उठाया।"

सर्कारी मदद से लोहे के कारख़ानों ने अत्यन्त उन्नति की है। लड़ाई के आरम्भ में बहुत छोटा कारख़ाना था। जब यह मालूम हो गया कि लड़ाई का सामान विदेश से मिलना कठिन होगा तो यह निश्चय किया गया कि सब माल इसी कारख़ाने में तैयार हो। तत्काल कलें बढ़ाई गईं और काम होने लगा। इस जगह जो इस्पात तैयार होता था, सब लड़ाई की चीज़ें बनाने के काम आने लगा। जहाज़ और गोले तैयार होने लगे।

जब लोहे की माँग बढ़ी तो खानों में भी काम बढ़ गया। कोयला भी बहुत सा खुदने लगा। अब फ़ौजी सामान सब देश का देश ही मे मिल जाता है जो लड़ाई का नतीजा है। यदि लड़ाई न होती तो शायद ये सब चीज़ें देश मे अभी नहीं बन सकती।

सन् १९०१ मे देश से बाहिर जाने वाली और आने वाली चीज़ो का मूल्य बराबर था। भविष्यत् मे अधिक माल बाहिर जाने की आशा की जाती है। यह सब बातें प्रजा के देशहित तथा महाराज के प्रजाहित का कारण है।

विदेशो को जाने वाले माल की बढ़ती करने के लिए सरकार ने ये नियम बनाये हैं—

१—बहुत से कारख़ानों पर से सर्कारी टैक्स और चुंगी हटा ली जायगी। यदि आवश्यक होगा तो सर्कार से द्रव्य-सम्बन्धी सहायता भी दी जायगी।

२—सर्कारी ज़रूरत की चीज़ें देश की बनी हुई ख़रीदी जायँगी।

३—देशी माल ख़रीदने के लिए "सरकार से सहायता-प्राप्त कंपनी" खोली जायँगी।

४—सरकारी तथा सरकारी मदद से चलने वाली रेलें, और जहाज़ी कम्पनियाँ कम किराये पर माल ढोवेंगी।

५—विदेश मे भेजने के लिए जो चीज़ें बनाई जाती हैं उनकी सामग्री यदि अन्य देशों से आती तो उस पर लगा हुआ महसूल तैयार माल बाहिर भेजते समय लौटा दिया जायगा।

६—विदेशी माल की बिक्री पर टैक्स रहेगा। देशी माल के प्रचार में सर्कार सहायक बनेगी।

७—कारीगरों का ज्ञान बढ़ाने के लिए अजायब-घर बनाये जायँगे, जहाँ नई नई चीज़ो के नमूने मौजूद रहेंगे।

८—स्वदेशी पदार्थों के प्रचार में सहायता देने के लिए आवश्यकतानुसार, क़ानून बदला जायगा ।

विश्वास किया जाता है कि बैरन कनेको की आशा शीघ्र ही पूर्ण होगी । जैसा कि उसने चाहा है—

"मैं विश्वास करता हूँ कि देश का धन और माल बढ़ाने में सर्व साधारण पूरी चेष्टा करेंगे । अपनी शिल्पविद्या बढ़ाना ही देश का सच्चा उपकार करना है । हमारे पूर्वज हमारे लिए उत्तम उत्तम नियमावली बना गये हैं । सैनिकों ने अपने भुजाबल से देशों में नाम कर दिया है । अब हमको अपने देश को धनाढ्य बनाना ही शेष है ।"

आजकल देश में जैसा उत्साह फैल रहा है उससे यह नहीं कहा जा सकता कि जापानी अपनी कारीगरी दिखाने में किसी प्रकार यूरोपियन जातियों से पीछे रह जायँगे । ऐसा कोई शहर नहीं होगा जिसमें आकाश तक उठी हुई धूएँ के बादल बनाती हुई किसी कारख़ाने की चिमनी नज़र न आवे । अकेले ओसाका के इलाक़े में ५००० चिमनियाँ मौजूद हैं । कोई महीना नहीं जाता जिसमें सीमेंट, ग़लीचे, साबुन, काँच, छाते, टोपियाँ, दियासलाइयाँ, घड़ियाँ, बाइसिकलें इत्यादि पदार्थों के बनाने का कोई न कोई कारख़ाना न खुलता हो । इस्पात तैयार करने, अन्य धातु शुद्ध करके निकालने, विद्युत्-शक्ति बढ़ाने, और कल पुर्ज़े तैयार करने के कार्यालय इनसे पृथक् हैं । रेशम का काम जो पहिले कहीं कहीं होता था, अब सर्वत्र फैलता जाता है । जहाँ केवल पगडंडियाँ थीं वहाँ अब पक्की सड़कें बन गई हैं । प्रातःकाल होते ही पुतली घरों के भोंपू लोगों को सोते से जगाते हैं । सवेरे के पाँच बजे मज़दूर, लड़के, लड़कियों के झुंड के झुंड अपने अपने कारख़ाने को जाते नज़र आते हैं ।

जहाज़ों के बनाने का काम जापान में बहुत दिन से चला आता है। देश के चारों ओर समुद्र है । एक टापू से दूसरे टापू को जाने के लिए उनको सर्वदा जहाज़ की ज़रूरत रही है। समुद्र में फिरने का काम जापानियों को बड़ा प्रिय है । प्राचीन काल में जहाज़ों के द्वारा ही फ़ौज ले जाकर कोरिया को जीता था। इनके जहाज़ चीन, फ़ारमूसा, फ़िलेपाइन, कम्बोदिया, और स्याम तक जाते थे । एक प्राचीन कथा प्रचलित है कि तनजीकूहचीबी नामक व्यक्ति ने स्याम देश की राजकुमारी के साथ विवाह करके उस देश का राज्य किया था। सत्तरहवीं शताब्दी मे, विल एडम्स की सहायता से, जापान ने जो जहाज़ बनाये थे उनमे का एक जहाज़ मनीला और मेक्सिको जाने मे समर्थ हुआ था। परन्तु जब ईसाइयों ने ईसाई-धर्म फैलाकर जापान हड़प करने का जाल रचा तब सब जहाज़ी काम एक दम बन्द कर देना पड़ा। केवल जंक बनाने का काम शेष रहा जो सिवाय किनारे के दूर नहीं जा सकता था, जापान छोड़कर अन्य देशों में जाने वालों को प्राणदंड दिया जाता था, पहिले बने हुए सब जहाज़ तुड़वा दिये गये थे। सब काम जंक से लिया जाता था। जंक एक प्रकार की बड़ी नाव को कहते हैं जिसमें एक पाल होता है और जंक उसी ओर को ठीक चलता है जिधर को हवा जा रही हो । दो सौ वर्ष तक जापान मे केवल जंक ही जंक रह गये थे।

जब फिर विदेशियों को आने जाने की आज्ञा हुई तब इन्हें अपने लिए भी जहाज़ बनाने पड़े । जंक बनाना रोक दिया गया। सन् १८७० में एक लखपति साहूकार "इवाकी-यतारू" ने अपने अग्निबोट बनवाये, और यूरोपियन प्रबन्ध से "मित्सुबिशी मेल स्टीम शिप कंपनी" खड़ी की। इसके द्वारा जापान का बड़ा व्यापार होता था । सतसूमा-उपद्रव के शान्ति करने के लिए इस कम्पनी ने फ़ौजें भी लादकर पहुँचाई । दर्बार में कम्पनी का बड़ा इहसान माना गया। इस कम्पनी की देखा देखी, क्यूदो-उन्यूकैशा

नाम की एक दूसरी कम्पनी खड़ी हुई । सन् १८८५ में दोनों कम्पनी मिलकर निप्पन-यूसेन कैशा अर्थात् जापान-मेल-स्टीमर कम्पनी नाम रखकर एक साथ काम करने लगी। इस कंपनी के अब ८० जहाज़ हैं जो स्वदेश से यूरोप, आस्ट्रेलिया, भारत वर्ष, अमरीका, चीन, साइबेरिया और फिलेपाइन तक जाते आते हैं। ओसाका शोसेन कैशा एक दूसरी कंपनी है जिसमे ७५ जहाज़ हैं। सान फ्रांसिस्को और हांगकांग मे काम करने वाली कंपनी का नाम 'तोयो किसेन कैशा है । अन्य छोटी छोटी कम्पनियाँ तो बीसों हैं।

ब्रान्ज़ अर्थात् मिश्रित धातु की चीज़े बनाने की रीति चीन से सीखी गई थी । इस काम में पिछले हजार वर्षों मे जापानियो ने बड़ी उन्नति की है। दर्पण, घंटे और मूर्तियाँ इसी मिश्रित धातु की बनती हैं। पूजा के बहुत से पदार्थ भी इसके ही बनाये जाते हैं। १३ वीं शताब्दी की बनी हुई महाराज बुद्ध की मूर्ति जो कामाकुरा में है, दर्शकों को अवश्य देखने लायक़ है। यह मूर्ति संसार की आश्चर्य-मयी चीज़ो मे गिनने योग्य है। इसे जितनी बार देखो उतनी ही बार, हृदय में नया भाव उत्पन्न होता है। इस प्रशान्त ज्ञानमूर्ति को देखकर बौद्धधर्म्म का चित्त पर बड़ा असर पड़ता है। कवच (ज़िरह बख़्तर) बनाने की रीति भी जापान में पुरानी है। तलवार का पहिनना बड़ी प्रतिष्ठा थी। इसके बनाने में भी बड़ी, बड़ी कारीगरी की गई हैं । मूंठ और मियान देखने लायक़ चीज़ें हैं। धाती खिलौने, बाजे, गुलदस्ते और छोटी छोटी चीजें बड़ी तारीफ़ की बनाई है । आजकल चाँदी के ऊपर अच्छी नक़ाशी होती है । चीनी के बर्तनो मे बेल बूटे बनाने का काम तथा मुरादाबाद के बर्तनों की सी कारीगरी जापान में भी अच्छी होती है।

इस देश में पहिले दुधारा खड्ग व्यवहार की जाती थी और इतनी भारी होती थी कि दोनों हाथ से चलाई जाती थी।

समयानुसार वही एक धार वाली छोटी और टेढ़ी बनने लगी। आत्मघात करने के लिए एक छुरी भी योद्धा लोग अपने साथ रखते थे। तलवार बनाने वाले लुहार जापान में बड़ी प्रतिष्ठा पाते थे। अच्छी तलवार की तारीफ़ यह है कि वह पैसों की गड्डी काट डालती है। तलवार बाँधने का तरीक़ा सन् १८७७ ई० में उठा दिया गया। टोकियो के म्यूज़ियम में तलवारों के नमूने देखने योग्य हैं। तलवारों की सिड्ढी बनाकर उन पर से जापानी खिलाड़ी ऊपर चढ़ जाते हैं।

रोग़न चढ़ाने का काम जैसा जापानियों को आता है ऐसा और किसी को नहीं आता। जिस पेड़ से यह रोग़न निकलता है वह जापान में चीन से आया है। यहाँ की धरती उस पेड़ को ऐसी मुआफ़िक़ पड़ी कि यहाँ बग़ीचे तैयार हो गये। अनेक लोग इन पेड़ों के लगाने और रोग़न निकालने काही काम करते हैं। अपरैल के महीने में पेड़ों को छेदते हैं और रोग़न इकट्ठा करते हैं। यह रोग़न सूखने पर काला हो जाता है और इसमें सख़्ती आ जाती है। लकड़ी के ऊपर इसकी वारनिश सब से अच्छी चढ़ती है। यह धात की चीज़ो पर भी चढ़ सकता है। रोग़न चढ़ाने की मोटी युक्ति यह है कि पहिले लकड़ी साफ़ की जाती है, फिर उसके ऊपर सन और सरेश चढ़ाते है, तब रोग़न लगाया जाता है, और उसके कई पर्त दिये जाते हैं। एक के पीछे दूसरा पर्त चढ़ाने के पहिले ख़ूब सुखाना और रगड़ना होता है। चूना मिला हुआ एक प्रकार का चूर्ण मलने से रोग़न में बड़ी झलक आ जाती है।

चित्रकारी करने का तरीक़ा इस प्रकार लिखा हुआ है कि जो चित्र बनाना हो उसे सरेश और फिटकरी से बने हुए काग़ज़ पर बनाते हैं और उसको दूसरी ओर चित्र की झलक के अनुसार बिल्ली के बालों से बने हुए ब्रुश द्वारा रोग़न से चित्रित करते हैं। फिर इस काग़ज़ को उस पदार्थ पर

चिपका देते हैं जिस पर तसवीरें बनानी हैं। कागज को ऊपर से ह्वेल मछली की हड्डी से बने हुए स्पेचूला द्वारा रगड़ते हैं। थोड़ी देर में तसवीर उतर आती है, फिर रुई में राँगे का चूर्ण भरकर इसके ऊपर फेरते हैं तो सब चित्र सफ़ेद निकल आता है।

जिस पदार्थ को सुनहरी करना हो उस पर रोग़न चढ़ा कर स्वर्ण-चूर्ण मल देते हैं और फिर निर्मल रङ्ग की वार्निश कर देते हैं। आजकल सस्ती चीज़ें बनाने के लिए सोने चाँदी के बदले पीतल या राँग का चूर्ण व्यवहार में लाया जाता है। यह रोग़न जब तक सूखता नहीं तब तक विष के समान है। जिन लोगों के पास जापानी रोग़न की चीज़ें हों उन को हमेशा रेशम के रूमाल से पोंछना चाहिए। मोटे झाड़न से रोग़न ख़राब हो जाता है।

खिलौने और मूर्त्ति बनाने का काम जापान में प्राचीन काल से चला आता है। एक समय था कि जब वहाँ कोई राजा मर जाता था तब उसके नौकर चाकर जिन्दा गाड़ दिये जाते थे। इस रीति के उठ जाने पर मिट्टी की मूर्त्ति बनाकर गाड़ी जाने का दस्तूर हुआ और अब कई क़बरों में प्राचीन काल की मूर्त्तियाँ निकली हैं जिन को देखकर देश के पुराने हुनर का पता लगता है। यह छठी शताब्दी के पहिले की बातें हैं। बौद्ध लोगों ने आकर अच्छे अच्छे कारीगर पैदा किये। कोरिया ने एक मूर्त्ति जापान को उपहार स्वरूप भेजी थी। कोरिया से लकड़ी और पत्थर दोनों प्रकार की मूर्त्तियाँ आईं। समय पाकर ज़ापानी भी मूर्त्तियाँ बनाना सीख गये। आशोनोयू और हाकोन के दर्मियानी सड़क के ऊपर जीज़ोदेव की एक बड़ी मूर्त्ति है, वह जापान में ही तैयार हुई थी। कहावत है कि वह मूर्त्ति एक रात में बनाकर खड़ी कर दी गई थी। लकड़ी की मूर्त्ति बनाने के काम में बौद्ध लोगों ने अधिक अभ्यास बढ़ाया था। नारा में एक मन्दिर के दरवाज़े पर जो दो काष्ठ-मूर्त्ति हैं, उन में अद्भुत कारीगरी दिखाई गई है। टोकियो के कई मन्दिरों में लकड़ी के बने हुए बेल बूँटे बहुत ही तारीफ़ के लायक़ हैं।

प्राचीन काल में मनुष्यों की मूर्त्ति भी कभी कभी बनाई जाती थी। शिबा मे शोगनइयासू की मूर्त्ति मौजूद है। पत्थर की बड़ी मूर्त्ति बनाने की अपेक्षा छोटी छोटी चीज़ों को ख़ूबसूरत करने में जापानी संगतराश बड़े प्रसन्न होते हैं। तमाकू की थैली के साथ पत्थर का एक खिलौना लटका रहता है। उसकी कारीगरी भी देखने योग्य है।

इस देश का सब से बड़ा संगतराश सन् १५९९ ई० में हुआ है जिस के बनाये हुए दो हाथी और एक बिल्ली शहर निक्को के एक मन्दिर में अब तक विद्यमान हैं। इस कारीगर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने एक घोड़ा ऐसा बनाया था कि रात को वह ज़िन्दा होकर आस पास के मैदान में घास चरने चला जाता था। इसी कारीगर ने एक स्त्री की मूर्त्ति बड़ी सुन्दर बनायी थी। जिस स्त्री की यह मूर्त्ति थी, उस के पिता का शत्रु इस यत्न में लगा कि उस का सिर काटकर मंगाया जाय। कारीगर ने अपनी बनाई हुई मूर्त्ति का सिर भेज दिया। शत्रु के दर्बार में उस स्त्री का कोई मित्र भी मौजूद था। उस को सिर सचमुच का मालूम हुआ और क्रोध में आकर सिर ले जाने वाले कारीगर का हाथ काट डाला। इस हिदारी कारीगर का नाम देश में प्रसिद्ध है।

आज कल जापान में प्रसिद्ध पुरुषों की मूर्त्ति स्थापन करने का भी रिवाज चल पड़ा है। मकानों के ऊपर भी मूर्त्तियाँ खड़ी की जाती हैं, परन्तु ये मूर्त्ति प्रशंसा के योग्य नहीं समझी जातीं।

चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने की रीति कोरिया से गये हुए कारीगरों ने जापान में शुरू की थी। सन् १६०० ई० के पीछे ही इस में विशेष उन्नति हुई है। सतसूया के बने हुए पुराने बर्तन बड़ी प्रतिष्ठा पाते हैं। क्योटो में बर्तन पकाने का जो भट्टा है वह विदेशियों

को अवश्य देखना चाहिए । ओवारी की चीज़ें भी मशहूर हैं । यह सब से पुराना अवा है । सीतो के बने चीनी बर्तन भी प्रसिद्ध हैं । 'विज़ेन' की चीज़ें खिलौनों के रूप में हैं । देवता, पक्षी, सिंह इत्यादि जीवों की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर बनती हैं । 'अवाज़ी' की चीज़ों पर पीली और नीली झलक का रोगन चढ़ा होता है । 'सोमा' के वर्तनों पर दौड़ते हुए घोड़े का चित्र रहता है ।

पिछले ज़माने में इन कुम्हारों की बड़ी इज़्ज़त थी । राजा लोगों के लिए ये बड़ी बड़ी अच्छी चीज़ें बनाते थे । शोगन के लिए भेंट देने की चीज़ें भारी कारीगरी की होती थीं । राजा लोग अपनी लड़कियों के दहेज में देने के वास्ते भी अच्छे पदार्थ तैयार कराते थे । रंग और चित्र खींचने में तनक भी भद्दापन न आने पाता था । जापानी उत्तम चीज़ें बनाने के रसिक थे, पैसा कमाने के नहीं ।

पहिले जापान के कारीगर अपना हुनर बड़ी सावधानी से गुप्त रखते थे । १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में करात्सु नाम का एक कुम्हार ऐसा चतुर था कि उसके बने हुए वर्तनो पर जो नीलापन और सफ़ेदी आती थी, कहीं के बरतनों में वैसी झलक नहीं आती थी । ओवारी सूबे के बन्ज़ोमन नाम के कुम्हार ने इस युक्ति को सीखना चाहा, अपने एक शिष्य को भेद लेने के लिए नियत किया, तथा करात्सु के कुटुम्ब में उस का विवाह करा दिया जहाँ वह घर में जमाई बनकर रहने लगा । वह कितने ही वर्ष तक वहाँ रहा । कई लड़के लड़कियों का जब बाप हुआ, रोगन चढ़ाने की सब युक्ति उसने सीखली तो स्वदेश को लौट आया तथा अपने स्वामी को सब भेद बता दिया जिस से ओवारी में भी ऐसे सुन्दर वर्तन बनने लगे कि राज्य भर में उनका नाम हो गया । जब करात्सु के भाईबन्धों को इस बात का पता लगा तब उन्हों ने अपनी बेटी और भानजे-भानजियों को तत्काल फाँसी लगा दी ।

जापानी लोग धरती को देश-माता कहते हैं। पिछले दो हज़ार वर्ष का इतिहास पढ़ने से जान पड़ता है कि सब देश का भरण पोषण धरती की उपज पर ही निर्भर था। अपने हाथ से अपने देश के लिए अन्न उत्पन्न करना, अन्य देशों के भरोसे न रहना, जापानी बड़े अभिमान की बात समझते हैं। क्षत्रियों के पीछे किसानों का दर्जा था। सब प्रकार का व्यय अन्नही से चलने के कारण, खेती करने वालों की बड़ी इज़्ज़त रही है। किसानों की चेष्टा से ही यह देश सर्वदा स्वतंत्रजीवी रहा है। देश में कल-कारख़ानों की बढ़ती करने और अन्य जातियों के समान व्यापारी बनने के साथ देश वासियों ने खेती का निरादर नहीं किया, वरन उसको देश की बड़ी आवश्यकताओं में शामिल किया। देश की यह बड़ी दुर्भाग्यता होती यदि व्यापार तथा शिल्प में उन्नति करते हुए देशवासी खेती की उपेक्षा कर देते और देश को अन्न के लिए दूसरों के आसरे पर छोड़ते। जापानियों ने मनुष्य-संख्या के बढ़ते बढ़ते खेती को भी बढ़ाया। परमचतुर ग्रेट ब्रिटिन को भी इस बात में इन्हों ने चकित कर दिया क्योंकि विलायत में कलकारख़ाने की बढ़ती के साथ साथ खेती की इतनी घटती हुई है कि उन को अन्य देशों से उदर-भरणार्थ अन्न मँगाना पड़ता है। जापान में ज़मीन बहुत थोड़ी है और उसके बढ़ाने का कोई उपाय भी नहीं है, अस्तु, अधिक अन्न उपजाने के लिए उन्होंने नये नये तरीक़ों को ग्रहण किया। जल-सिंचन और खाद से लाभ उठाया। यहाँ की धरती थोड़े थोड़े हिस्सों में बटी हुई है। किसान लोग अपने अपने भाग को बड़े प्रेम से जोतते बोते हैं। देश में फ़ी सैकड़ा ६० आदमी खेती का काम करते हैं। किसान लोग अपने पेशे को देश सेवा का एक अङ्ग समझते हैं। जैसे क्षत्रिय लोग युद्ध करके शत्रुओं के हाथ से देश की रक्षा करते हैं उसी प्रकार किसान लोग अन्न उपजा कर उसका भरण पोषण करते हैं। खेत की उपज देश की आमदनी का एक बड़ा हिस्सा है, और देश की एक बड़ी

आवश्यकता को पूर्ण करती है । जापान की सरकार का इस ओर बड़ा ध्यान है । देश भर में सब मिला कर लगभग १९ हज़ार वर्ग मील धरती खेती करने लायक़ है । इसी को लेकर इस देश ने सर्वोपर खेती करने की योग्यता प्रकाश कर दी है । इसी धरती की उपज से चार पाँच करोड़ आदमियों का पेट भरता है । एक अमेरिकन ने लिखा है कि यदि जापान की ज़मीन एकड़ के हिसाब से एक जगह समझी जाय तो घण्टे में ५० मील चाल वाली हवा गाड़ी से एक आदमी इसे ११ घण्टे में खूँद जायगा । इस थोड़ी ज़मीन से इतना बड़ा फ़ायदा उठाने वाले सज्जन क्यों न प्रशंसा के योग्य समझे जायँ । महाराज ने एक कवित्त में किसानों को सिपाहियों के समान देशहितैषी माना है । खेती के लिएवर्त मान में जो जो नये तरीक़े साइन्स के अनुसार निकले हैं, यहाँ के किसानों ने उन नई बातों से बहुत फ़ायदा उठाया है । प्राचीन काल में किसानो के सिर केवल फ़ौज का ख़र्च था परन्तु आज कल उनको समस्त देश का पेट भरना ज़रूरी है । किसान नई बातों को बड़े शौक़ से ग्रहण करते हैं ।

जापानी सरकार और प्रजा में पिता पुत्र का सा भाव है । जापानी प्रजा सरकारी ख़ज़ाने से रुपया लेने में अपनी बे इज़्ज़ती नहीं समझती, क्योंकि वह जानती है कि सरकार जो रुपया टैक्स से वसूल करती है वह प्रजा की भलाई ही के लिए ख़र्च करने को है । सरकारी सहायता से खेती के काम ने बड़ी उन्नति की है । मनुष्य संख्या के बढ़ने के साथ साथ यदि उपज की बढ़ती का उपाय नहीं किया जाता तो देश का अन्न कदापि पूरा नहीं हो सकता था क्योंकि ज़मीन बढ़ाने का कोई यत्न था ही नहीं ।

सरकार ने पहिले ज़मीन को ठीक किया । उसके टेढ़े मेढ़े रूप को ठीक करके एक आकार का बनाया । रास्ते और पगडंडियों को उनके बीच से अलग किया । जापानी प्रजा नौकरों के भरोसे खेती

नहीं करती। जहाँ तक संभव होता है घर के सब आदमी अपना काम आप करते हैं। सौ में ४५ आदमी ऐसे हैं जिनको घर पीछे दो दो एकड़ धरती जोतनी बोनी पड़ती है। ३० ऐसे हैं जो पौने चार एकड़ तक के मालिक हैं। इससे अधिक के मालिक केवल १५ फ़ीसदी हैं। आधी ज़मीन मालिकों के हाथ में है और आधी जोताओं को पट्टे पर उठा दी जाती है। किसान खेती के सिवाय कुछ और भी धंधा कर लेता है और उससे भी कुछ आमदनी निकाल लेता है। यद्यपि जापानियों को खाद का बहुत सुभीता नहीं है क्योंकि उनके पास बहुत से पशु नहीं होते, तो भी वे अपनी धरती को ऐसा उपजाऊ बना लेते हैं कि साल में चार चार फ़सल हो जाती हैं।

सन् १८९४–९५ में जब चीन के साथ लड़ाई हुई तब, सरकार को जान पड़ा कि अपने देश में यथेष्ट अन्न होना देशरक्षा के लिए कितना ज़रूरी है। उस साल से पीछे खेती की उन्नति करना सरकार ने अपने हाथ मे लिया। साल के साल इस मद में बहुत सा रुपया ख़र्च करना मंज़ूर किया और कृषि के लिए सब तरह के सुभीते किये जाने लगे।

कृषि-विभाग का काम व्यापार के साथ ही साथ एक ही मंत्री के हाथ में है। केवल शिक्षासम्बन्धी बातों के लिए शिक्षाविभाग ज़िम्मेदार है। कृषि, वाणिज्य, शिल्प, मत्स्य संग्रह, जंगलात, खानि, पेटेन्ट, ट्रेडमार्क और भूगर्भ-विद्या ये सब एक ही विभाग में शामिल हैं, पशुवृद्धि भी एक शाखा है। इस समस्तकार्य को ४ हाकिम करते हैं। खेतों का हिसाब रखना, नहरें निकालना, नूतन प्रकार से खेती करना तथा नयेनये उत्तमोत्तम पदार्थों की प्रदर्शनी करना, एक हाकिम का काम है। फ़सल बढ़ाने के उपाय स्थिर करना, कीड़ों को मारना, नई ज़मीन बनाना, रेशम और चाय तैयार करने का उपाय करते रहना, दूसरे हाकिम का धर्म है। घरेलू

पशुओं की वृद्धि, साँड तयार करने, पशु-चिकित्सालय स्थापन करने का भार तीसरे हाकिम के सिर है। चौथा हाकिम घोड़ों के पालने और वृद्धि करने पर नियत है।

सर्कार की निगरानी में एक ऐसे स्थल का प्रबन्ध है जहां सब प्रकार की नई नई बातों की परीक्षा होती है। इसके सिवाय देश भर में २०० परीक्षा-स्थल और हैं जिन में अमरीका से भी अधिक योग्यता के साथ काम होता है। इनकी सहायता में सर्कार अपने देश के डेढ़ लाख रुपये हर साल ख़र्च करती है। परीक्षा से जो सिद्ध होता है उसकी रिपोर्ट सर्व साधारण के लिए प्रकाशित की जाती है। लोकल गवर्नमेंट की ओर से ऐसे उपदेशक नियत हैं जो गाँव गाँव फिर कर किसानों को नई नई बातें सिखाते हैं। किसानों के लड़कों को कृषि-विद्या सिखाई जाती है और हर साल सैकड़ों लड़के पास होकर निकलते हैं। वहाँ दो बड़े बड़े कालेज ऐसे हैं जिनकी बराबर संसार भर में कहीं भी नहीं है। अन्य बड़े बड़े स्कूल भी वहाँ ३६ हैं।

घोड़ों की वृद्धि पर देश का बड़ा ध्यान है। प्रतिवर्ष दो आदमी बाहिर से अच्छे अच्छे घोड़े लाते हैं और फिर देश में उनकी नसल बढ़ाई जाती है। सन् १९०२ में ३९७ सांड़ घोड़े और २९१ बच्चा देने वाली घोड़ियाँ थीं।

रेशम की उपज बढ़ाने पर भी सरकार की नज़र है। रेशम के कीड़ों को रोगों से बचाने का उपाय जाँचने के लिए एक परीक्षा-स्थल बनाया गया है। टोकियो और क्योटो में दो कालिज ऐसे हैं जहां रेशम-वृद्धि के उपाय सिखाये जाते हैं। रेशम की उत्तमता जाँचने के लिए एक सर्कारी परीक्षक है। सन् १९०२ में इसके पास ७८,६६८ लोगों ने अपना माल जाँचने के लिए भेजा था।

सन् १८९९ में सर्कार ने एक क़ानून बनाया कि सब खेत एक सीध और एक आकार में बनाये जायँ। छोटे छोटे खेत जो अपनी [illegible] में [illegible] हुए थे मिला कर बड़े कर दिये गये।

उनके लिए सींचने का पानी भी सुगमता से पहुँचाया जाने लगा। इस नये क़ानून से इतने लाभ हुए :—

(१) खेतों का आकार बड़ा हो जाने से उन में नई युक्ति से जोतना बोना बड़ा सुगम हो गया। कलें अच्छे प्रकार काम करने लगीं।

(२) खेत की उपज ५ फ़ीसदी बढ़ गई।

(३) खेतों में पानी पहुँचाना और फ़ालतू पानी का निकालना अब बहुत सरल है। यह भी पैदावारी बढ़ जाने का कारण हुआ है।

(४) हर एक के खेत एक जगह हो जाने से काश्तकारों को खेती के काम देखने भालने का बड़ा सुभीता हो गया है। अब उनको खेत खेत पर झोपड़ी नहीं डालनी पड़तीं।

होकेदो टापू में जो जंगल पड़ा था उसको भी अब खेती के लायक़ बना दिया गया है और परिश्रमी किसानों को मुफ्त ज़मीन उठा दी है। १० वर्ष में साढ़े पाँच लाख एकड़ धरती तैयार हुई है। इस नये प्रबन्ध से जापान को बड़ा लाभ हुआ है।

उत्तम खाद मिलने पर भी सर्कार का बड़ा ध्यान है। जितने खाद बेचने के कारख़ाने हैं सब को अपने माल का नमूना परीक्षा के लिए सर्कार में भेजना पड़ता है। खाद देखने के लिए ११६ दारोग़ा हैं। बुरा खाद बेचने वालों को १ वर्ष की क़ैद और ३०० रुपये नक़द जुर्माना होता है। मछली का खाद बहुत अच्छा बनता है। इस लिए मछली संग्रह करने के काम में बहुत तरक्की की गई है। ६ करोड़ की मछली साल में पकड़ी जाती है। उन में ८० लाख की खाद बनाने में ख़र्च होती हैं। मछली की अधिकता से देश का उदर-पालन भी खूब होता है। खाद और खाने से जो बचती हैं वह विक्री के लिए अन्य देशों को भेजदी जाती हैं। जिनका ८० लाख रुपया आता है। संघालीन और यूसूरी सूबे के आस पास

मछली पकड़ने की शर्त रखने से यह सिद्ध होता है कि जापानी इस के लाभ को अच्छी तरह समझते हैं ।

किसानों की निज की पंचायतें भी ऐसी हैं जो कृषि की उन्नति का विचार करती रहती हैं । इन पंचायतों को कम सूद पर रुपया भी मिलता है । उपज बढ़ाने के निम्नलिखित उपाय किये जाते हैं । यथा–नयी ज़मीन तलाश करना । नदियों के बाँध बाँधना । जंगल लगाना । नहरों का निकालना । जोतने बोने की नई युक्ति निकालना । सस्ता खाद पहुँचाना आदि ।

किसानों को सस्ते ब्याज का रुपया देने वाले जो बंक हैं वे क़िस्तो मे रुपया वसूल करते हैं । बंक से रुपया इन कामों के लिए मिलता है :—

(१) नई ज़मीन बनाना, नहर निकालना और ज़मीन सुधारना ।
(२) खलिहानों के मार्ग सुधारना ।
(३) नई ज़मीन के पास बसना ।
(४) बीज, पौधे, खाद और औज़ार ख़रीदना,
(५) खलिहान सम्बन्धी चीज़े खरीदना ।
(६) खेती के कारबार के लिए नये घर बनाना ।
(७) पंचायती ख़र्च ।

खेती के साथ साथ किसान लोग और और काम भी करते हैं । नशास्ता, मुरब्बा, सूखे फल, चटाई, दियासलाई, रस्से, मछली पकड़ने के जाल, टोपी, बरसाती कोट, कोयले, बोरे, काग़ज और रेशम का बहुत सा काम किसान लोग करते रहते हैं । तेल निकालने, नमक निकालने, चूना बनाने और कपूर साफ़करने का काम भी किसानों के हाथ में है ।

जापान में ५ बडे अन्न गिने जाते हैं । चावल, जौ, गेहूँ, ज्वार, और रमाँस (लोबिया) । चावल का दर्जा सब से बढ़ कर है और यही अधिक बोया जाता है । दूसरे अन्न उन्हीं खेतों में बोये

जाते हैं जिन में चावल नहीं उग सकते अथवा चावलों के लिए ठीक मौसम न हो। चावल की खेती में किसान को बड़ी मिहनत करनी पड़ती है और बहुत पानी दर्कार होता है। खाद के लिए मैला बहुत उपयोगी समझा जाता है। पहिले एक क्यारी मे धान बोकर उनकी पौध तैयार करते हैं जो अपरैल के महीने में बोई जाती है। एक महीने पीछे खेतों में जमाने के लायक़ होजाती है। घुटने घुटने पानी के भीतर इस की पौध जमाई जाती है। स्त्रियाँ भी इस काम मे सहायता देती हैं। सितंबर के महीने में फूल आता है और अक्तूबर में पक जाता है। इसे काट कर बाँसों पर सुखाते हैं। तोसा के सूबे में चावल की दो फ़सल कटती हैं।

एशिया भर के चावलों से जापानी चावल उत्तम होते हैं। लोग इसे बड़े शौक़ से खाते हैं। ग़रीब किसानो के भाग्य में चावल खाना बहुत कम बदा है, वे अन्य सस्ते अन्न पर अपनी गुज़रान करते हैं। उन्हें चावल यातो बीमारी में दिया जाता है या किसी तीज त्यौहार को मिलता है। रोगी को जब चाँवल बताया जाता है तो किसान लोग समझ लेते हैं कि रोगी के जीने की आशा नहीं है। बड़े व्यापारी बोरे के हिसाब से चावल बेचते हैं और छोटे दुकानदार जापानी रुपये के हिसाब से। जापान का बढ़िया चावल एशिया के धनवान ख़रीदते हैं और एशिया का सस्ता चावल ग़रीबों के लिए जापान जाता है। चावल का भाव सब कोई बड़े आग्रह से पूछता रहता है। दक्षिण के लोग शकरक़ंद खाकर गुज़र करते हैं। लोग साग सब्ज़ी कम खाते हैं।

चाय की खेती जापान में ख़ूब होती है। इसका फूल सफ़ेद और ख़ुशबूदार होता है। पहाड़ों के ढाल पर इसकी खेती होती है। यदि पानी का निकास ठीक हो तो मैदान की धरती पर भी चाय पैदा की जा सकती है। तीन चार फ़ीट से अधिक ऊँची झाड़ी बढ़ने नहीं दी जाती। तीसरे वर्ष इसके पत्ते तोड़े जाते हैं।

५ से १० वर्ष तक की झाड़ियों में के पत्ते मजेदार निकलते हैं। अप्रैल-मई के महीने में पत्ते तोड़े जाते हैं। तीन चार हफ़्ते तक यह काम रहता है। दूसरी बार जुलाई में तोड़ते हैं। कभी कभी वर्ष में तीन बार भी पत्ते तोड़े जाते हैं। चाय के पत्तों को पीतल के तारों की चलनी मे रखकर उबलते हुए पानी में डालते हैं और आधा मिनट रखते हैं। इससे पत्तों मे का तेल निकल कर पानी पर निथर आता है। फिर इन पत्तो को काग़ज़ के ऊपर फैलाकर, और तख़्ते पर रखकर, कोयले की नरम आग पर सुखाते हैं। गर्मी फ़र्नहाइट थर्मामीटर के ११२ दर्जे से अधिक न होनी चाहिए। पत्ते जब आपस में चिपट कर ढेले से बन जाते हैं तब उनको मीड़ कर अलग अलग कर देते हैं। जब ख़ूब सूख जाते हैं तो पत्ता पत्ता मुड़कर अलग अलग हो जाता है। पहिले ज़माने में पत्ते धूप में सुखाये जाते थे।

रेशम का कीड़ा सन् ३९९ ई० तक जापान मे नहीं पहुंचा था। महाराजा निन्तोक् के समय तक लोग सन अथवा छाल का कपड़ा पहिनते थे। उन दिनों में शहतूत का पेड़ भी नहीं होता था। कोरिया से ये दोनो (कीड़ा और शहतूत) जापान में आये और रेशम का इतना आदर बढ़ा कि देश के बड़े आदमी और स्त्रियाँ रेशम के ही कपड़े पहिनने लगे।

यहाँ का रेशमी कीड़ा उस जाति में से है जो सफ़ेद शहतूत के पत्ते खाता है। देश-भेद से अब इन के रङ्ग रूप में बड़ा अन्तर आ गया है। शहतूत के पेड़ सर्वदा ऊपर से कटे छटे रहते हैं। उन के आस पास साग सब्ज़ी बो दी जाती है। पेड़ की डालियों में से पत्ते घर पर अलग किये जाते हैं। यहाँ के इन कीड़ों के अंडे बड़े नाजुक हैं और काग़ज़ पर रक्खे जाते हैं। कीड़े सुस्त होते हैं। कुकड़ी छोटी और हलकी होती है। इनका रेशम बहुत घटिया नहीं होता। शिनानो सूबे का रेशम बढ़िया और सफ़ेद रङ्ग का होता है।

एक प्रकार का कीड़ा और है जो सिन्दूर वृक्ष के पत्ते खाता है और मोटे तार की कुकड़ी तैयार करता है। वर्तमान में रेशम का कारबार ऐसा बढ़ा है कि शहतूत के बग़ीचे सब तरफ़ नज़र आते हैं। पिछले १६ वर्षों में शहतूत के बग़ीचे २०० गुने हो गये हैं। लगभग ९ करोड़ रुपए का रेशम बाहर को जाता है। देश का ख़र्च अलग रहा। जापान में अधिकतर रेशम ही बरता जाता है। पहिनने के कपड़े, कमर बन्द, रज़ाइयाँ, रूमाल, छीटें, लिखने और तस्वीर खींचने के थान इत्यादि इत्यादि सैकड़ों काम में रेशम ही बरता जाता है।

अन्य देशों को कच्चा रेशम भी जाता है और बना हुआ सूत भी। कुकड़ी और रेशम की कतरन भी जाती है। रूमाल और थान भी रवाना होते हैं। अब यहाँ से रेशमी कीड़ों के अंडे भी बाहर जाने लगे हैं। बहुत सा माल विशेष करके यूरोप को जाता है।

कपूर का व्यापार तो यहाँ जगत्प्रसिद्ध है। कपूर तैयार करने में बड़ा परिश्रम पड़ता है। पेड़ काटा जाता है फिर उस की छोटी छोटी छिपटियाँ की जाती हैं और उन को उबालते हैं। भाप में कपूर मिल कर उड़ता है। उसे दूसरे बर्तन में सर्दी पहुँचा कर जमाते हैं। इस में से कपूर का तेल और कपूर अलग अलग किया जाता है।

कपूर का पेड़ बड़ा ऊँचा होता है, और ५० फ़ीट तक उस की पीड़ का घेरा होता है। गाँव के लोग बड़े बड़े पेड़ों की पूजा करते हैं।

काग़ज़ बनाकर जापानी उस से अनेक काम निकालते हैं। पेड़ों की छाल से ये लोग काग़ज़ बनाते हैं। छाल के रेशे लंबे के लंबे ही रहते हैं। इसी से काग़ज़ बड़ा मज़बूत होता है। पखे, पर्दे, लालटेन और कभी कपड़े तक काग़ज़ के तैयार किये जाते हैं। उत्तम, नरम काग़ज़ का एक तख़्ता रूमाल का भी काम दे

जाता है। खिड़कियों में शीशे की जगह पर काग़ज़ ही लगाया जाता है। घर में कमरे अलग करने के लिए जो तख़्ते बनाये जाते हैं उन में काग़ज से ही काम निकाला जाता है। काग़ज़ की धज्जियों से झाड़ू बनायी जाती है और इसी से घर बार बुहारा जाता है। ख़ून बन्द करने के लिए काग़ज के फोए बनाते हैं। काग़ज़ पर रोग़न चढ़ाकर उस के छाते, मोमजामे, तमाकू की थैलियाँ, तकियों के गिलाफ़ और पारसल बनाते हैं। काग़ज़ की धज्जियों से रस्सी बनाकर उससे सैकड़ों काम लिये जाते हैं। चमड़े की जगह पर काग़ज़ को बर्त्तते देखा गया है। काग़ज़ के पट्ठों से सन्दूक़ बनते हैं उनको किताबो पर चढ़ाते हैं। जापानी काग़ज़ पर कूँची से ह अच्छा लिखा जाता है। लोहे का निब उस पर ठीक ठीक नह चलता, परन्तु अब टोकियो में ऐसा कारख़ाना खुला है जह उत्तम नोट पेपर तैयार होता है। पुस्तक और अख़बार छापने क काग़ज़ भी अब वहाँ बनने लगा है। जापानी काग़ज़ पहिले ऐस पतला बनता था कि उस के एक ही ओर छापा जा सकता था जापानी पुस्तकें काग़ज़ के एक ही ओर छपती हैं।

संसार भर में जापान की सी प्रजा कहीं नहीं है। जापानी "प्रजा" शब्द के अर्थ को खूब समझते हैं और उसी के अनुसार चलते हैं। हिन्दुस्तान की तरह जापान मे देश देशान्तर के लोग नहीं बसते। जापानी एक समुदाय है और वे सब अपने को जापानी ही समझते हैं। इस टापू के निवासियों की एक नस फड़कती है, एक प्रकार का जीवन और एक प्रकार का बल है और एक ही रुख़ है। जापान मे प्रजा का काम और राजा का क़ाम जुदा जुदा नहीं है। जो राज्य के विरुद्ध है वह प्रजा के विरुद्ध है। जापानी देशहित के धर्मों को भी समझते है और प्रजा के अधिकार को भी जानते हैं। जाति के उपकार के लिए कोई मनुष्य अपना स्वार्थ नहीं देखता। यदि सौ स्याने एकमत और स्वार्थत्याग से कोई जाति प्रबल हो सकती है तो जापान को संसार की प्रधान जाति बनने मे कोई सन्देह नहीं है।

निस्सन्देह जापानियों के राजभक्त होने का यही कारण है कि उनके देश में कभी विदेशी आक्रमण-कर्त्ताओं के चरण नहीं पड़े और आज तक उन पर किसी विदेशी ने शासन नहीं किया। वहाँ भाँति भाँति के लोग नही आ सके हैं। जापानी एक पृथक् जाति के

लोग हैं। उनके रुधिर में अन्य-देशी के रुधिर का मेल नहीं है। वे अपने बल पर विश्वास करते हैं। यही सब बातें उनका प्रताप और साहस बढ़ाती हैं। पितृ-पूजन का देश में प्रचार होने के कारण उनको अपने पूर्व पुरुषों का अभिमान और प्राचीन कीर्ति का ध्यान सर्वदा बना रहता है। जापानियों के समान लंबी वंशावली कोई यूरोपियन जाति नहीं दिखा सकती। उन आदि-पुरुषों का महत्त्व सर्वदा प्रत्येक जापानी के हृदय में बना रहता है। यूरोपियन-सभ्यता का इतना संसर्ग होने पर भी जापानियों का यह स्वाभाव अभी तक परिवर्तित नहीं हुआ है।

देशहित और जातिहित का यदि कोई जीवित केन्द्र न हो तो वह हित दुर्बल हो सकता है। जो ठीक ठीक स्थिति का प्रबन्ध न हो तो बड़े से बड़ा पुल भी गिर जा सकता है। जापानी जाति का केन्द्र उनके नरेश हैं। एक प्रसिद्ध जापानी लेखक ने लिखा है कि "स्वदेश" हमारा पूज्य देव और "देशहित-साधन" हमारा प्रधान धर्म है। जापान-नरेश से लेकर साधारण प्रजा तक का इससे बड़ा और कोई धर्म नहीं है।

डाक्टर नितोबे ने लिखा है—"अपने महाराज के लिए हम जो प्रेम रखते हैं उस ही से हमारे हृदय में उस देश का प्रेम उत्पन्न होता है जहाँ के वे महाराज हैं। हमारे स्वदेशानुराग में हमारे रक्षक और जन्म-भूमि दोनो गिने जाते हैं। इस अनुराग का एक कारण और भी है अर्थात् यहाँ की भूमि में हमारे पूर्व पुरुषों की हड्डियाँ स्थित हैं"।

शिन्तोधर्म सिखाता है "अपने पूर्व पुरुषों का श्राद्ध करो, राज भक्त रहो, इनके सिवाय जो तुम्हारा मन माने सो करो"। जापान-नरेश के समान प्राचीन और लंबी वंशावली और किसी की नहीं है। उसका वंश प्रजा की अपेक्षा बहुत ऊँचा है। सूर्य्य-देवी उसकी आदिमाता है। आज कल के किसी परमशिक्षित जापानी से भी यदि महाराज के सम्बन्ध में प्रश्न किया जाय तो यही उत्तर मिलेगा

कि "मुझे यह पूरा निश्चय है कि वह भी अन्य प्राणियों की भाँति एक पुरुष है। परन्तु तो भी जब कभी मैं देखता हूँ तो मेरे हृदय में उस के लिए देव-भाव उत्पन्न हो जाता है" राज-सेवक और राज-भक्त होना सब से बड़ा धर्म है।

कौंट ओकूमा का कथन है कि "इस देश के लोग राज-भक्त और देश-भक्त साथ ही साथ हैं। सब में दोनो बातें पाई जाती हैं। ५० वर्ष पहिले जब हम और किसी देशाधिपति का नाम भी नहीं जानते थे तब भी हम अपने महाराज से इतनी ही प्रीति रखते थे। राजा प्रजा का ऐसा सद्भाव वर्तमान में स्थिर है और भविष्यत् में रहेगा। जाति की उन्नति और समृद्धि के लिए यह भाव बड़ा ही उत्साहवर्द्धक है।

जापान में कभी प्रजा-विरोध नहीं हुआ और न फूट फैली। जब देश रजवाड़ों मे बटा हुआ था और राजा लोग अपनी मनमानी करते थे; विदेशियो द्वारा स्वदेश के आक्रमण होने के भय ने उन्हें तत्काल एक महाराज के अधीन बना दिया। जिन दिनों शोगन के हाथ मे देश-प्रबन्ध था तब सब कुछ कार्य महाराज के नाम से ही होता था। महाराज का पद नष्ट करने की भावना जापानियों ने कभी नहीं की। राजा लोगों ने कभी ज़मीन को अपना नहीं समझा; वे उसे महाराज का ही माल गिनते रहे। यही कारण है कि जब महाराज ने शासन अपने हाथ में लिया तो राजा लोगो ने तत्काल अपना सब इलाक़ा महाराज को अर्पण कर दिया।

एक ही राजकुल का इतने दिन स्थिर रहना कैसे आश्चर्य की बात है, परन्तु इसका मूल कारण यह है कि किसी जापान-नरेश ने अन्याय-शासन नहीं किया। देश में छोटे छोटे राज्य होने पर भी यद्यपि सामुराई लोग अपने को सब से बड़ा समझते थे परन्तु तो भी राज्य की शोभा साधारण प्रजा ही समझी जाती थी। दासत्व-प्रणाली इस देश में कभी नहीं हुई। महाराज अपनी प्रजा को सुखी रखना ही अपना कर्तव्य समझते रहे।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जापानियों ने अपना सनातन रूप क्यो छोड़ दिया और क्यो यूरोपियन-सभ्यता ग्रहण करली? इसका उत्तर यह है कि इस देशवालों ने केवल शौक पूरा करने के लिए यह भाव ग्रहण नही किया है, बरन स्वदेश को विदेशी लोगो की क्रीड़ा-भूमि बनाना रोकने के लिए ही ऐसा किया है। उन्होने सब से पृथक् रहने की पूर्ण चेष्टा की; विदेशियों की आमदनी रोकनी चाही; परन्तु इसमें वे सफल नहीं हुए; तब उनको यह ज्ञान हुआ कि जब तक हम सब प्रकार विदेशियो के समान न हो जायँगे तब तक उनके आक्रमण से बच न सकेंगे। अस्तु, उन्हे आधुनिक सभ्यता ग्रहण करनी पड़ी और इस से मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया। उन के मूल विचार वैसे ही दृढ़ हैं। सनातन राजधर्म को आदर देते हुए संसार मे प्रतिष्ठित बनने का सौभाग्य जापानियों को ही हुआ है।

इतिहास में लिखा गया है कि महाराज निन्तोकू ने तीन वर्ष के लिए अपनी प्रजा से किसी प्रकार का लगान नही लिया था, जिस से शीघ्र ही प्रजा की दशा बदल गई। जब महाराज गद्दी पर बैठते हैं तब वे अपने ऐश आराम के लिए नही बरन प्रजा का सुख बढ़ाने के लिए शासन अपने हाथ मे लेते है। प्रजा की दरिद्रता महाराज की दरिद्रता और प्रजा की समृद्धि महाराज की समृद्धि है। यही कारण है कि ज्योंही शासन की लगाम महाराज के हाथ में आई त्यों ही महाराज ने प्रजा को सब भाँति स्वतंत्र कर दिया। प्रजा ने खुशामद करके, या लड़ाई बखेड़ा करके, एक भी हक़ नहीं माँगा। इसी लिए कौंटकत्सूरा ने लिखा है "एक बात का जापान को बड़ा अभिमान है कि अन्य देशो की भाँति यहाँ की प्रजा ने महाराज के विरुद्ध उपद्रव करके कोई बात नहीं माँगी। महाराज ने जो कुछ दिया अपने मन से दिया और प्रजा ने धन्यवाद-सहित उस कृपा को ग्रहण किया।

प्रजा के हाथ मे शासनाधिकार देने से यह सिद्ध हो गया कि महाराज अपनी प्रजा का कितना विश्वास करते हैं । किसी देश में राजनीति का परिवर्तन इतना चुपचाप और शीघ्र नही हुआ ।

म. क्रिस ईटो ने लिखा है कि "जापान का राज्यसिंहासन बड़ा प्राचीन और पवित्र है । देश पर अधिकार रखना और शासन करना उसी के अधीन है । नये प्रबन्ध से हम लोगों के इस भाव में कुछ अन्तर नहीं आना चाहिए । महाराज स्वर्गीय-प्रतिनिधि हैं । मनुष्य मात्र से उनकी पदवी ऊँची है । उनका सम्मान सर्वोपरि है । यद्यपि वे अपना व्यवहार आईन-संगत रखते हैं परन्तु आईन का उनके ऊपर कोई बल नहीं है । महाराज का शरीर पवित्र है और उनकी सब चर्चा भी पवित्र है । कभी अपमान सूचक वार्तालाप उनके सम्बन्ध में न होगा । प्रतिनिधि-प्रणाली को महाराज ने स्वयं चलाया है और राजा प्रजा सबको उनके अनुसार चलने की इच्छा प्रकाशित की है । महाराज ने इस बड़ी पचायत को आईन बनाने का काम सोंपा है; परन्तु आईन का स्वीकार करना और उसे प्रजा में चलाना यह महाराज के हाथ मे दिया गया है । फ़ौजी और जहाज़ी महकमो का शासन भी महाराज की आज्ञा के अधीन है । यह सच है कि महाराज जो कुछ आज्ञा प्रचार करते हैं उन सब में अपने मन्त्रियो की सलाह लेते हैं । युद्धघोषणा, शान्ति करना तथा विदेशियो से सन्धि स्थापन करने मे महाराज अपनी महासभा के अधीन नहीं हैं; क्योंकि विदेशी महाराजाओ से व्यवहार करना जापान-नरेश को ही शोभा देता है । इसी प्रकार युद्ध और शान्ति मे तत्काल समयानुसार कार्रवाई करनी पड़ती है। लड़ाई मिटने के पोछे, सन्धि स्थिर करते समय, शान्ति, मित्रता, व्यापार और पारस्परिक सहायता इत्यादि बातो का विचार रक्खा जाता है ।

जापानी प्रजा को देश के नियमानुसार फ़ौजी काम सीखना भी आवश्यक होता है। १७ वर्ष से लेकर ४० वर्ष की उमर तक सब

पुरुषों के नाम फ़ौजी रजिस्टर में रहते हैं और वे सब आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के लिए बुलाये जा सकते हैं। इसी बात पर मार्कि सईटो ने कहा था कि "जापान-राज्य के मूल कण जापानी प्र हैं। उनके हाथ ही मे देश का रखना, बचाना और बढ़ाना है न्यायानुसार प्रत्येक पुरुष को देश के लिए लड़ना होगा। इसलि सब को वीरता का ध्यान रखना और शरीर को क़वायद परेड युद्ध-निमित्त तैयार करना होगा। ऐसा करने से देश का वीरत स्थिर रहेगा और पौरुष में न्यूनता न आवेगी।"

प्रजा जो टैक्स देती है वह प्रजा की भलाई में ही ख़र्च किय जाता है और देश-रक्षा के लिए जो धन आवश्यक होता है उसक भाग भी इस मे संयुक्त है।

प्रजा को अधिकार है कि कहीं बसे और कहीं से कहीं जाय किसी को इस बात के लिए लाचार नहीं किया जाता कि उसे एक ख़ास जगह कुछ दिन के लिए अथवा सदा के लिए बसन होगा। राज्य भर में मनुष्य कहीं भी कुछ रोज़गार कर सकता है केवल न्याय के अनुसार ही इस स्वतंत्रता में बाधा दी जा सकती है। जब कभी कोई पकड़ा जाता है, या क़ैद किया जाता है, य मुक़दमे के लिए लाया जाता है तब, उसके साथ विधि के अनुसार ही व्यवहार किया जाता है; किसी प्रकार की कठोरता नहीं की जाती। सब किसी को अपनी सफ़ाई दिखाने का अधिकार है। मुक़दमा खुली कचहरी चलाया जाता है। जजों को न्याय करने में पूर्ण स्वाधीनता है। उनके ऊपर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता। अदालत में ग़रीब और अमीर एक दृष्टि से देखे जाते हैं। प्रजा अपने दुःखदाता हाकिम के विरुद्ध भी मुक़दमा चला सकती है। अदालत सब के लिए खुली है। सब के सामने इज़हार लिये जाते हैं। मालिकमकान की रज़ामन्दी के बिना किसी को यह अधिकार नहीं है कि किसी के घर में जा घुसे।

पुलिस तथा अन्य राज-कर्मचारी न्यायानुसार आज्ञा प्राप्त करके ही किसी के मकान में जा सकते हैं।

अपने धार्मिक विचार रखने के लिए सब स्वतंत्र हैं। अपने मन में कोई किसी धर्म पर विश्वास रक्खे परन्तु दिखावटी धार्मिक व्यवहारों के लिए न्यायानुसार चलना होता है, किसी को अपने प्रजा-धर्म से बाहिर कभी नहीं होना चाहिए। आईन के अनुसार प्रजा को व्याख्यान देने, लेख लिखने, छापने और सभा करने का अधिकार है।

जापानियों के विचार स्वार्थपूर्ण और संकीर्ण नहीं हैं। वे किसी देशवालों से घृणा नहीं करते; और यही कारण देश की इस आश्चर्यजनक उन्नति का है।

टोकियो से सन् १८९५ ई० में एक बड़े पादरी (विशप) ने लिखा था—

"जापान ने जो सफलता प्राप्त की है वह अपने ही गुणों के प्रभाव से की है। पिछले बीस वर्ष में उन्होने प्रजा से जो कर उगाहा है उसको बड़ी ईमानदारी से देश की आवश्यकताओं पर ख़र्च किया है। यूरोपियन कला-कौशल को उन्हों ने अच्छे प्रकार सीखा और व्यवहार में लाकर लाभ उठाया है। उनके हृदय में देश-प्रेम का ऐसा उत्साह है कि समस्त देश मिलकर एक प्राण हो रहा है। पूर्वीय जातियों में केवल जापान ही इन गुणों से पूर्ण है। प्रजा के रुपये का ऐसा सद्-व्यवहार इस ओर के देशों में कभी नहीं हुआ। स्त्री और पुरुष दोनों के हृदय देश-भक्ति और राज-भक्ति से पूर्ण हैं। सभ्यता में भी ये लोग अन्य देशों से बढ़े चढ़े हैं। इनके विश्वास और विचार बहुत ही उच्च हैं। यद्यपि ये यूरोपियन-साहित्य और विज्ञान के बड़े कृतज्ञ हैं और इन्होने उनसे बहुत लाभ उठाया और उठावेंगे परन्तु सभ्यता में वे अपने विचार सर्वोत्तम समझते हैं।"

रूस के साथ जब जापान की लड़ाई छिड़ी और पोर्ट आर्थर के ऊपर उदित सूर्य का झंडा फहराया और रूस की सब शेखी किरकिरी हो गई, तब यूरोप के लोगों की आखें खुलीं और जापान का महत्त्व उनको ज्ञान पड़ा। पूर्व मे एक नई महाशक्ति का उत्थान सब संसार में विदित हो गया। जिस रूस के डर से (न जाने क्यों) समस्त यूरोपियन-नरेश कांपते थे और जिसके कर्मचारियों ने पोलिटिकल-चालों से पोर्ट आर्थर को हस्तगत किया था उसी रूस को वह अपना प्यारा स्थान जापान को सोंपना पडा। यह वही जापान था जिसको ४० वर्ष पहिले यूरोपियन लोग असभ्य और बर्बर कहते थे और तोप तथा बन्दूक़ चलाकर डराते थे। राजनीत्युपयोगी वार्तालाप करने की योग्यता उसमें नहीं समझी जाती थी। "पीतातंक" घोषणा करने वाले प्रसिद्ध जर्मन-नरेश ने पोर्ट आर्थर फ़तह होने पर जनरल स्टोसल और जनरल नोगी को अपनी ओर से सम्मान-सूचक उपाधि दी तो मानों उन्होंने सब संसार में यह बात प्रकाश कर दी कि दोनों जाति एक समान हैं। पोर्ट आर्थर-पतन इतिहास का वह अध्याय है जिसके द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि संसार में सब देश और सब जाति समान हैं। सामुद्रिक बल में यूरोपियनों का सर्वोच्च होना और एशियावालों को नीचा होना मिथ्या हो गया। जापानी गेहुएँ रंग के एशिआई लोग हैं। उन्होने अपनी उच्चता दिखा दी है, और उस उच्चता को यूरोपियन लोगों ने स्वीकार भी कर लिया है। पोर्ट आर्थर ने सिद्ध कर दिया है कि रंग रुप के कारण, या पृथ्वी की किसी मुख्य दिशा मे रहने के कारण, कोई जाति बड़ी नहीं हो सकती। बड़प्पन जाति के बल से है। परमात्मा ने इस आत्माभिमान को तुड़वाकर सृष्टि का बड़ा मंगल किया है। जापान ने अपने अविरल परिश्रम और चेष्टा से यह महत्त्व प्राप्त किया है। जब तक किसी देश के मनुष्य ऐसे ही आचरण ग्रहण न करेंगे वे कदापि महत्त्व को प्राप्त न होंगे। जापान की जीत से एक बात

अच्छे प्रकार सिद्ध हो गई है कि जातीय महत्त्व प्राप्त करने के लिए सर्व साधारण की पूर्ण चेष्टा होनी चाहिए। संसार भर को जापान उपदेश देता है कि वृथा अभिमान और विचारो को छोड़ कर लोगों को नई बातें सीखनी चाहिएँ। सब कामो मे सिद्धहस्त और दक्ष होना चाहिए और हृदय में संकुचित भाव न रखने चाहिएँ।

अंगरेज़ी में एक पेट्रियोटिज़्म शब्द है। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने अपनी इतिहासतिमिरनाशक पुस्तक में लिखा है कि हिन्दी भाषा में इसके जोड़े का शब्द ही नही है; परन्तु जब से जापान ने अपना स्वदेश-प्रेम दिखाया है तब से भारतवासी इस शब्द का अनुभव अच्छी तरह करने लगे हैं। जापानी जाति स्वदेश-प्रेम को अमूल्य निधि समझती है। मानों उस जाति का जीवन ही "पेट्रियोटिज़्म" है। महल-निवासी राजा से लेकर झोंपड़ी वाले तक के हृदय में यही अग्नि जलती है। इसी की शक्ति से जाति का संचालन होता है। जहाज़ी फ़ौज के प्रसिद्ध सेनाध्यक्ष हीरोज ने पोर्ट आर्थर युद्ध मे मरने से पहिले एक पद बनाया था जिसमे जापानियों के हृदय का स्वदेश-प्रेम भली भाँति दरसाया है।

"ज्यों अनन्त आकाश जगत् मे, फैल रहा है कर विस्तार॥१॥
उसी भाँति महाराज हमारे का हम पर छाया उपकार॥२॥
कितना जल समुद्र मे है यह नहीं किसी ने जाना है॥३॥
हमने जन्म-भूमि के ऋण को उसके समान माना है॥४॥
आज उऋण होने का दिन यह बड़े भाग्य से आया है॥५॥
आओ आओ धाओ भाई काहे बिलम लगाया है॥६॥

सहस्रों वर्ष के जातीय एके ने देश-प्रेम और राज-भक्ति को वर्तमान उच्चता पर पहुँचा दिया है। इस प्रबल शक्ति के समान जापान मे और कोई शक्ति नहीं है। बुशीदो शब्द से यही भाव प्रकाशित होता है। धर्म के रूप मे इसका नाम शिन्तो है। जो

जाति देश-प्रेम और राज-भक्ति को नहीं समझ सकती वह जापान को भी नहीं जान सकती ।

जापानी जब कभी अपने विरुद्ध किसी हानिदायक घटना का भय करते हैं उस समय मिलकर वे एक ठोस पदार्थ के समान बन जाते हैं । "स्वदेश-रक्षा में एक दिन का आलस्य सैकड़ों वर्ष का पश्चात्ताप छोड़ जाता है"। जापान-नरेश का यह एक वचन ही उनकी राजनीति और हृदय का भाव प्रकाशित करता है ।

भारत वर्ष के लोग नई नई बातें ग्रहण करने में झिझकते हैं। उनको भय है कि ऐसा करने से उनका सनातनत्व नष्ट हो जायगा । इसके विरुद्ध जापानी समझते हैं कि अच्छी बातें चाहे किसी देश की क्यों न हों, ग्रहण करने से देश का उपकार ही होता है । वे अपने देश की उन्नति को थोथे अभिमान से रोकना नहीं चाहते ।

यह एक साधारण नियम है कि देश में भाँति भाँति के विचार वाले मनुष्य होते हैं; परन्तु देश-रक्षा और स्वजाति-सम्मान में सब मिलकर एक रूप हैं । प्रतिनिधि-सभा में अनेक झगड़े उठा करते हैं । चीन के साथ लड़ाई छिड़ने से पहिले कितना वादानुवाद हुआ था । परन्तु जब कार्य करने का समय आ गया तब सब प्रजा एक स्वर से राजकीय विचारों की सहायक बन गई । समाचार-पत्र-सम्पादकों ने भी अपना स्वर बदल दिया । क्यूशू से लेकर होकेडो तक सब प्रजा का एक मत था । इस एकता काही प्रभाव है कि ऐशिया की यह जाति प्रबल सभ्य यूरोपियनों के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर चलती है और ज्यों ज्यों देश का गौरव बढ़ता जाता है जापानी अपने इस जातीय आचरण को और भी दृढ़ करते जाते हैं ।

देश पर युद्ध का भार पड़ने से अवश्य तंगी आती है, परन्तु चीन के साथ लड़ते समय जापान ने अपनी दृढ़ता खूब दिखाई

और सब से अधिक अपनी जातीय योग्यता रूस-युद्ध में प्रकाशित की। सब राजनैतिक सभाओं ने एक प्राण होकर अपने देश की प्रतिष्ठा के लिए चेष्टा की। युद्ध के लिए बड़ी बड़ी रक़मे मँज़ूर करने में किसी प्रकार की हिचर मिचर न की गई—यद्यपि रुपया एकत्र करने में कुछ कठिनता भी पड़ती थी। लड़ाई के आरम्भ से ही देश के ज्ञानवान् बड़े बूढ़ों की सभा बैठी थी जो अपने प्राचीन तजुरबे से राजसभा और प्रजा की प्रतिनिधि-सभा दोनों को सहायता देती थी। जितने राजनैतिक विचारों के मुखिया थे सब राजसभा की सहायता करते थे।

अन्य देशों के साथ जिस नीति का व्यवहार किया जाता है वह स्थिर है। राजसभा के मंत्री या सभासद बदलने में विदेशीय नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं होता। प्रजा की जो प्राइवेट सभा हैं वे भी समय पड़ने पर देशसेवा को ही अपना व्रत कर लेती हैं। मार्किस यामागाता ने एक बार जापानी पार्लीमेंट मे कहा थाः—

"अपने देश को स्वतंत्र रखना और पृथ्वी पर अपने देश का गौरव बढ़ाना हमलोगों का प्रधान कर्तव्य है। गवर्नमेंट को यह बात कभी नहीं भूलनी होगी और न प्रजा को अपने मन से यह बात बिसरानी चाहिए"।

मार्किस ईटो जापान के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पुरुष हैं। उन को सर्वदा इस बात का ध्यान रहता है कि देश मे एकता का बल सब से प्रबल रहे। "राजनीति-सम्बन्धी सब सभाओ का प्रधान लक्ष्य यही है कि किसी प्रकार देश की भलाई हो, प्रजा को सुखप्राप्त हो। सरकारी पद योग्यता के अनुसार लोगों को मिलने चाहिएं; इस से हाकिमों में उत्साह फैलेगा और देश के लोग योग्यता प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे। अयोग्य कर्मचारियों को राज-सेवा में रखना बड़ी भूल की बात है। केवल शिफारिस के सहारे लोगों को कभी भरती न करना चाहिए। जिन कर्मचारियों को केवल किसी विशेष समुदाय

से ही काम पड़ता है उन्हे योग्यता के सिवाय उस समुदाय की प्रसन्नता प्राप्त करना आवश्यक है। रिशवत, ख़ुशामद अथवा शिफ़ारिस से किसी की पदोन्नति न होनी चाहिए। जितनी राजनैतिक सभा हैं उनको अपना प्रबन्ध बहुत उत्तमता से चलाना चाहिए। आपस में विरोध न उठने पावे क्योंकि विरोध का फल बहुत ख़राब होता है। सभाओं को यह भी स्मरण रखना चाहिए कि देश-सम्बन्धी बातों को वे अच्छे प्रकार समझें और लाभ हानि पर पूरा ध्यान देकर तब गवर्नमेंट की सहायता करें। अंधे सहायकों की अपेक्षा नेत्रवालो से सर्कार को अधिक लाभ पहुँचता है।"

राजनैतिक लोग देश काल को समझ कर अपना काम करते हैं, जैसा कि एक सभा के इस प्रस्ताव से सिद्ध होगा।

"वर्तमान मन्त्रि-सभा देशी और विदेशी कार्यों को ठीक ठीक चलाने मे असमर्थ हैं जिस से प्रजा का अपनी प्रतिनिधि-सभा की भविष्यत् की बड़ी चिन्ता हो गई है। इस सभा को यह आवश्यक हुआ है कि जिन लोगों के कारण कुप्रबन्ध की शङ्का हुई है उनका नाम प्रकाशित करदें। परन्तु अब सरकारी सेना में योग देने के लिए राजाज्ञा प्रचारित हो चुकी है और अब राज्य के लिए एक ऐसा समय आ उपस्थित हुआ है जैसा पहिले कभी नहीं हुआ था। इसलिए, यह सभा प्रस्ताव करती है कि अब किसी उचित समय के लिए, अपना विचार रख छोड़े, और जिस काम के लिए लड़ाई छिड़ी है उसके लिए खर्च मंज़ूर करने में बाधा न दे"।

देश-रक्षा के लिए केवल फ़ौजी प्रबन्ध ही काफ़ी नहीं होता, वरन् देश पर विदेशियों के सब प्रकार के प्रभाव रोके जाते हैं। देश के व्यपार को स्थिर रखने के लिए सर्वत्र वकील रक्खे जाते हैं। जहाज़ो की बढ़वारी के लिए उन कम्पनियों को सर्कारी सहायता दी जाती है।

देश-प्रेम का जापानियों में बड़ा बल है। इसके साथ राजभक्ति ने मिलकर उनका उत्साह और भी बढ़ा दिया है। जिस देश को वे प्रेम करते हैं और जिस राजा का वे सम्मान करते हैं ये दोनों विचार आपस में ऐसे मिश्रित हैं कि अलग अलग नहीं हो सकते। ये दोनों बातें तब भी मौजूद थीं जब वर्त्तमान प्रजा के पूर्वज वर्त्तमान महाराज के पूर्वजों का सम्मान करते थे। उन पूर्व पुरुषों की आत्मा अब भी प्राचीन प्रेम को स्थिर रखने पर दृष्टि रखती है।

मिस्टर ओकूकुरा ने लिखा है—"जापानी प्रजा का एक विश्वास और एक विचार है। चीनियों के स्वभाव और जापानियों के स्वभाव में बड़ा अन्तर है। यहाँ की राजगद्दी सर्वदा से पवित्र समझी गई है कि प्रबल शोगन ने भी राजगद्दी पर बैठने का इरादा नहीं किया—यद्यपि उनके हाथ में देश का पूरा पूरा अधिकार था। एक शोगन की कविता में निम्नलिखित भाव का पद है:—

चाहे सूखे जलनिधी। रजसम गिरि ह्वै जाइ।
तऊ जापान-नरेश सों। हों फिरिबे को नाइ॥

एक बड़े सैनिक अफ़सर ने कहा था—"स्वदेश प्रेम ही जापान का मुख्य धर्म है। जापानी अपने अपने राज-परिवार तथा अपने पुरुषों का पूजन सब से बढ़कर समझते हैं। जो सिपाही स्वदेश-रक्षा में मर गये हैं, उनके श्राद्ध के दिन बड़े उत्साह से उत्सव किया जाता है। उसका नाम "यासू कुनीजिंजा" है। जापानी स्वदेश-रक्षा में प्राण देना अपना सर्वोपरि धर्म मानते हैं।

प्रजा मे स्वदेश प्रेम होने से बड़ा भारी लाभ यह है कि जापानी फ़ौजी अफ़सरों को अपने सिपाहियों की वीरता मे किसी प्रकार का सन्देह नही रहता और देशी हाकिमों को प्रजा-विरोध का भय नहीं होता। स्वदेश-प्रेम ने जाति को एक बना दिया है और इस एके ने ही जापान को आज सर्वोच्च बना दिया है।

वैरन कनेको का कथन है—"जब जापानी किसी विदेशीय सभ्यता की बात को देखते हैं तब उसका उन पर तीन प्रकार का

प्रभाव पड़ता है। पहिले वे उसकी नक़ल करते हैं—और पूरी पूरी नक़ल करते हैं। कुछ दिन पीछे उसके लाभ हानि का ज्ञान प्राप्त करते हैं और तब उस में से सार और लाभदायक बातें को छांट लेते हैं। जापान-परिवर्त्तन के इतिहास मे ये बातें बहुत प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं।

शिक्षा-प्रणाली में भी स्वदेश-प्रेम का ध्यान रक्खा गया है। महाराज का जो व्याख्यान शिक्षा के सम्बन्ध में है उस में स्वदेश-प्रेम भरा हुआ है। शिक्षक और विद्यार्थी दोनें की उन्नति का ध्यान है। शारीरिक व्यायाम पर इसी लिए अधिक ध्यान दिया जाता है कि बल के द्वाराही देश की रक्षा हो सकती है। जापानी अपने छोटे शरीरें को बढ़ाने की चेष्टा में लगे हुए हैं। बीस वर्ष से पहिले किसी को तम्बाकू पीने की आज्ञा नहीं है। कम उम्र के बालकें को तो दण्ड देना होता ही है परन्तु जो दुकानदार इन के हाथ तम्बाकू बेचता है तथा जिन के मा-बाप ने अपने बच्चों को इस दुर्व्यसन की आदत पड़ जाने दी है उन को भी सज़ा होती है।

क्येटो में अध्यापक-सभा जो व्याख्यान दिया गया था उसको पढ़ने से जापानी शिक्षा की सदिच्छा मालूम हो सकती है—

"शिक्षाप्रचार का मूल उद्देश यह है कि जाति में ऐसी योग्यता उत्पन्न हो जाय जिस से हमारी प्रजा देश का धन बढ़ा सके और अन्य देशों में हमारा जातीय बल प्रकाशित हो। चीन के साथ युद्ध करके हमने अपना बल और गैारव अन्य जातियें को दिखा दिया है। अब व्यापार और शिल्प-विस्तार से हम अपने देश का वैभव बढ़ा सकते हैं। जिस देशभक्ति का हम २५०० वर्ष से आराधन कर रहे थे उसने अब अपना फल दिखा दिया है। हम को उचित है कि शिक्षा प्राप्त करके अपने जातीय गुण और बल को और भी पुष्ट करें"।

उपर्युक्त अध्यापक सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए थे—

(१) विद्यार्थियों में जातीय-भाव और देश-प्रेम की वृद्धि करना।

(२) जापानी वर्ण-माला और लेख-प्रणाली में सुगमता करनी।

(३) स्त्री-शिक्षा की उन्नति।

(४) सैनिक-शिक्षा और शारीरिक-बल विस्तार।

प्रत्येक सूबे में स्वदेश प्रेम की शिक्षा दी जाती है और सज्जन होने का उपदेश दिया जाता है। प्रजा जिस पद के लिए किसी भले मानुष को चुनती है उसे वह पद ग्रहण करना होता है और अच्छे प्रकार उस कार्य को निबाहना होता है। जो लोग ऐसे पद को ग्रहण करना स्वीकार नहीं करते, उनको केवल धन-दण्ड ही नहीं होता वरन् वे सज्जन भी नहीं समझे जाते तथा उनको टैक्स भी पहिले से अधिक देना पड़ता है।

जब प्रजा में से लोग लड़ने को बुलाये गये तो सर्कार से उन को किसी प्रकार की तङ्गी नहीं दिखाई गई; सब लोग ख़ुशी ख़ुशी अपना सब काम छोड़ कर फ़ौज में जा मिले। देश-प्रेम के लिए स्वार्थ त्याग के अनेक उदाहरण जापानियों के प्रसिद्ध हैं। इम्पीरियल गार्ड का एक रिज़रविस्ट फेरी वालों की तरह ओषधि वेचने का काम करता था। जिस समय उसकी फ़ौज में बुलाहट हुई वह घर पर न था। उसकी मा ज़िलाधिपति के पास गई और कुछ घंटे की मुहलत प्राप्त की। घर के सब बर्तन भांड़े वेचकर १२ आने पैसे संग्रह किये और बेटे की तलाश में चल निकली अपने छोटे बेटे को दूसरी ओर रवाना किया। जब वह पैसे ख़र्च हो गये और बेटे का पता न लगा तब कपड़े बेचे और फिर तलाश करने चली अन्त को उसका पता चला और साथ लेकर टोकियो में हाज़िर हुई। विदा होते समय उसे अपने बाल और एक फौजी पुस्तक अपना स्मरण चिन्ह स्वरूप दिया। प्रजा का ऐसा भाव ही जापान की उन्नति का कारण हुआ है। जापानी देश-सेवा करने के प्रेमी भी हैं और कर दिखाने के लिए बड़े उतावले भी हैं। ग़रीब अमीर सब स्वदेश के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने के

लिए प्रस्तुत रहते हैं। लड़ाई मे राजा और प्रजा एक भाव से युद्ध करते हैं। अमीर लोग ग़रीब सिपाहियों के स्त्री बच्चों की सब भाँति ख़बर लेते हैं। ग़रीब से ग़रीब भी युद्धकाल में सहायता देता है।

रूस के साथ युद्ध छिड़ने का समाचार देश में छिड़ते ही सब भाँति की सहायता के लिए प्रजा तैयार हो गई। गवर्नमेन्ट ने ख़र्च के लिए प्रजा से जो क़र्ज़ माँगा उसका ५ गुना देने के लिए लोग तैयार थे। जो चन्दा एकत्र हुआ उसमें सब से पहिले महाराज ने अपना निज धन दिया, फिर राजा और धनी मानी लोग सहायक हुए, उनके सिवाय किसान, मज़दूर, दुकानदार, और नौकर चाकर सब अपना बचा बचाया धन चन्दे में देने लगे। स्कूल के लड़के भी अपने जेब-ख़र्च के पैसे लेकर ख़ज़ाने में पहुँचे। अड़ौसी पड़ोसी और गाँव के नंबरदार सिपाहियों के बाल बच्चों की रक्षा करने लगे। नंबरदारों ने भेज छोड़ दी, डाक्टरों ने इन बाल बच्चों का मुफ्त इलाज़ किया। अनाथ और विधवाओं के लिए फंड खुला। उसमें एक दम २,६०,००० पौंड एकत्र हो गये। लड़ाई मे जीत की ख़बरें इस इच्छा से नहीं सुनाई जाती थी कि लोग धोखे में फँसे रहें, वरन साथ ही साथ अपनी हार की ख़बरें भी सुना दी जाती थीं।

देश जब युद्ध में लगा हुआ था तब भी प्रजा के मन में घबड़ाहट न थी। उन्हें अपनी सफलता का पूर्ण विश्वास था। व्यापारियों की बड़ी सभा ने एक विज्ञापन दिया था जिस में एक वचन यह भी था:—

"व्यापारियों को अपने काम में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए, उनको पूर्व की भाँति सब भाँति का सुभीता है। लड़ाई के कारण किसी प्रकार की बाधा पहुँचने की शंका नहीं है। जापानी लोग एक महाबली शत्रु के साथ युद्ध में व्यस्त रह कर भी बड़े शान्त-भाव से अपने घरेलू कामों में लगे हुए हैं।"

विदेशी यात्रियों को प्रजा का यह भाव बड़े आश्चर्य का कारण हुआ था।

फ़ौजी और जहाज़ी सिपाहियों ने देश-भक्ति के अनेक उदाहरण दिखाये हैं। कमांडर हिरोज़ का नाम इतिहास में सर्वदा अंकित रहेगा। इसने पोर्ट आर्थर का मार्ग बन्द करने के लिए जान बूझ कर प्राण दिये थे। कप्तान हिरोज़ के मरने पर उसके बड़े भाई ने अपनी भावज को इस प्रकार का तार दिया था—

"२७ मार्च के दिन भाई को पोर्ट आर्थर का मुँह बन्द कर देने की आज्ञा मिली थी। उसने वहाँ अपनी अत्यन्त चेष्टा की और प्राण दे दिये। चीफ़कमांडर टोगो और अन्य सब ने मेरे साथ सहानुभूति प्रकाश की है। हमारे पित्रगण आज कैसे प्रसन्न होंगे कि उनके कुल में एक ऐसा वीर हुआ। भाई की मृत्यु ने हमारे घराने का गौरव बढ़ाया है। प्रिये! शान्ति ग्रहण करो।"

कप्तान हिरोज़ ने अपना जहाज़ डुबाने से पहिले चीनी-भाषा में एक कविता लिखी थी जिसका भाव इस प्रकार है—

"हे परमेश्वर कृपा करो वरदान यही माँगा दीजे।
सात जन्म तक हमें सदा जापान माँहि पैदा कीजे॥
सदा देश की सेवा में ही प्राण हमारे लगा करें।
अपनी जन्म-भूमि के कारण इस विधि बारंवार मरें॥
जीतेगा जापान, हमारे मन मे पूरा निश्चय है।
चलते हैं समुद्र तह में अब हृदय मुदित अरु निर्भय है॥"

मरते मरते जो दृढ़ता और सहनशीलता उसने दिखाई वह सराहनीय थी।

ख़्वाहमख़्वाह प्राण दे देना मूर्खता का लक्षण है। लेफ़्टनेंट कमांडर यूसा ने हमला करने से पहिले अपने सिपाहियों को समझा दिया था, कि वीरोचित कर्म करना सच्ची देश सेवा है। उसने कहा था "सिपाहियों को अपने मन में अपना ही ध्यान न रखना चाहिए, वरन यह भी सोचना चाहिए कि लड़ाई से हमारा असल मतलब क्या है। नाम करने की ख़ातिर वृथा प्राण दे देना बड़ी भूल है। हम

यहाँ मरने के लिए नहीं आये हैं, विजय करना हमारा उद्देश है। जब तक एक भी सिपाही जीता है उस असल बात को ही ध्यान में रखना चाहिए।"

"आसामा" जहाज़ के कप्तान ने दुश्मन पर चार्ज करने के समय शिक्षा दी थी—"यदि अपना धर्म्म निबाहने मे तुम्हारा बाँया हाथ कट जाय तो दहिने से लड़ो, जो दहिना भी निकम्मा हो जाय तो पैरों से काम लो, जब पैर भी मारे जाँय तो सिर को काम में लाओ। जब तक शरीर में प्राण हैं देश-सेवा किये जाओ।" चमलपू की लड़ाई के पीछे उपर्युक्त कप्तान ने लिखा था—"मैं आप की बधाई के लिए धन्यवाद देता हूं। मेरा यहाँ आने में दृढ संकल्प यही था कि मैं शत्रु के उस जहाज़ (वरियान) को नष्ट करूँ, यदि मैं इस काम में सफल न होता तो मैं इस संसार मे जीता रहना बहुत ही लज्जा-जनक समझता। हतसफल होने की दशा में मैंने आत्मघात करना विचार लिया था"

इस से सिद्ध होता है कि बिना समझे बूझे लड़ाई में कट गिरना सिपाहियों का काम न था। वे अपने प्राण बचा कर देश-सेवा करना चाहते थे। एक पुराने सामुराई ने कहा था—"लोग समझते हैं कि हम लड़ाई करने के बड़े शौक़ीन हैं। हम युद्ध-प्रेमी नहीं हैं। केवल अपनी धर्म-रक्षा के लिए हमको लड़ना है।"

एक वीर सिपाही ने लिखा था—"वीरता की तुम चाहो जितनी प्रशंसा करो। परन्तु ऐसा कोई ही होगा जो अपने हृदय में यह इच्छा न रखता हो कि उसके गोली का थोड़ा सा घाव हो और वह घर को लौटा दिया जाय तथा फिर लड़ाई पर न भेजा जावे, परन्तु जब हमको अपनी स्वदेश-रक्षा का ध्यान आता है तब हम अपनी प्रायः सब इच्छाएं भूल जाते हैं और अपनी समस्त शक्ति और इच्छा में युद्ध में लिप्त हो जाते हैं"। फ़ौजी और जहाज़ी सब सिपाहियों की रग रग में स्वदेश-प्रेम घुसा हुआ है। छोटे से छोटे सिपाही का

विश्वास किया जाता है कि वह अपना काम बिना कहे करेगा और जो कुछ उसके सामर्थ्य मे होगा कर दिखावेगा । जो कुछ आज्ञाएं निकलती हैं वे अक्षर अक्षर सत्य होती हैं। प्रौफ़ेसर उकीता ने लिखा है—"हम लोगों का जातीय-भाव संचालन करना किसके हाथ में है ? वे तीन बातें हैं। राज-भक्ति, स्वदेश-प्रेम और जातीय उन्नति की अभिलाषा। यदि हमारे देशवासियों को उन्नति का ध्यान नहीं होता तो जापान को यह सम्मान कदापि प्राप्त नहीं होता । हमारी फ़ौज हार मानने की अपेक्षा प्राण देने मे बड़ी प्रसन्न होती है। देश के लिए प्राण देना उस मृत्यु से बहुत अच्छा समझा जाता है जो केवल अपनी नामवरी की चेष्टा मे प्राप्त होती है।"

मेजर जनरल साती ने चीन-युद्ध में बड़ा नाम किया था। वह कहते हैं—"वर्तमान युद्ध में जितनी तादाद हमारी फ़ौज की है और हम जितना लड़ाई के भेदों से जानकार हैं तथा जिस भाँति का सामान हमारे पास है उसमे हमसे और रूसियों से कुछ अधिक अन्तर नहीं है । दोनों देश की फ़ौजें सब बातों में एक ही सी हैं परन्तु हम में जो उत्साह विद्यमान है, वह शत्रु को प्राप्त नहीं है और यही हम में अधिकता है"।

नीचे लिखे दो उदाहरण ऐसे हैं जिनसे जापानी-योद्धाओं के उत्साह का परिचय मिल सकता है। एक अफ़सर ने तपीशान की लड़ाई के बाद रणक्षेत्र से अपने भाई को एक पत्र लिखा था। यह भाई लेफ़्टनेन्ट था और एक रजिमेंट का निशान लेकर चलता था। आगे जाकर इसी लेफ़्टनेन्ट ने एक कम्पनी के साथ पोर्टआर्थर मे प्रवेश किया था और सख़्त घायल हुआ था। पत्र इस भाँति था— "तुम्हारा २४ जुलाई का पत्र मुझे आज मिला। उसमें यह वाक्य पढ़ कर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। 'संसार मे दो दिन पहिले या पीछे सब को मरना है। कैसा अच्छा हो यदि हम अपने इस जीवन को उत्साह सहित स्वदेश-सेवा में लगा दे । मैं यथाशक्ति इसका पालन

करूँगा । और तुम देखोगे कि मेरी आत्मा विदेह होकर पोर्टआर्थर में प्रवेश करेगी । यद्यपि मेरा शरीर इस संसार मे नहीं रहेगा परन्तु मैं अपने मन से राजभक्ति कभी दूर न करूँगा और जन्म जन्मान्तर में जापानी होने का संकल्प रक्खूंगा । मैंने कितने ही भयानक युद्धों मे योग दिया है। युद्ध करने से पहिले मैं स्नान करता हूं, फिर शुद्ध देह और शुद्ध मन से, शान्तिपूर्वक, युद्ध मे प्रवृत्त होता हूं" ।

वैरी के प्रवल आक्रमण से जब जापानी फ़ौज पीछे हट आती है और फिर आगे वढ़ती है इस पर उस अफ़सर ने लिखा है । पीछे हटते ही फिर हमारे हृदय में जोश ने असर किया । चिक्कारी मार कर हम दुश्मन के ऊपर चढ़ गये और उसी दम शत्रु के पैर उखाड़ दिये । उनके मोरचे में घुस कर हाथो हाथ युद्ध होने लगा । वात की वात में रूसी पोर्ट आर्थर की ओर भागे । भला स्वदेश प्रेमियो के उत्साह के आगे कौन ठहर सकता है ? प्रातः काल ही वैरियों के मुर्दों के चबूतरे पर हमारा "उदित सूर्य" फहराने लगा । जिसके देखते ही सिपाही लोग युद्ध के सब क्लेशो को भूल-कर "वंजाई-वेन्जाइ" उच्चारण करके जयध्वनि करने लग गये । मुझे इस समय भी अपने साथी सिपाहियों की मृत्यु का ध्यान था । अपने स्वदेश का स्मरण आता था । जन्म-भूमि मे जो आनन्द भोगा है उसका स्मरण होता था । परन्तु मैं इस मोह में फिर पड़ना नहीं चाहता । देश पर इस समय घोर विपत्ति उपस्थित है और हम सिपाही लोग अपने देश की भलाई के लिए प्राण देने आये हैं । देश में शान्ति होने की आशा भी हमारे ही द्वारा संभव है । हम पर चाहे जैसे क्लेश और दुःख क्यों न पड़ें, हम उनको खुले मन से सहेंगे" ।

पत्र के अन्तिम शब्द ये थे—"आज रात को आकाश मेघाच्छन्न है । चन्द्रदर्शन भी नहीं होता, मेरा विश्वास है कल मेरे जीवन का अन्तिम युद्ध होगा । मैंने गोलियों के एक बक्स को खाली कर रक्खा है । वही मेरा कफ़न होगा । कल मैं इस सन्दूक को लड़ाई में

अपने साथ ले जाऊँगा। यदि मैं कल मर गया तो मेरी हड्डियाँ उसी सन्दूक़ मे घर पहुँचेंगी"।

पोर्टआर्थर का मुँह बन्द करने को जो जापानी जहाज़ डूबने के लिए जाते थे उनमे से एक रूसियों के हाथ आ गया। इसमें एक मत्स गोरो मन्दा नामक फ़ौजी इंजीनियर भी था, इसने लिखा है—"रूसियों ने यह जानना चाहा कि मैं फ्रेंच भाषा बोल सकता हूँ कि नहीं, उत्तर में मैं कुछ न बोला। तब उन्होने कहा कि क्या मैं अँगरेज़ी जानता हूँ ? पहिले तो मैं चुप रहा परन्तु फिर सोचा कि जहाजी अफ़सर के लिए यह बात लज्जाजनक होगी यदि वह एक भी विदेशी भाषा न जानता होगा—यही सोचकर मैंने उत्तर दिया कि मैं थोड़ी थोड़ी अगरेजी जानता हूँ।" देखिए इस वाक्य में कैसा भाव पाया जाता है। जापानी इस बात को भी समझते हैं कि उनसे विदेशी भाषा जानने की आशा की जाती है। इस इंजीनियर की और बातें भी बड़ी अनोखी हैं। क़ैद की दशा में इसके पास दो और जापानी क़ैदी लाये गये, वे पोर्ट आर्थर के मुँह को बन्द करने के लिए डूबने वाले "सगामी मारू" नाम के जहाज़ पर से पकड़े गये थे। मैं इनके साथ बात चीत नहीं कर सकता था; परन्तु मैंने उनको इस बात की ताकीद कर दी कि वे अपनी फ़ौज का कोई भेद न प्रकाश करें"। इसी भाँति उसने एक दूसरे क़ैदी अफ़सर को ताकीद की कि वह बिलकुल चुप रहे "यानी कुरा को मैंने समझाया कि उसपर चाहे जैसी विपत्ति क्यों न पड़े वह अपने जहाजों का कुछ पता न देगा। उसका दृढ़ उत्तर पाकर मुझे बड़ी निश्चिन्ताई हुई"। उसे यह भी चिन्ता थी कि कहीं उसके मुँह से ही कोई बात न निकल जाय"। उसके घायल हाथ का आपरेशन होने वाला था परन्तु वह क्लोरोफ़ार्म के सूँघने से इस लिए भय करता था कि शायद नशे मे उसके मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय जिससे रूसियों को कोई लाभदायक सूचना मिल जाय। इसलिए उसने अपने साथियों से कह रक्खा था कि जब

यह कोई ऐसी वैसी बात बके तो उसे जगा दिया जाय। जब जापानियों के हाथ मे पोर्ट आर्थर आ गया तब यह जापानी अत्यन्त प्रसन्न नहीं हुआ, जैसा कि उसने लिखा है। "निस्सन्देह मैं क़िला फ़तह होने पर बहुत प्रसन्न था परन्तु मुझे यह सोचकर बड़ी शर्म आती थी कि अफ़सर लोग मुझे यहाँ क़ैदी की सूरत में देखेंगे। मैं यदि अपने कार्य मे लड़कर मर गया होता तो बहुत अच्छा होता। मैं सोचता था कि अफ़सर लोग मुझसे क्या कहेंगे? मैंने क़ैदियों की ओर से अपने अफ़सरों को जीत की बधाई दी और कहा—हम लोगों को इस बात का बड़ा ही शोक है, कि हम क़ैद में पड़ गये, हमको भय था कि हमारी इस दशा से देश का अपमान होगा"।

अपने देश और जाति का अभिमान, तथा अपनी जातीय उन्नति का विचार जापानियों को अल्पकाल-स्थायी नहीं था। उनके इस गुण की परीक्षा सब तरह से हो चुकी है और वे सर्वदा अपने विचार में दृढ़ निकले हैं। देश का भविष्यत् स्वदेश-प्रेम ही पर निर्भर है और जापान का एक एक आदमी स्वदेश भक्त है। अपने निज का सब लाभ त्यागकर देश के लिए प्राण देना इस जाति का मुख्य गुण है। मार्क्विस ईटो ने लिखा है—"जापान अपना हक़ प्राप्त करने में सर्वदा दृढ़चित्त है और वह बड़ी उदारता से अन्य जातियों का हक़ पहिचानने के लिए भी उपस्थित है"।

आजकल विलायत में एक प्रकार के मनुष्य हैं जिनका यह सिद्धान्त है कि संसार मे मनुष्यो को एक समान रहना चाहिए। किसी के पास अटूट धन रक्खा रहे और किसी को पेट के लिए रोटी भी न जुड़े—यह बड़ा अन्याय है। संसार में सब पदार्थ परमात्मा के हैं उनका उपभोग सब कोई कर सकते हैं। यूरोप में इस सिद्धान्त के मनुष्य सोशियेलिस्ट कहलाते हैं। अमरीका से इस सिद्धान्त का असर जापान में भी पहुँचा है। यूरोप के मज़दूर लोग आपस में एका करके अपनी तनख़ाह और मज़दूरी

बढ़ा लेते हैं। यह बात धीरे धीरे जापान में भी आती जाती है। परन्तु इस देश के राजनीतिज्ञों का विश्वास है कि यदि जापान के मज़दूर विलायत वालो की नक़ल करने लगेंगे तो देश के कुल कारख़ानो को बड़ा नुक़सान पहुँचेगा। इसी से पुलिस को अधिकार दिया गया है कि ऐसी सभा न होने पावे, तिस पर भी सभा होती रहती हैं। एक बार २० हज़ार मज़दूर एकत्र हुए थे और यह प्रस्ताव पास किया था—

"हम जापान के मज़दूर इस सभा में प्रस्ताव करते हैं कि—

(१) सर्कार को उचित है कि मज़दूरों के हक़ की रक्षा करे और मज़दूरी के नियम स्थिर करे।

(२) लड़के और स्त्रियों की मज़दूरी का ख़ास नियम होना चाहिए।

(३) हम लोग अपने काम को अच्छे प्रकार कर सकें इसलिए मज़दूरों की तालीम का नया बन्दोबस्त होना चाहिए।

(४) हम लोग अपनी भलाई के लिए यह चाहते हैं कि हमें कुछ राजनैतिक अधिकार मिलें और पार्लीमेंट में वोट देने का इख़्तियार मिले।

(५) प्रत्येक वर्ष तीसरी अपरैल को इस सभा का अधिवेशन हुआ करेगा।"

एक और सभा है जो जापान मे समता प्रचार करने की चेष्टा में है। ग़रीब और अमीरों को एक सा बना कर वह संसार भर का वैर-भाव दूर करना चाहती है। सभा के मुख्य विचार ये हैं—

(१) कोई मनुष्य किसी जाति का या किसी राज्य का क्यों न हो सब में भ्रातृ-भाव होना चाहिए।

(२) जल और स्थल की फ़ौज तोड़ कर सब राज्यो को आपस में शान्ति स्थापन करनी चाहिए।

(३) वर्ण-भेद बिल्कुल उठा देना होगा।

(४) जिस पृथ्वी और धन से लाभ प्राप्त हो सकता है उस पर किसी का अधिकार न होगा।

(५) पुल, नहर, जहाज़ और रेल ये किसी की निज की चीज़ न होगी।

(६) धन सब में बराबर बराबर बाँट दिया जायगा।

(७) राजकीय विचारों में सब को समान अधिकार होगा।

(८) शिक्षा का प्रबन्ध ऐसा होगा कि सब एक तरह पढ़ सकें।

वर्तमान में उपर्युक्त विचारों का पूर्ण करना कठिन है इसलिए इनसे पहिले इन बातों पर ध्यान दिया जायगा।

(१) रेल पर सब देशवासियों का एक सा अधिकार होगा।

(२) गैस, इलैक्ट्रिसिटी, सिटी-रेलवेज़ अब ख़ास आदमियों की वस्तु हैं। वे सब म्यूनिसिपेलिटी की समझी जायँ।

(३) जो चीज़ लोकल गवर्नमेंट या गाँव, शहर और क़सबे की है वह किसी एक आदमी के हाथ न बेची जाय।

(४) शहर मे जो फ़ालतू ज़मीन हो वह किसी आदमी के हाथ न बेची जाय। वह म्यूनीसिपेलटी के अधीन रहे।

(५) पेटेंट करने वाले को कुछ इनाम देकर सब किसी को इख़्तियार दिया जाय कि उस नई युक्ति से लाभ प्राप्त करे।

(६) ऐसा क़ानून बनाया जाय कि मकानों का किराया उनकी लागत के अनुसार स्थिर हो।

(७) ठेका किसी काम का किसी एक आदमी या कम्पनी को न दिया जाय।

(८) चीनी और शराब आदि पर जो टैक्स है वह उठा दिया जाय, केवल आमदनी पर महसूल रहे और जब ख़र्च की ज़रूरत हो टैक्स लगा लिया जाय।

(९) बच्चों के लिए शिक्षा की अवस्था बढ़ा देनी चाहिए। जब तक वह पूर्ण व्याकरण न पढ़ लें, फ़ीस कभी न लगानी चाहिए। शिक्षा का सब भार सर्व साधारण के हिसाब में से लगाना चाहिए।

(१०) मज़दूर लोगो के लिए एक अलग महकमा रहे। जिस में सब तरह की मज़दूरियों का लेखा रक्खा जाय।

(११) जिस उम्र मे लड़कों को पढ़ना चाहिए उसमें उनको कदापि मज़दूरी पर न लगाना चाहिए।

(१२) जिन कामों से स्त्रियों का शरीर और आचरण बिगड़ता हो उनमें उन्हें न लगाना चाहिए।

(१३) जवान लड़के लड़कियाँ रात को काम न करने पावें।

(१४) इतवार के दिन सब काम बन्द रहें और ८ घंटे से अधिक किसी दिन काम न हो।

(१५) यदि काम काज करने मे किसी का अङ्ग भङ्ग हो जाय तो उस को शेष जीवन के लिए पेंशन दी जाय।

(१६) मज़दूर अपनी सभा कर सकें और अपने क्लेशों को दूर करने का उपाय करें।

(१७) बीमा-कम्पनी का लाभ एक ही आदमी न उठावे। यह सर्वसाधारण के प्रबन्धाधीन हो।

(१८) जोता किसानों के लिए भी क़ानून बने।

(१९) मुक़दमो का सब ख़र्च सरकारी हो।

(२०) सर्व साधारण को वोट देने का अधिकार हो।

(२१) संख्यानुसार प्रतिनिधि चुने जायँ।

(२२) वोट खुल कर और सीधी सीधी रीति से देना चाहिए।

(२३) देश भर से संबन्ध रखने वाली बात पंच-फ़ैसले के अनुसार की जाय।

(२४) प्राणदण्ड किसी को न दिया जाय।

(२५) बड़े लोगों की सभा (हाउस आफ़ पीअर्स) तोड़ दी जाय ।

(२६) धीरे धीरे फ़ौज कम कर दी जाय ।
(२७) पुलिस का वर्तमान आईन उठा दिया जाय।
(२८) समाचार-पत्रों का आईन उठा दिया जाय ।

इस सभा का यह भी सिद्धान्त है कि उपर्युक्त मन्तव्य धींगा मुश्ती से सिद्ध न किये जायँ बरन व्याख्यान और लेखों द्वारा इन का प्रचार किया जायगा ।

जापानी गवर्नमेन्ट समय पाकर आप मज़दूरों की ख़बर लेगी, परन्तु अभी जापानी कल-कारख़ानो की दशा इस योग्य नहीं है। सोशियेलिस्टों पर सरकार का ध्यान है और जब कभी मज़दूरी का सुधार होगा इन्हीं लोगों से इस काम में राय ली जायगी। सोशियेलिस्टों के सम्बन्ध मे जापानी सरकार की क्या राय है, वह इस समुदाय के एक समाचार-पत्र के पढ़ने से मालूम हो जायगी । १२ जून १९०४ के एक पत्र में प्रकाशित हुआ था—

"जब यह जान पड़ता है कि देश में २०० सोशियेलिस्ट है तब सर्कार को अवश्य बड़ी चिन्ता मे पड़ना पड़ता होगा। इस पत्र को बन्द कर देने की धमकी मिल चुकी है और इसका एक सम्पादक आज कल क़ैद में भी है। यदि सोशियेलिस्ट लोग भयानक कर्म प्रारम्भ करते तो सर्कार अवश्य पुलिस द्वारा इन लोगों को रोकती, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा काम नहीं किया है। क्या ये लोग युद्ध की निन्दा नहीं किया करते ? क्योंकि उनका सिद्धान्त है कि सब प्रकार का बल प्रयोग-सर्वदा अनुचित है । जापानी सोशियेलिस्ट बडे शान्तिप्रिय हैं। उनके लिए पुलिस की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। हम लोग अपना कोई काम गुप्त रीति से नहीं करते। यदि सर्कार हमारा दोष दिखा कर हमें ताड़ना

करेगी तो हम उसकी कभी कड़ी आलोचना नहीं करेंगे। परन्तु अन्याय हमको सहन नहीं होता, उस को हम गुप्त न रहने देंगे।"

शोसियेलिस्ट-पत्र अपने देश के बड़े राजनीतिज्ञ और प्रसिद्ध पुरुषों की निन्दा छापा करते हैं और इसके लिए वे दंड भी पाते हैं। परन्तु सर्कार ने इनके लिए कोई ख़ास क़ानून नहीं बनाया है। सोशियेलिस्ट लोगों की सब सभा सर्कार को मालूम हैं। एक प्रसिद्ध सोशियेलिस्ट ने लिखा है कि यह समुदाय नया नहीं है। इस देश मे समभाव से रहने का विचार बहुत दिनों से चला आता है। आज कल एक ऐसा सूबा विद्यमान है जहाँ सब लोग एकही विचार के हैं। इस प्रान्त का नाम रियूकिऊ है। इसमें ३६ टापू हैं जिनका क्षेत्रफल १७० वर्ग मील है और १ लाख ७० हज़ार आदमी इसमे बसते हैं। इस देश में सोशियेलिज़्म का प्रत्यक्ष दृश्य दिखाई देता है। इन लोगों को समभाव से रहते हुए सैकड़ों वर्ष हो गये। उनको लगान का बन्दोबस्त निराला ही है। इस बात को पढ़ कर सब को आश्चर्य होगा कि इस देश मे यह नियम है कि प्रत्येक ग्यारह वर्ष पीछे सब धरती काम करने योग्य मनुष्यों में बाँट दी जाती है। अपने अपने हिस्से के अनुसार उन को टैक्स देना पड़ता है। जोतने बोने से जो ज़मीन फ़ालतू बचती है उसमें केले बो दिये जाते हैं और फलों को सावधानी से रक्खा जाता है। जब अन्न नहीं रहता तो ये केले बाँट दिये जाते हैं। उन टापुओं में कोई बड़ा ज़मीदार नहीं है। न वहाँ झगड़े होते हैं न मुक़दमे चलते हैं। सब अपने हाथ पैर की कमाई खाते हैं। वे अपनी ज़मीन को न बेच सकते हैं न गिरवी रख सकते हैं। उनको केवल फ़सल से मतलब है। न वहाँ लगान है न बौहरे। वे सब स्वतंत्र हैं और अपना अपना दावा रखते हैं। सब से अच्छी बात यह है कि सब को भरपेट खाने को मिलता है। ग़रीब कोई नहीं है। वे लोग अपने देश मे वर्तमान-सभ्यता का प्रचार नहीं चाहते और अपनी दशा में खब मगन रहते हैं।

टोकियो के पास एक छोटा सा टापू है। यह टापू दो मील लम्बा और एक मील चौड़ा है। आब हवा यहाँ की बहुत अच्छी है। कहते हैं कि इस टापू को किसी विशप ने बसाया था। वहाँ की सब ज़मीन में सब प्रजा का बराबर हक़ है। सब बराबर जोतते बोते हैं। आपस मे किसी प्रकार का द्वेष नहीं है। सब भाई बहिन की तरह बड़े प्रेम से शान्त होकर रहते हैं जो सुख बड़े बड़े फिलासफ़रों के ध्यान में नहीं आया वह सैकड़ वर्ष से यहाँ के लोग प्रत्यक्ष भोगते हैं । न वहाँ कोई अमीर है न ग़रीब, किसी की कोई निज की जायदाद भी नहीं है । सब क धन एक सा है। देश में जो कुछ पैदा होता है उनका माल है इस टापू के घरानों की संख्या ४१ गिनी जाती है। एक एक घर में चाहे जितने आदमी हों, वे लोग न इस टापू को छोड़ कर कहीं जाते हैं और न किसी बाहिरी आदमी को अपने टापू में बसने देते हैं। ये लोग चावल नहीं बोते, केवल उन्हीं अन्नो की खेती करते हैं जो मेंह के जल से ठीक हो जाते हैं। आलू, ज्वार तथा साग तरकारी की खेती बहुत की जाती है। खेत के लायक़ ८० एकड़ धरती है जो बराबर के ४१ हिस्सों में बटी हुई है। उपज आवश्यकता के अनुसार बाँट ली जाती है । जो अन्न आवश्यकता से अधिक बचता है उसका चाँवल ख़रीद कर नये वर्ष के दिन, पितृ-पूजा के दिन, शादी ग़मी और अन्य व्यवहार के दिन बरतने के लिए बाँट दिया जाता है। इस टापू के लोग मछुए का काम भी करते हैं। इनकी ११ नाव हैं। वे साल भर मे तीन हज़ार येन की मछली पकड़ते हैं। यह धन भी ४१ जगह बाँट दिया जाता है। इस भाँति सब के पास बराबर बराबर धन है । यदि इनमें से किसी के ऊपर विपत्ति पड़ती है तो सब मिलकर उसकी सहायता करते हैं । इस जगह दो दुकानें भी हैं; एक में शराब और दूसरी में बर्तन रहते हैं। एक मदरसा भी है जहाँ पास के एक टापू से उस्ताद पढ़ाने के लिए आता है। उसे शामिल खाते में से चावल दिये जाते हैं और घर

का बुना कपड़ा—जो बारी बारी से घर घर की स्त्रियाँ बुन बुन कर देती हैं।

टोकियो के पास सोशियेलिस्टों का एक तीसरा गाँव और है। इसमे ६८० घर हैं और ये लोग खेती करने और मछली पकड़ने का काम करते है। ये अपनी जमीन को मिलकर बाँटे हुए हैं। पहाड़ की तराई में लकड़ी और घास बहुत पैदा होती है। ११ वर्ष हुए गाँव वालों ने १७० एकड़ में पेड़ बो दिये थे। अगले ५० वर्षों में इन पेड़ो से २० लाख येन की आमदनी होगी। गाँव के लोग १७७० एकड़ ज़मीन का टुकड़ा घास और जगल के लिए और तैयार कर रहे हैं। इस काम के लिए गाँव के लोगो से चन्दा किया जाता है और समुद्र की आमदनी का रुपया ख़र्च होता है। इस काम मे टापू भर की स्त्रियाँ काम करती है। उनको मज़दूरी दी जाती है। जंगल की आमदनी मे से स्कूल के लिए ख़र्च निकाला जाता है शेष मे से आधा जमा रखते हैं और आधे को ज़मीन दुरुस्त करने मे लगाते हैं। जमा रुपये मे बिना व्याज के रुपया उधार दिया जाता है। बच्चों को पढ़ाने का खूब शौक़ है। गाँववालों ने २० हजार येन ख़र्च करके एक मदरसे का मकान तैयार कराया है। ८२० लड़के शिक्षा पाते हैं। स्कूल के साथ दस एकड़ का एक बाग़ है। इसको विद्यार्थियों ने ही तैयार किया है। अच्छा अस्पताल और एक डाकृर भी इस टापू मे है। जल कल का भी प्रबन्ध है। नल बाँस के बने हुए हैं इनमे पानी खूब चलता है। सड़के यहाँ की टोकियो से भी अच्छी हैं। बूढ़े ज्वान, व्याहे क्वारे, लड़के लड़कियों, के अलग अलग क्लब हैं। सम भाव पर चलने वाले इन गाँवो की गवर्नमेंट भी प्रशंसा करती है और चाहती है कि अन्य गाँव के लोग भी इसी भाँति मिल जुलकर अपनी उन्नति करें। इसी निमित्त अच्छे गाँवों का वर्णन छापकर गाँव गाँव में पढ़ने के लिए बाँटा जाता है। इस वर्णन का कुछ आशय यहाँ प्रकाशित किया जाता है—

"हमारे २१ वें वर्ष में (१८८७ में) "शहर क़सबा और गाँवों के लिए एक क़ानून निकला था, और अपनी बस्ती का आप प्रबन्ध करना बताया गया था । ये क़ानून यूरोपियन आईन के अनुसार बनाये गये थे। केवल अपनी प्राचीन-प्रथा स्थिर रखने की ताकीद की गई थी । इस देश की प्रजा में पिछले ढाई हज़ार वर्ष से एकता चली आती है । उसी मूल पर अपना प्रबन्ध आप करना स्थिर किया था । उसका यह फल हुआ है कि कई गाँव आत्मशासन का काम बहुत अच्छा करने लगे हैं । हम उनमें से दो तीन गाँवों का वृत्तान्त यहाँ लिखते हैं ।

"यद्यपि हाकिमो की सहायता के बिना कोई समुदाय उन्नति नहीं कर सकता, परन्तु यदि हाकिमों को प्रजा का उत्साह न मिले तो भी कुछ नही हो सकता । चीबा सूबे के मिनामोता गाँव ने आत्मोद्योग का अच्छा उदाहरण दिखाया है । यह केवल तीन सौ घरो का गाँव है, इसका प्रबन्ध बहुत ही अच्छा है । एक अचरज की बात यह है कि रुपया जमा करने की पासबुक सब डाकख़ाने में रहती हैं । कोई अपने घर नहीं रखता । गाँव के सब आदमी कुछ न कुछ बचाने की चेष्टा करते हैं और उसे डाकख़ाने के सेविंगबैंक में जमा करते हैं । रुपया जमा कराने के लिए उन्हें डाकख़ाने नही जाना पड़ता । डाक-मुंशी आप आता है और घर घर से रुपया ले जाता है । लड़ाई के लिए जब प्रजा से रुपया उधार लिया गया था तो यहाँ की प्रजा ने औसत से अधिक रुपया दिया। ये लोग पंचायत करके राजसभा के लिए अपना प्रतिनिधि चुनते हैं । अपने गाँव का सब प्रबन्ध आप करते हैं । मदरसा आपस के चन्दे से चलता है । यह चन्दा अब १२,००० येन पर पहुँचा है । इसीके सूद से ख़र्च चलाया जाता है । फ़ीस किसी से नही ली जाती । गाँव मे ऐसा कोई लड़का नहीं है जो मदरसे न जाता हो । खेती के काम मे भी इस गाँव के लोगो ने आश्चर्योन्नति की है । चावल की फ़सल यहाँ बहुत अच्छी होती है । खाद, बीज और पौधे की ख़रीद आपस

की सलाह से होती है। कुछ वर्ष हुए इस गाँव के लोगों को चावलों की उत्तमता के लिए कृषि-विभाग से एक झंडी मिली थी, वह झंडी अब बराबर इनके पास ही रहती है। इस गाँव मे यह तरीक़ा है कि सब घर वालों को कुछ नियमित नये वृक्ष हर साल लगाने पड़ते हैं।

"शिज़ुओका सूबे में इनातोरी गाँव भी आत्मशासन और आत्मोन्नति के लिए उदाहरण स्वरूप है। ईज़ू प्रायद्वीप के दक्षिण कोने पर शिमोदा घाट से दस मील उत्तर की ओर कई पहाड़ों को लांघने के पीछे इनातोरी गाँव आता है। यह गाँव एक बड़े जंगल के बीच में है। जगल मे अधिकतर चीड़ के दरख़्त हैं जिन्हें गाँव वालों ने अपने आप लगाया है। पहिले पहिल गाँव वालों को पेड़ लगाने का कुछ लाभ समझ में नहीं आता था। बहुत कम आदमी इसको पसन्द करते थे। परन्तु माता कुची तमूरा नंबरदार ने कई आदमियो को राज़ी किया। दुर्भाग्य से पहिली बार के लगाये हुए पौधो मे से बहुत से सूख गये जिससे बड़ी निराशता हुई। परन्तु तमूरा ने अपना इरादा न छोड़ा। वह अकेला फावड़ा लेकर पौधे लगाने लगा और अपने साथियों का उत्साह बढ़ाने लगा। उसका कथन था कि 'पेड़ केवल हाथ से नहीं लगते दिल से लगते हैं।' अर्थात् पौधो को लगाकर उन्हें बड़े प्यार से रक्षित रखना चाहिए। उसके उपदेशानुसार लोगो ने बड़े प्रेम से इस काम को आरंभ किया, जिसका फल स्वरूप चीड़ का बड़ा बाग़ विद्य-मान है। लगभग ३०० स्त्री-पुरुष समुद्र मे से एक प्रकार की सिवार निकालते हैं जो खाने के काम आती है। इसको २५०० येन प्राप्त होते हैं जिसमें से ४० फ़ी सदी स्कूल-ख़र्च में जमा किये जाते हैं। नंबरदार तमूरा के प्रबन्ध से गाँव की माली हालत बहुत बढ़ गई। तमूरा गाँव की कचहरी मे रहा और रात दिन गाँव की उन्नति के विचार ही सोचा किया वह बड़ा ईमानदार और शुभचिन्तक समझा जाता था। एक दिन उसको यह सोच उठा कि 'नंबरदारी

के कारण उसको सब गाँव का जिम्मा उठाना पड़ता है। अच्छा यही है कि मैं अपने निज के गाँव मे ही अपनी चेष्टा करू" । इसी से वहाँ की नंबरदारी छोड़ इरिया गाँव में चला गया । यह उसकी जन्म-भूमि है। इसकी सब भाँति उन्नति करना उसका दृढ़ संकल्प है। वह आप बड़ा ईमानदार है और दूसरों को भी ऐसा ही होने की शिक्षा देता है । पहिले उसने गाँव वालों की एक पंचायत बनाई और उसमे कृषि-विद्या, मितव्यय, पठन पाठन और शुद्धाचरण के विषय में व्याख्यान देता है। इसने इस गाँव मे रेशम के कीड़े पालने और नारंगी उत्पन्न करने का काम बहुत बढ़ाया है । गाँव की बचत में से १३ फ़ी सदी रिज़र्व में जमा किया जाता है । उसने स्त्रियो की दशा पर ध्यान दिया है उनको एकत्र करके ग्रह शिक्षा, और ग्रह प्रबन्ध पर व्याख्यान देता है। लड़कियो को सिलाई और सदाचरण शिक्षा भी बताता है। जो लड़की चतुर होती है उसको एक सन्दूक़ इनाम में मिलती है जिसमें बहुत सी कारआमद चीज़ें होती हैं। विवाह होने पर इसे वह अपने साथ ले जाती है । इस गाँव की लड़कियो को आस पास के गाँव वाले विवाह के लिए बहुत माँगते रहते हैं। सब स्त्री पुरुप बड़े सद्भाव से रहते हैं। झगड़े बखेड़े का कोई मुक़दमा नही चलता । मज़दूरी, कारीगरी और सफ़ाई पर लोगो का बड़ा ध्यान है। यह सब तमूरा के परिश्रम का फल है कि अस्पताल, सड़कें और जल-प्रबन्धादि सब सुखदायक बातें इस गाँव में मौजूद हैं ।

"गाँव के सब लड़के पढ़ने जाते हैं। ग्रामनिवासी लिखे पढ़े और समझदार हैं। उनका चाल चलन बहुत हो अच्छा है। शरीर से भी ये लोग बड़े पुष्ट हैं। मैलेपन से जो बीमारियाँ होती हैं वे सब दूर हो गई हैं।

"मियागी प्रान्त में ऊदे नाम का एक गाँव है। यहाँ पर वृक्षा-रोपण का सुभीता नहीं है परन्तु नंबरदार के उद्योग से यहा बड़ी

उन्नति हुई है। पहिले यह बिलकुल छोटा सा गाँव था। शिरोमन नंबरदार का गाँव मे बड़ा आदर है। वह बड़े बूढ़ों के समान माना जाता है। उसके साथ गाँव के स्कूल-मास्टर हिदे फूकू भी बड़ा परिश्रम करते है। उन्हें इस गाँव मे तीस वरस हो गये। जिस दिन कोई लड़का स्कूल नहीं आता ख़ुद उसके घर पर जाकर कारण पूछते है, नाग़ा करने का कुफल घरवालों को समझाते हैं। यही कारण है कि आस पास के गाँव वाले मदरसों की अपेक्षा यहाँ की हाज़िरी सर्वदा अधिक होती है। सिवाय अंधे और गूंगे लड़कों के, शेप सब स्कूल को जाते हैं। परिश्रमी होने की शिक्षा सब गाँव वालो को दी जाती है। खेती बढ़ाने और चावल तथा जौ की उपज अधिक करने के लिए बड़ा परिश्रम किया जाता है। रेशम के कीड़े पालना, शहतूत के बाग़ लगाना और रेशम तयार करने के काम पर भी ज़ोर लगाया जाता है। एक काम फ़ालतू भी सब को करना होता है। अर्थात् प्रत्येक जन प्रतिदिन सोने से पहिले धान या जौ की नरही की दो जोड़ा चपली बनाता है। १० वर्ष में इनका दाम ४०,००० येन बैठता है। जिन दिनों रूस के साथ लड़ाई हुई थी उन दिनों प्रत्येक मनुष्य तीन जोड़े चपली तैयार करता था। इस आमदनी मे से इन लोगों ने बहुत सा रुपया लड़ाई के ख़र्च में दिया। अपने गाँव की सब आवश्यकता पूर्ण करके शेप धन एक फंड में जमा किया जाता है। समय पाकर इस फ़ंड के व्याज से गाँव के अनेक काम निकाले जायँगे"।

एक समान स्वत्व रखने वाले गाँवों की प्रशंसा एक तरह से सोशियेलिज़्म की क़दर करना है। सन् १२३२ ई० से जापान की न्यायकारिणी कौंसिल में बारह जज बैठते हैं। ये लोग ही मुक़-दमो का फ़ैसला करते हैं। जब दोनों ओर के गवाह गुजर गये और बहस हो चुकी तब ये जज एक ख़ाली कमरे में जाते हैं और वहाँ उन को यह क़सम खिलाई जाती है कि "मुकदमे की छान बीन करने और सच झूठ निधारने में मैं न अपने रिश्ते का

ख्याल करूँगा, न किसी पर दया अथवा निर्दयता सोचूँगा, न बड़े घर के दोषी से डरूँगा या दोस्त की रियायत करूँगा। मैं जो कुछ करूँगा सत्य करूँगा। यदि किसी का दुःख हमने दूर नहीं किया और अन्याय कर डाला तो सब देवी देवताओं का कोप हम पर पड़े। हम क़सम खाकर अपना दस्तख़त करते हैं।"

समानता-प्रचार करने वाले सोशियेलिस्टों को दलपति मिस्टर कतायामा ने लिखा है कि—

"यद्यपि हमारा बल बहुत थोड़ा है परन्तु हमने तो भी बहुत कुछ कर दिखाया है। हमने अपने ग़रीब भाइयो की दशा सुधारने का प्रस्ताव करके पूर्वके देशों में समानता की चर्चा फैला दी है। इस सुधार की आवश्यकता राजनीति-विशारदों ने भी की है। हम ने परस्पर सहायता करने के लिए फ़ंड खोले हैं और ग़रीब मजदूरों ने इसे ख़ूब पसन्द किया है। पार्लीमेंट में भी इसका आईन मंज़ूर हो चुका है। हमने सर्व साधारण की सहायतार्थ एक बंक भी खोल दिया है। इस में दस हज़ार मज़दूरों का हिसाब है।

"हमारे देश में एक दिन लोग समान भाव से रहने लग जायँगे क्योंकि यह विचार अब लोगों में बहुत फैलता जाता है। अब विरोधियों का स्वर ठंडा पड़ गया है। अब ग़रीब लोगों की दशा पर अधिक ध्यान होता जाता है।

'समय पाकर ग़रीब मज़दूर राजनीति के कामो मे बोलने योग्य बनेगे। राजनीति समझने से ही उन लोगों का मंगल होगा। मज़दूरी का समय घटाने या मज़दूरी बढ़ाने को अपेक्षा अब हम लोग राजनोति सम्बन्धी अधिकार मांगेगे। ऐसा करने से ही धन-वानों को हम लोग नीचा दिखा सकेंगे। किसी ख़ास धनवान् से द्वेष करने का हमारा इरादा नही है। सब धनवानो को अपने प्रभाव में लाना हमारा उद्देश है।"

सोशियेलिस्ट लोगों के ऐसे विचार हैं। परन्तु 'जापान टाइम्स' पत्र ने कुछ और ही कहा है। वह कहता है—"समानता फैलाने वाले लोगो का देश में चाहे जितना बल बढ़ जाय तथा इससे देश को लाभ भी हो जाय परन्तु इससे देश में शान्ति कभी न होगी। इसका विस्तार रोकने का सरल उपाय यही है कि इन लोगों के साथ कोई दस्तन्दाज़ी न की जाय।"

यह विश्वास किया जाता है कि देश में सोशियेलिज़्म का अधिक प्रचार होने पर भी लोगों के हृदय से राजभक्ति और देश-प्रेम दूर न होगा।

सेना ।

जिन लोगो को अपना देश इतना प्रिय है उन्होंने उसको विदेशियों के आक्रमण से बचाने का भी पूर्ण प्रबन्ध किया है। कहने के लिए तो जापानी फ़ौज में प्रजा को ज़बर्दस्ती भरती कर लिया जाता है परन्तु यथार्थ में लोग अपनी पूर्ण इच्छा से ही सैनिक बनते है। जापानी जन सिपाही के कामको बहुत ही अच्छा समझते हैं क्योंकि वे यह समझने लग जाते हैं कि क़वायद परेड सीख लेने से स्वदेश रक्षा के योग्य हो जायँगे। फ़ौज के लिए आदमी चुनते समय सब प्रकार से योग्यजन चुने जाते हैं। प्रत्येक जापानी इस बात को समझता है कि स्वदेश-रक्षा के लिए ख़ुश्की या तरी फ़ौज में कार्य करना उसके लिए बहुत ही आवश्यक है। नियमपूर्वक प्रतिवर्ष फ़ौजी काम सीखने का यदि आईन न भी होता तो भी जापानी सैनिक कर्म के लिए निपट अभिलाषा प्रकाश करते। स्वदेश-रक्षा में नियुक्त होना जापानी अपना परमधर्म समझते हैं। उसके लिए सब प्रकार योग्य होने की वे पूर्ण चेष्टा करते हैं। फ़ौजी काम किसी प्रकार लज्जा-जनक नहीं समझा जाता। जो लोग शारीरिक दुर्बलता के कारण फ़ौज में नहीं लिये जाते वे अपनी अयोग्यता पर बहुत पछताते है और अपने कुभाग्य के लिये सृष्टिकर्ता को कोसते है। इस स्वदेश-प्रेम के कारण ही जापानी अपने देश की रक्षा के लिए सदा उद्यत रहते हैं, और वे इस योग्य है कि विदेशियों के

आक्रमण को अवश्य रोक लें; क्योंकि सब शस्त्र चलाना जानते हैं। अन्य देशियों का प्रेम अधूरा ही है क्योंकि उनको युद्ध-सम्बन्धी कुछ भी शिक्षा नहीं है। सिपाही का काम सीखने में शरीर भी ख़ूब बनता है और मन भी निडर बन जाता है। यही कारण है कि जापानियों को अपने जाति-बल पर पूरा विश्वास है। जापानियों ने यह उत्साह किसी अन्य देश से ग्रहण नहीं किया है, बरन स्वदेश-प्रेम उनका वंश-परम्परा का गुण है। जापान ही एक ऐसा देश है जिसके सब बाशिन्दे हथियार चलाना जानते हैं। वे थोड़ी सी शिक्षा से ही युद्ध काल की उपयोगी युक्तियों को सीख लेते हैं किसी देश के मनुष्य जब तक जापानियों के सदृश सिपहगरी को न सीखेंगे और शिक्षित होकर स्वदेश-रक्षा अपना धर्म न समझेंगे तब तक वे आदर्श जाति वाले न गिने जायँगे।

युद्ध-कर्म को ये लोग अपना परम धर्म्म समझते हैं। युद्ध में गये हुए योद्धाओं को विश्वास है कि देशवासी उनकी स्त्री और बच्चों की रक्षा करेंगे। यदि लड़ाई में वे घायल होकर निकम्मे हो जायँगे तो उनके शेष जीवन निर्बाह का सुभीता कर दिया जायगा। इस विश्वास का बड़ा फल होता है। हर एक सिपाही स्वदेशरक्षा के लिए उसी भाँति लड़ता है जैसे कोई अपने घर की रक्षा के लिए लड़ता हो। जीते मरे दोनो दशा मे योद्धाओ का आदर होता है। मरे हुए सिपाहियों का जो श्राद्ध किया जाता है वह केवल लोकरीति से ही नहीं, वरन बड़े प्रेम और आग्रह से मृत योद्धाओ का आवाहन किया जाता है, युद्ध का सब समाचार उनको सुनाया जाता है। सिपाहियों के बाल बच्चो की पड़ौसी सब तरह ख़बर लेते हैं। युद्ध के दिनो मे एक पुस्तक छपी थी—उस में लिखा है—

"युद्ध में गये हुए सिपाहियों की सहायता देने का वर्णन करते हुए एक गुप्तसभा की चर्चा करना आवश्यक है। इस सभा के सभासद युवा कृषक हैं। इन्हे जब अपने काम से फ़ुर्सत होती है

तब हल लेकर सिपाहियों की धरती को जोत और बो आते हैं, जिससे सिपाहियों के कुटुम्बी बहुत सहारा पाते हैं। एक जगह स्कूल के लड़के मदरसे से छुट्टी पाकर सिपाहियों के खलिहान में काम करते हैं। अनेक जगहों में सिपाहियों के खेतों के लिए खाद ला दिया जाता है। रुपया उधार दे दिया जाता है। किसी किसी गाँव में साबुन, दियासिलाई तथा अन्य गृहस्थी की चीज़ें बेचने का काम इन स्त्री-बच्चों को ही दे रक्खा है जिसके लाभ से उनको सहायता मिले। रेशम के कीड़े पालने, खाद बनाने, फ़ीता बुनने, घास जमाने, और मछली पकड़ने का काम करके सिपाहियों के बाल-बच्चे नये हुनर सीखते और पैसा कमाते हैं।

जापानी सिपाही लड़ाई पर जाते समय इस बात को सोच लेता है कि उसे अपने काम में मरने के लिए सर्वदा तैयार रहना चाहिए। यद्यपि मरने को किसी का मन नहीं चाहता परन्तु यदि उनको मृत्यु से स्वदेश का कुछ कल्याण होता है तो वे बड़े मगन होकर प्राण देते हैं। वे उन लोगों में नहीं हैं जो अपनी बहादुरी जताने के लिए मर मिटते हैं। वे पढ़े लिखे और समझदार आदमी हैं, सब ऊँच नीच समझते हैं। अपने देश की रक्षा के लिए सफलता प्राप्त करते हुए प्राण देते हैं। लड़ाई पर जाते समय वे जीवित लौटने का विश्वास नहीं करते। लड़ते समय सिपाही के विचार बहुत ही ऊंचे होते हैं। स्वदेशरक्षा के विचार में वह अपने कुटुम्ब का प्रेम बिल्कुल छोड़ देता है। युद्धकाल में उसके जीवन के मालिक जापान-नरेश हैं। किसी तरह से उनकी कुछ सेवा हो सके और उसके प्राण-समर्पण करने से महाराज का कुछ काम निकले तो वह मरने में बहुत सुखी होता है। ऐसे सिपाही की माँ अपने बेटे की मृत्यु पर शोक नहीं करती, केवल इस बात का खेद करती है कि "महाराज के निमित्त प्राण देने के लिए उसके कोई और पुत्र शेष नहीं रहा"।

अपना धर्म पूरा पूरा निबाहना भी बहादुरी है। जो अफ़सर पुल उड़ाने की चेष्टा में गुप्तभाव से फिरता हुआ पकड़ा जाता और शत्रु द्वारा मारा जाता है, वह और एक फालोअर (सिपाही का सेवक) जो अपने काम मे प्राण देता है दोनों ख़ूब प्रशंसा पाते हैं। समाचारपत्र पढ़ने वालों को जापानी कप्तान हिरोज़ का नाम स्मरण होगा, इसने पोर्टआर्थर का मुँह बन्द करने के लिए अपना शरीर अपने जहाज़ के साथ डुबो दिया था। जापान के लड़के लड़कियाँ एक छोटी पुस्तक में से इस वीर अफ़सर के यश का एक गीत गाया करते हैं। इस पुस्तक पर कप्तान हिरोज़ का चित्र भी है। जब तब जहाँ कहीं देखो इस पुस्तक का ही गीत सुनाई देता है। गीत का अर्थ इस प्रकार है—

"जिसका प्रत्येक शब्द और कर्म इस बात की शिक्षा दे रहा है कि जापानी योद्धा ऐसा होना चाहिए। वह कप्तान हिरोज़ क्या मर गया है?

"शरीर मर जाता है, आत्मा नहीं मरती। जिसने अपनी देश-में सात बार मर कर जन्म लेने की अभिलाषा प्रकट की है—वह कप्तान हिरोज क्या मर गया है?

"जब कि मैं देवताओं के देश का पुत्र उपस्थित हूँ रूसियों की ईर्ष्याग्नि मेरा क्या कर सकती है" ऐसा कहने वाला वीर-कप्तान हिरोज़ क्या सचमुच मर गया है?

"युद्धक्षेत्र की मृत्यु अमर-पद की प्राप्ति करती है। सहस्रों वर्ष वीर-हृदय जीवित रहता है। उसको युद्ध देव मान कर देश उसकी पूजा करता है। ऐसी पूजा के योग्य कप्तान हिरोज़ क्या सचमुच मर गया है?

कप्तान हिरोज़ ने एक बार सुना कि उसका एक मित्र अफ़सर जहाज़ी मन्त्री की लड़की से विवाह करनेवाला है। कप्तान मन्त्री के पास पहुँचा और प्रार्थना की, कि यह विवाह न होने पावे कारण यह है कि मित्र अफ़सर अपनी योग्यता से शीघ्र ही ऊँचे दर्जे पर

चढ़ेगा । उस समय लोग कहेंगे कि ससुर की शिफ़ारिश से उसकी तरक्क़ी हुई है । वीर-हृदय में यह बात बहुत खटकेगी । हिरोज़ का ख़याल था कि अफ़सरों की रिश्तेदारी ऊँचे हाकिमों के साथ न होनी चाहिए ।

जापानी लड़कों को स्कूल ही में सिपाही का सब हाल समझाया जाता है । जिस देश में सब को सिपाही बनना है वहाँ बचपन से ही अनुराग बढ़ाना परमावश्यक है । जापान में लड़के लड़कियों को पढ़ाने लिखाने का तात्पर्य यही है कि वे भली प्रजा बनें । प्रजा का सब से बड़ा धर्म यह है कि देश-रक्षा के लिए महाराज की सहायता करें । बच्चों को क़वायद सिखाई जाती है श्रौर बाल्य-काल से ही फ़ौजी बातें समझाई जाती हैं । टाइम्स पत्र में एक लेखक ने लिखा है—

"एक बार मैंने युद्ध-शिक्षा के लिए जापानी दो डिवीजनों की झूंठी लड़ाई देखी । इसमें एक आश्चर्य की बात यह थी कि फ़ौजों के लड़ने का तरीका देखने के लिए दूर दूर से स्कूल श्रौर कालिजों के लड़के एकत्र हुए थे । दस वर्ष से लेकर १७ वर्ष तक के लड़के इनमें थे । इनको यहाँ तक पहुँचाने के लिए सर्कारी सवारी मिली थी श्रौर इन्हें ऐसे ऐसे मौक़ै पर स्थान दिया गया था जहाँ से वे लडाई की सब बातों को अच्छी तरह से देख सकें । इनके साथ ऐसे अफ़सर भी नियत रहते हैं जो उनको फ़ौजों की गति का कारण समझाते जाते हैं । मैं देखता था कि ये लड़के बड़े चाव से यहाँ एकत्र होते थे श्रौर बड़ा उत्साह प्रकाशित करते थे । बहुतेरे लड़के रात को मैदान में ही रह जाते थे जिससे कि प्रातःकाल के मार्कों को अच्छी तरह देख सकें । वे लड़के क़वाइद सीखे हुए थे श्रौर सब बोलियों को समझते थे । इन सब के पास नक़ली बन्दूकें थीं । बड़े लड़कों के पास पुराने नमूने की बन्दूकें थीं, इन्हीं से ये चाँदमारी करते हैं । इस सब का लाभ प्रत्यक्ष है । मानों जापानी

बच्चा बच्चा सिपाही होता है। झूँठी लड़ाई में फ़ौजों के इधर उधर जाने आने से फ़सलों का नुक़सान भो होता है और आवेदन करने पर यह हरजाना सरकार से मिल सकता है, परन्तु किसान लोग कभी इस बात की शिकायत लेकर नहीं आये।"

युद्धकाल में यह निश्चय हो चुका है कि पढ़े लिखे सिपाही जिस फ़ौज मे हो वह सर्वदा लाभ उठाती है। जापानी प्रजा में शिक्षा का ख़ूब रिवाज है। फ़ौज मे सिपाही पढ़ी लिखी प्रजा में से ही आते हैं। दो वर्ष पहिले की बात है कि ४,२५,१२६ पुरुषों की उम्र लड़ाई का काम सीखने के योग्य हुई थी। इनमें शिक्षित इस प्रकार थे—

१ मध्यम कक्षा तथा इससे ऊपर वाले ...	९,२२३
२ अपर प्राइमरी पास	६७,९१७
३ लोअर प्राइमरी पास	१,८३,९७५
४ जो पढ़ लिख सकते और हिसाब कर सकते हैं वे ...	९१,२७६
५ कुपढ़	७२,७४६
टोटल	४,२५,१२६

कम पढ़ों की संख्या साल के साल घटती जाती है। सभ्य बनने के लिए जापानी पढ़ने लिखने पर ज़ोर लगा रहे हैं और पढ़ लिख कर फ़ौज की योग्यता बढ़ा रहे हैं। यह शिक्षा का ही प्रभाव है कि खुश्की और तरी दोनों प्रकार की फ़ौजें ख़ूब मिलकर काम करती हैं। जिस तरह कल के पुर्ज़े जुदी जुदी चाल चलकर एक मुख्य कार्य करते हैं, जापानी भी पुरजो के समान अपने अपने काम में लगे हुए हैं। सब का एक धर्म "देशरक्षा" है। इसलिए आपस में ईर्ष्याद्वेष बिल्कुल नहीं है। यदि मेल से काम न हो तो जापानी चाहे कुछ किया करें कुछ भी अच्छा न होगा। चाहे सिपाही जहाज़ी फ़ौज में है, चाहे खुश्की की पलटनों मे, दोनों का सिद्धान्त एक ही है। देशरक्षा का विचार इस देश में नया नहीं है। इन लोगों को बहुत

दिन से इस बात का ध्यान है । मिस्टर आर० टी० किरबी ने एशियाटिक सोसाइटी आफ़ जापान के सामने 'बू-बी' अर्थात् लड़ाई की तैयारी पर एक व्याख्यान पढ़ा था । जिस में उस ने कहा था—

"बू और बी इन दोनों अक्षरों से 'युद्ध के लिए तैयार रहना' यह अर्थ निकलता है । 'बी' का तात्पर्य्य है कि तन और मन से देशरक्षा के लिए ऐसा तैयार रहे कि संग्राम में जम सके और असावधानता से पराजित् न हो । 'बू' अक्षर युद्ध का अर्थ देता है जिसका मूल अर्थ 'भाला रोकना' है और तात्पर्य्य है ढाल और भाले का उपयोग बन्द कर देना, फ़ौजें लेकर भिड़जाना, दूसरों का पराभव कर देना, क़िलों को जा घेरना, राज्य ले लेना इत्यादि का नाम युद्ध नहीं है । युद्ध का मतलब यह है कि बहुत अच्छी तरह से देशशासन करना, अड़ौस पड़ोस के राज्यों के आक्रमण से बचाना, यदि उन में उपद्रव उठ पड़े तो अपनी फ़ौज भेजकर उसको दबाना और वैभव दिखा देना । ऐसा करने से अन्य राज्यों को आक्रमण करने की हिम्मत नहीं रहती" । इसी लेख में आगे चल कर ऐसा भी कहा है—"देश चाहे जितना बढ़ा हो यदि वहाँ के मनुष्य लड़ाकू हैं तो एक दिन वह राज्य नष्ट हो जायगा । परन्तु देश में शान्ति समझ कर युद्ध की तैयारी भूल जाना भी बड़ा भयानक है" । युद्ध के लिए जापानियों का आज कल यही सिद्धान्त है ।

जापानी फ़ौज ने जो विजय प्राप्त की है उसके दो कारण हैं, जिन को विशद् रूप से समझाना अच्छा होगा । पहिली बात जिस के कारण वे आज इतने योग्य हैं जापान-नरेश से आरम्भ होती है । हर एक सिपाही के लिए महाराज ने ५ उपदेश स्थिर किये हैं जिन के अनुसार चलना सिपाही का मूल धर्म समझा जाता है । जिस तरह शिक्षाविभाग में महाराज का व्याख्यान सदाचरण सिखाने के लिए मूल मंत्र समझा जाता है फ़ौजीविभाग में उनके पांच उपदेश भी अच्छा सिपाही बनाने के कारण होते हैं । दूसरी

बात यह है कि जापानियों के हृदय पर मरे हुए सिपाहियों की आत्मा का बड़ा प्रभाव पड़ता है। ये दोनों बातें आपस में मिली हुई हैं और किसी प्रकार से यह शक्ति नष्ट नहीं हो सकती।

महाराज के उपदेश इस भाँति हैं—

"प्राचीन काल में इस देश की सेना के प्रधान सेनापति जापान-नरेश स्वयम् बनते थे। ढाई हजार वर्ष हुए जब असभ्य जातियों को जीत कर उन्हों ने अपना आसन यहाँ स्थिर किया था तब उत्तमो और मनोनोवो जाति के क्षत्रियों ने महाराज का साथ दिया था।

"अनेक बार देश में युद्ध की आवश्यकता पड़ी है। और सर्वदा महाराज आप सैनाध्यक्ष रहे हैं। उन के पश्चात् महाराणी या युवराज को यह पद दिया गया है। परन्तु प्रजा के हाथ में यह पद कभी नहीं दिया गया।

"इसके पीछे फ़ौजी और मुल्की बातों में चीन की नक़ल की गई। छः छावनी स्थिर की गईं। घोड़ों के लिए दो डीपू नियत हुए। सीमाप्रान्त के लिए रक्षक नियत किये गये। फ़ौज का यह नया तरीक़ा कहने सुनने को अच्छा था परन्तु देश में शान्ति रहने के कारण फ़ौज निकम्मी हो गई। किसान, और सिपाही की जाति अलग अलग बन गई।

"सिपाही अपने तईं सब से पृथक् समझने लगे और बुशी कहलाये गये। इनमें से प्रभावशाली मनुष्य मुखिया बन गये। राज्य का बहुत सा अधिकार इनके हाथ में आ गया और ७०० वर्ष तक इनका ज़ोर रहा।

"देश के इस भाव को वदलना किसी के वल की बात नहीं थी परन्तु यथार्थ में यह भाव हमारे प्राचीन जातीय आचरण के विरुद्ध था।

"फिर समय ने पलटा खाया। तोकूगावा घराना शासन करने योग्य नहीं रहा। इसी बीच में विदेशियों ने जापान में प्रवेश करने

की आकांक्षा दिखाकर, देश की राजनैतिक स्थिति और भी कठिन कर दी। हमारे पिता और बाबा को इस समय बड़ी चिन्ता ने घेरा था। जब हम गद्दी पर बैठे तो तोकूगावा घराने ने सब राजकाज हमें सौंप दिया, राजा लोगों ने भी अपना सब इलाक़ा हमारे अधीन कर दिया।

"इस प्रकार अनेक काल पीछे देश का शासन फिर राजघराने में आया। यह सब परिवर्त्तन हमारी राजभक्त प्रजा की चेष्टा से हुआ। आजकल हमारी प्रजा इस योग्य है कि अपना भला बुरा ख़ूब समझती है और राजभक्त होने का यथार्थ भाव जानती है।

"पिछले पन्द्रह वर्षों में हमने अपनी ख़ुश्की और तरी की फ़ौजों को सँभाला है। इन सब पर हमारा निज का अधिकार है। प्रजा को यह बात अच्छे प्रकार स्मरण रखना चाहिए कि सब सेना के प्रधान कमांडर इन-चीफ़ हम ही हैं।

"हम सेना के प्रधान हैं; अपनी प्रजा को अपने हाथों के समान समझते हैं। अस्तु, प्रजा को हमें अपना शिरःस्थानीय समझना चाहिए। ऐसा होने से हमारा और प्रजा का सम्बन्ध बड़े विश्वास का कारण होगा। हम अपना उचित कर्तव्य तभी पालन कर सकते हैं जब प्रजा अपने धर्म पर स्थिर रहे। यदि अन्य जातियाँ हमारे देश को प्रतिष्ठा की दृष्टि से न देखेंगी तो हम को बड़ा ही खेद होगा। यदि हमारे देश का सम्मान बढ़ेगा तो हम अपनी प्रजा के साथ इस बात का आनन्द मनावेंगे। अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहो, स्वदेश रक्षा में हमारे सहायक बनो। इससे जापानीजाति का उपकार होगा और सम्मान बढ़ेगा।

"हम कुछ और भी उपदेश देना चाहते हैं—

"(१) सिपाही का प्रथम धर्म राज-भक्त और देशहितैषी होना है। यह संभव नहीं है कि इस देश का जन्मा हुआ मनुष्य स्वदेश-भक्त न हो। परन्तु सिपाहियों में यह गुण बहुत ही अधिक होना

चाहिए। जिस में यह गुण पूर्ण नहीं वह सिपाही बनने के योग्य नहीं है। स्वदेशभक्ति-रहित सिपाही खिलौने के समान है। वह क़वायद परेड मे कैसाही चतुर क्यों न हो, फ़ौजी बातों को चाहे जितना समझता हो, वह विश्वास करने योग्य सिपाही नहीं है। देश की रक्षा और प्रतिष्ठा को बनाये रखना फ़ौज के ही हाथ में है। फ़ौज का अच्छा होना देश के लिए अच्छा; और बुरा होना देश के लिए बुरा है। अस्तु, सिपाही का धर्म है कि अपने कर्म मे स्थिर रहे और स्मरण रक्खे कि धर्म निबाहना पर्वत से भी भारी है और प्राण देना पंख से भी हलका है। विश्वासघात करके अपने प्रतिष्ठित कर्म मे बट्टा न लगाओ।

"(२) सिपाही का स्वभाव सुशील हो। फ़ौज में मार्शल से लेकर सिपाही तक सब अपने अपने दर्जे पर स्थित हैं और नियमानुसार एक के ऊपर एक का पद है। छोटे को सर्वदा बड़े का सम्मान करना चाहिए। बड़े को कदापि अपने से छोटों पर गर्व प्रकाश करना या अकड़ दिखाना उचित नहीं। बड़ा छोटे पर निज की कोई आज्ञा नहीं चलाता, केवल हमारी ही आज्ञा प्रकाशित करता है। किसी काम में बिना कारण सख़्ती दिखाना न चाहिए। सर्कारी काम के सिवाय अन्य व्यवहार में अफ़सरो और उहदेदारो के साथ प्रेमभाव बरतना चाहिए। स्वदेश-सेवा के लिए सब का सब मिल कर एक रहना चाहिए। यदि तुमारे स्वभाव में सुशीलता न हो, यदि छोटे बड़ो का आदर न करें, बड़े हाकिम और उहदेदार अपने अधीनस्थ सैनिकों के साथ कठोरता का व्यवहार करें, अर्थात् ऊँचे नीचे सब सैनिक मिलकर न चलें, तो तुम फ़ौजी प्रबन्ध मे गड़बड़ी डालने के सिवाय स्वदेश-प्रेमियों की दृष्टि में घोर पापी समझे जाओगे।

"(३) वीर और साहसी होना तो सिपाही का सिपाहीपन है। इस देश मे ये दोनों गुण सदा से सर्वोत्तम समझे जाते हैं। जिस

मनुष्य में ये दोनों बातें नहीं वह कुलकलंक गिना जाता है। सिपाही को युद्ध काल में शत्रु से लड़ना है इस लिए उसको वीर अवश्य होना चाहिए। वीरता के भी दो भेद हैं—एक सच्ची, एक झूँठी। मूर्ख जवानों की अकड़बाज़ी वीरता नहीं है। हथियार बन्द सिपाही को बहुत सोच समझ कर हथियार चलाना चाहिए। अंधाधुन्ध लड़ना मूर्खता है। छोटे से छोटे शत्रु का भी निरादर न करना चाहिए। परन्तु भय उनकी बड़ी संख्या से भी न मानो। सच्ची बहादुरी कार्यपरायणता से समझी जाती है। जो सिपाही सोच समझ कर अपना काम करते हैं वे सर्वदा सफलता प्राप्त करते हैं, और आदर पाते हैं। यदि तुम अपने बल को अन्याय से बरतते हो तो तुम सच्चे वीर नहीं हो। लोग तुम से चीते और भेड़िये के सदृश घृणा करेंगे।

"(४) सिपाही विश्वासनीय और न्यायाचारी होना चाहिए। ये दोनों गुण सब के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। परन्तु शस्त्रधारी के लिए तो इनकी बड़ी ही आवश्यकता है। विश्वासनीय वही है जो अपने वचन पर दृढ़ है और न्यायाचारी वह है जो सर्वदा अपने धर्म का ध्यान रखता है। विश्वासनीय और न्यायाचारी सिपाही को सदा यह सोच लेना चाहिए कि अमुक कर्म करना ठीक है कि नहीं। यदि तुम बिना समझे बूझे किसी काम को करना स्वीकार कर लेते हो तो आप स्वयं और दूसरों को भी झगड़े में डालते हो और संभव है कि ऐसा करने से तुम अपना विश्वास और न्यायाचार खोदो, और पछतावे में पड़ो। प्रत्येक काम का नतीजा सोचकर, तब उस में हाथ डालो और बुद्धि के सहारे दृढ़ होकर उसे पूर्ण करो। यदि तुम समझते हो कि अपना वचन तुम से पूरा न होगा या कोई काम तुम्हारे सामर्थ्य से बाहिर है, इस दशा में उत्तम यह होगा कि तुम पहिले ही से अपना भाव प्रकाश कर दो। इतिहास देखने से

हमें जान पड़ा है कि बहुत से बड़े आदमी और शूर वीर छोटी बातों के लिए लज्जित हुए हैं अथवा प्राण दे बैठे हैं।

"(५) सादा और कम ख़र्चीला होना सिपाही के लिए बड़ा ज़रूरी है। यदि तुम में ये गुण नहीं है तो तुम दुर्बल और हिम्मत-हार होजाओगे और समय पाकर ऐश आराम में पड़ जाओगे। फिर तुम्हारे सब सद्गुण नष्ट हो जायँगे और लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखेंगे। ऐश आराम फ़ौज के लिए बहुत बुरा है। एशन जो सेना मे तनक भी आदर पाया तो थोड़े ही काल मे वह सब निकम्मी हो जायगी। हमको इस बात का बड़ा ध्यान है और सिपाहियों की आरामतलबी दूर करने के कई नियम स्थिर कर दिये हैं। हम विश्वास करते हैं कि हमारे उपदेश को सैनिक सर्वदा स्मरण रक्खेंगे।"

उपर्युक्त उपदेश पर चलने से ही जापानी सिपाही वर्तमान की योग्यता को पहुँचा है। इस बात से मुकरना कठिन है कि उसकी उन्नति का मूल बड़ा दृढ़ है।

जापानी सिपाही जीत पर जीत प्राप्त करने में प्रशंसा पाता है। हथियार चलाने की तारीफ़ में नहीं। एक जनरल आर्डर में महाराज के ये वचन थे—"तुम में से हर एक असंभव को संभव कर दिखावेगा, ऐसी आशा महाराज और सब देश करता है।" और विश्वास किया जाता है कि जापानी सिपाहियों को दी हुई आज्ञा कभी निष्फल न होगी। महाराज के उपदेश सब सिपाहियों के सैनिक सामान मे सम्मिलित है। प्रत्येक सैनिक चाहे वह जनरल कुरोकी हो या साधारण सिपाही, महाराज के चित्र को प्रतिदिन सलाम करता है और उनके उपदेश को पढ़ता है।

"जापान वीकली मेल में" जो दो पत्र छपे हैं, उनके पढ़ने से सिपाही और अफ़सरों के आन्तरिक विचार ख़ूब समझ में आते

हैं । इनमें से पहिला पत्र जनरल नोगी ने पोर्टआर्थर-विजय करने के कुछ दिन पीछे लिखा था । उसका भाव यह था—

"मैं आप सब लोगों को समयानुसार नमस्कार करता हूँ। मुझको इस समय केवल इस बात की लाज लग रही है कि एक छोटे से क़िले का फ़तह करने मे मैंने इतने सिपाही मरवाये, इतना गोला बारूद ख़र्च किया और इतनी देर लगाई । अन्त को जनरल स्टोसल की हिम्मत टूट गई और उसने थककर हार मान ली । अस्तु, अब इस ओर का युद्धकार्य समाप्त हुआ। इस भयानक युद्ध के लिए मैं महाराज तथा अपने देश-वासियों से कुछ क्षमा प्रार्थना नही माँग सकता। हम अब पूर्णरीति से तैयार हो गये हैं और युद्धक्षेत्र के मीठे फल चखने के लिए उद्यत हैं। आप तो इस बात पर हंसेंगे परन्तु मैं सच कहता हूँ कि शान्ति के समय में जो सिपाहियों की इतनी ख़ातिर की जाती है इससे वे बहुत बिगड़ जाते हैं । आप मेरी बात को अत्युक्ति कहेंगे, परन्तु मैं सच कहता हूँ कि सिपाही के लिए सादगी बड़ी ही आवश्यक है। मैं सिर्फ़ लड़ाई के ज़माने की ही बात नहीं कहता वरन यह कहता हूं कि फौजी आदमियों को दुनियादारों के से बनाव सिंगार कभी न करने चाहिएँ । मेरे पुत्रों के मरने पर जो आपने खेद प्रकाश किया है इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। फ़ौज़ी योग्यता मे अपनी सुस्त भद्दी योग्यता के लिए क्षमा प्रार्थना करता हूँ ।"

दूसरी चिट्ठी उस कप्तान की है जिसने सवारों की टोली लेकर ६३ दिन दुश्मन की लाइन मे हमला किया। उसने यह लिखा—

"आज मैं रिसालों में से ७५ सवार चुनकर रवाना होता हूँ। हम लोग दुश्मन के पीछे से निकलेंगे। उसकी सब स्थिति समझेंगे। उन्होने अपनी फ़ौजों में ख़बर पहुँचाने का जो सम्बंध कर रक्खा

है उसे बिगाड़ देंगे, और उनकी तजवीज़ उलट पुलट कर देंगे। अब मैं पचास साठ दिन आप को कोई पत्र नहीं लिख सकूँगा। हम रूसी दल में प्रवेश करने के लिए पूर्ण रूप से इच्छित हैं। फल महाराज बुद्ध के हाथ में है। मुझे विश्वास है कि हम जो अपने महाराज की कृपा का फल हज़ारों वर्ष से भोगते आते हैं अब उस को कुछ थोड़ा सा प्रतिफल चुकावें। इस घड़ी आप के इस पुत्र का यही ध्यान है, और यह बड़े उत्साह से युद्धक्षेत्र में जा रहा है। हमारा आज का कूँच बड़ा लंबा है और मार्ग में कितनी ही शंकाएँ हैं। मैं अपनी तो कुछ हक़ीक़त नहीं समझता परन्तु मेरे साथी सवार ऐसे हैं कि उनकी सहायता से मैं अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा। मेरी ओर से आप निश्चिन्त रहिए क्योंकि मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ, कि मैं अपने बाप के नाम को कलंकित नहीं करूंगा। और न अपने कुल के नाम को बिगाड़ूँगा। युद्ध को चलते चलते मैं ने अपने जीवन से विदा लेते हुए यह दोहा लिखा है—

यह जग स्वप्न समान है, तू सुख सपने देख।
जो तोरें फूले कुसुम, आदर करें अनेक॥

जापानियों को उदाहरणीय योद्धा बनाने में उनकी पितृभक्ति और बुशीदो शिक्षा बड़ी सहायता देती है।

देशनिवासी जो सच्चे स्वदेश प्रेमी हैं फ़ौजी और जहाज़ी सिपाहियों को उत्तम से उत्तम पदार्थ देने के लिए प्रस्तुत हैं। वे असावधानी से प्राप्त हुए रोग, और भद्दे हथियार या गोली बारूद के दोष से अपने आदमियों को नष्ट कराना नहीं चाहते। रोग दूर करने और सिपाहियों को आरोग्य रखने की भरपूर चेष्टा की जाती है। यही कारण है कि जापान की फ़ौज युद्धक्षेत्र में ख़ूब भरपूर निकलती है। रोग के कारण उसमें न्यूनता नहीं हो जाती। जर्मन के एक संवाद-दाता ने कहा था—

"चिमलपू में जो जापानी फ़ौज है उसमे बड़ी शांति है। सिपाहियों का हृदय दृढ़ और उन्हें अपने सामर्थ्य का पूरा विश्वास है। बटन लगाने वाले दर्ज़ी, नाल जड़ने वाले नाल बन्द यहाँ मौजूद हैं। सब घोड़ों के लिए घास दाना मौजूद है। सिपाहियों के लिए चाँवल दाल और मांस है। उनके चिहरे ताज़े, सुर्ख़, और आरोग्य हैं। लाइन में किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं है। सिपाहियो के सब काम सिपाहियाना हैं। ऐसी फ़ौज अवश्य विजय प्राप्त करेगी, अथवा प्रतिष्ठा पूर्वक प्राण देगी।

एक दूसरे संवाद दाता ने लिखा है "जापानी सिपाहियों में युद्ध करने की जैसी शक्ति है वैसी ही शारारिक योग्यता भी है। वे अनेक क्लेश उठा कर भी भले चंगे बने रहते हैं। ओकाज़ाकी ब्रिगेड ने ७ महीने में १८ लड़ाइयाँ लड़ीं, इसमें उनके ३७०० आदमी मारे गये। परन्तु रोगी होकर केवल चार आदमी छीजे। अब तक जितनी लड़ाइयाँ हुई हैं किसी में इतनी कम मौत नहीं हुई। अन्य देशीय लड़ाइयों मे घायल होकर जब ३० आदमी मरे हैं तो बीमारी से ७० मर गये हैं। इस बात को जापानियों ने बिल्कुल बदल दिया है। सिपाहियों का बीमार न पड़ना और हमेशा हृष्ट पुष्ट बना रहना स्वदेश सेवा का हार्दिक उत्साह ही कारण है।

रूसियों का चकनाचूर करके जापानियों ने चीन को आश्चर्य में डाल दिया है, तथा संसार में दिखा दिया है कि शारीरिक बल की अपेक्षा बुद्धिबल बड़ा होता है। जो फ़ौज बुद्धिबल से लड़ती है वह सर्वदा जीतती है और जो केवल शारीरिक बल रखती है। वह हारती है परन्तु जिस में दोनों बाते हों उसका तो कहना ही क्या ? जापानियों की बराबरी दिखाने के लिए किसी और फ़ौज का नाम नहीं लिया जा सकता। विज्ञान के अनुसार शस्त्र विद्या सीखने के सिवाय सिपाहियों का जातीय उत्साह भी बड़ा प्रभावोत्पादक है।

जिन बातों से देश की शक्ति बढ़ सकती है उनको जापानियों ने पूर्ण रीति से ग्रहण किया है। झूँठी लड़ाई मे भी वे नये नये तजरिबे करते है। बड़े कमाँडर को झूँठ मूंठ मारकर छोटो से लड़ाई का काम लेते हैं। छोटे छोटे उहदेदारो को भी समय पड़ने पर काम चलाना सिखाते हैं। जो अफ़सर झूँठी लड़ाई में अपनी योग्यता दिखाते हैं वे ऊँचे दर्जे पर चढ़ने के योग्य समझे जाते हैं। सिपाहियों को भी उहदेदारों का काम सिखाया जाता है। तीन वर्ष की नौकरी का सिपाही एक वर्ष वालों पर कमान करने योग्य समझा जाता है। अस्तु, जापानी फ़ौज की टोली अपने अपने प्रवन्ध से लड़ सकती है और अफ़सर के मर जाने पर कभी हिम्मत नहीं हारती।

इस देश की फ़ौज में अफ़सर 'सिपाही' काम भी कर सकते हैं और सिपाही 'अफ़सर' का काम भुगता सकते हैं। युद्ध काल मे इस शक्ति परिवर्तन से बड़ा काम निकलता है। किसी के मर जाने से कोई काम रुका नहीं रह जाता। अफ़सर की आज्ञा राजाज्ञा के समान मानी जाती है। वही अफ़सर अधिक प्रतिष्ठा पाता है जो सिपाही का काम सिपाहियो से कई बार अच्छा कर सकता है। रूस जापान का युद्ध लिखते हुए एक यूरोपियन फ़ौजी अफ़सर कहते हैं।

"सिपाही की दैनिक शिक्षा में केवल क़वायद परेड पर ही ध्यान नहीं दिया जाता। मार्च करने और बन्दूक़ चलाने के साथ ही साथ कसरत के खेल, तलवार के खेल, वार बचा कर दूसरे को घायल करने की युक्तियाँ, जिन से अक़ल बढ़ती है ऐसी अनेक बातें बताई जाती हैं। प्रातः काल ६ बजे से ग्यारह बजे तक काम होता है। बीच में थोड़ी थोड़ी छुट्टी भी होती रहती है। दुपहर को भोजन करने के लिए दो घण्टे का विश्राम मिलता है और फ़िर शाम तक कसरत और क़वायद होती है। संध्या को भोजन के पीछे मन बहलाव की बातें करके बाद को जल्द सो जाते हैं।

"एक बड़ी बात यह है कि जापानी अफ़सर सिपाहियों के साथ सब काम करते हैं, उहदेदारों के ज़िम्मे नहीं छोड़ देते । सदा अफ़सरो के साथ मिलते जुलते रहने से सिपाही सब काम बहुत अच्छी तरह करते हैं ।

"बिना उम्मेदवारी किये कोई अफ़सर नहीं बन सकता। उम्मेदवार या तो फ़ौजी स्कूल का विद्यार्थी हो या किसी कालेज का ग्रेजुएट। स्कूल की अन्तिम परीक्षा पास करने वाले भी लिए जा सकते हैं। जिस पलटन में वे अफ़सर होना चाहते हैं उसीके कमान अफ़सर की रज़ामन्दी प्राप्त कर लेते है ।

"उम्मेदवार चुने जाने पर उनको सिपाहियों के साथ सब काम सीखना पड़ता है। उस समय वे "उम्मेदवार अफ़सर" कहलाते है। यह काम सीखने पर एक वर्ष टोकियो के मिलटरीकालेज में शिक्षा प्राप्त करते हैं। वहाँ से लौटकर उन्हे अफ़सर के काम सीखने की आवश्यकता होती है। आरम्भ से लेकर जब उन्हें ढाई वर्ष हो ज़ाते हैं तब अफ़सरो की सभा मे उनकी योग्यता स्वीकार की जाती है और कमीशन दिया जाता है। उनका उहदा पहिले पहिल "सब-लैफ्टनेंट" होता है ।

"मिलेटरीकालेज मे पैदल पलटन, रिसाला, तापख़ाना, सफ़रमेना, इत्यादि का काम सिखाने के अलग अलग दर्जे हैं। जिस प्रकार की फ़ौज मे कमीशन प्राप्त करना हो उसी क्लास में यह काम सीखा जाता है। कालेज मे पढ़े हुए विद्यार्थियों में से आवश्यकतानुसार अधिक नम्बर प्राप्त करने वाले ही भरती किये जाते हैं। उम्मेदवार अफ़सर पहिली दिसंबर को भरती होते है। उनको भोजन और वस्त्र सर्कारी मिलते है। वेतन कुछ नहीं मिलता। उनको सिपाहियों की सी सब कार्रवाई करनी पड़ती है परन्तु वे खाना अफ़सरो के साथ खाते हैं। इस सत्संग से वे बड़ा लाभ उठाते हैं। क्रमशः सिपाही-नायक और हवलदार बनकर वे सब प्रकार की ड्यूटी देते हैं।

"अफ़सरों की तरक़्क़ी नौकरी के हिसाब से नहीं होती, लियाक़त से होती है। बहुतेरे ऐसे लेफ़्टनेण्ट मौजूद हैं जिन की ४० वर्ष की उम्र हो गई है और जहाँ के तहाँ पड़े हैं। उहदेदारों के साथ अफ़सरों का बर्ताव बहुत अच्छा है। २६ वर्ष की अवस्था का उहदेदार योग्य हो तो फ़ौजी स्कूल में जाकर उम्मेदवार अफ़सर बन सकता है। उहदेदारों के स्त्री-बच्चे भी बहुत आदर पाते हैं। उहदेदार समय पड़ने पर अफ़सर का काम अच्छी तरह कर सकते हैं"।

सब से अच्छी बात इस देश की फ़ौज में यह है कि सिपाही हमेशा होश में रहते हैं। चतुर, विश्वासनीय और सुथरे होते हैं। शराब छुड़ाने वाली सभा की यहाँ ज़रूरत नहीं है। क्योंकि मतवाला बनने की इन की आदत ही नहीं है। ये अपने काम से काम रखते हैं। मस्ती दिखाने के लिए उन्हे फ़ालतू समय ही नहीं है। छुट्टी के दिन भी यदि टोकियो के बाज़ारों में देखोगे तो कोई सिपाही बदमस्त फिरता न दिखाई देगा और न कहीं उसे लड़ते झगड़ते पाओगे। सिपाही विशेष करके किताबों की दुकान पर जाते हैं, चाय की दुकानों पर बैठते हैं, हाथ में हाथ दिये बाज़ार मे टहलते हैं या बाग़ीचों की सैर करते हैं। आचरण मे सुशीलता, हृदय मे पवित्रता, और चिहरे पर भलमनसाहत बरसती है। उन्हे अपने वर्दी और शस्त्रों की प्रतिष्ठा का बड़ा ध्यान रहता है। मन्चूरिया की लड़ाई देखकर एक फ़रासीसी ने लिखा है "जपान की अपेक्षा बढ़िया तोप बन्दूक़ रखकर, बचाव का पूरा बन्दोबस्त पाकर भी रूसी सर्वदा हारते रहे हैं। रूसी सिपाही साहस मे किसी से कम नहीं परन्तु शिक्षा, उत्साह और समझ में जापानियों से बहुत घट कर हैं"।

जापानियों ने फ़ौजी कामों में बड़ी बड़ी युक्तियाँ निकाली हैं। उन के सब काम आदि से अन्त तक सम्पूर्ण हैं। वे लोग फ़ौजी काम केवल शौक़ और दिखावट के लिए नहीं करते वरन इसके विना वह अपने देश का कल्याण नहीं समझते। इस देश मे जहाज़ी फ़ौज

की नौकरी से ख़ुश्की की पलटनों में नौकरी करना अच्छा समझा जाता है। जहाज़ी फ़ौज में वालण्टियर भी काम करते हैं और प्रजा में से चुने हुए मनुष्य भी रक्खे जाते हैं। इस विभाग में बुद्धि की अधिक आवश्यकता होती है इस लिए क़सबों और शहरों के रहने वाले अधिक होते हैं क्योंकि गाँव के लोग अधिक शिक्षित नहीं होते।

जहाज़ी फ़ौज का मुख्य वह मंत्री है जो समुद्रसम्बन्धी सब बातों के लिए राजसभा में नियत है। यह बहुधा जहाज़ी अफ़सर ही होता है। समुद्र में युद्ध होने की दशा में सब प्रबन्ध सामुद्रिक मंत्री के हाथ में आता है। जो कुछ पदार्थ संग्रह किये जाते हैं सब मंत्री के चेष्टा से आते हैं परन्तु युद्ध-परिचालना के जहाज़ी फ़ौज के बड़े अफ़सर (एडमिरल का स्टाफ़) जापान-नरेश की आज्ञा में रहते हैं।

सब प्रकार के जहाज़ों में काम करने वाले सिपाही हैं अथवा जहाज़ी सिपाही सब प्रकार के जहाज़ों में काम कर सकते हैं। जहाज़ी गोलन्दाज़ बड़े चतुर, चालाक, और फुर्ती से काम करते हैं। उनमें भद्दापन नहीं है। तोप और अंजन के सब कल पुर्ज़े उन्हें ख़ूब मालूम हैं। कारीगर लोगों और अन्य जहाज़ियों में बड़ा मेल रहता है। इंजीनियर के हाथ में सब कारीगर रहते हैं और सब के ऊपर कप्तान की आज्ञा चलती है। लड़ाई के जहाज़ का कप्तान बड़ा हरदिल-अज़ीज़ होता है परन्तु उसकी आज्ञा को कोई ढील नहीं दे सकता। जहाज़ का सब काम नियमानुसार चलता है। जो लोग जहाज़ को झाड़ते बुहारते और धोते हैं अथवा बावर्ची का काम करते हैं वे भी अन्य जहाज़ियों के बराबर समझे जाते हैं। जहाज के अफ़सर उहदेदार और सिपाही समुद्र-सम्बन्धी बातें जानने के बड़ेही शौक़ीन हैं। फुरसत मिलतेही कुछ न कुछ पढ़ते रहते हैं।

देश-प्रेम से भरे हुए हृदय बड़े साहसी होते हैं। जब उन साहस के साथ बुद्धि बल भी लगा लिया जाय तो फिर इस शक्ति

का क्या ठिकाना है। समुद्र में डूब कर काम करने वाले जहाज़ों में काम करने से लोग कभी घबड़ाते नहीं। इसी तरह टारपीडो के ऊपर बड़ी इच्छा से काम करते हैं। अपने देश की सेवा के लिए जापानी क्या कुछ नहीं करते।

जहाज़ी सिपाहियों का आचरण भी वैसाही होता है जैसा अन्य सिपाहियों का और दोनों को एकसा ही पुष्ट राशन (भोजन या रसद) दिया जाता है। लड़ाई पर जाने से पहिले सिपाहियों को दवाई मिले पानी से स्नान कराया जाता है और साफ़ कपड़े पहिनाये जाते हैं। लाभ इस में यह है कि शरीर पर गोली गोले का घाव हो तो उस में शारीरिक मैल का विष प्रवेश नहीं कर जाता। आरोग्यता का ऐसा ध्यान रखने का यह फल है कि लड़ाई में बहुत कम आदमी रोगी होते हैं। फ़ौजी जहाज़ों में आज तक जो नई बातें निकली हैं वे सब जापानियों ने सीख ली हैं और उन बातों के अनुसार अपने जहाज़ बनवाये हैं। तोपों की रक्षा के लिए जहाज़ों पर पूरा पूरा प्रबन्ध है।

युद्ध के जहाज़ विशेष करके इंगलैंड में बने हैं। बनते समय जापानी इंजीनियर और दूसरे अफ़सर जहाज़ के पुरज़े पुरज़े को देखते रहे हैं। किस कल पुरज़े का क्या फ़ाइदा है उसे .खूब समझते रहे हैं। जहाज़ में सब चोखा माल लगता है यह देखते रहे। अफ़सरो की इस निगहबानी के कारण जापानी जहाज़ अँगरेज़ी जहाज़ो से भी अच्छे तैयार हुए हैं।

जहाज़ी अफ़सर बनने के लिए बड़ी योग्यता दर्कार है। आरम्भिक परीक्षा में सब कोई शामिल हो सकता है। दाख़िले का इम्तिहान बड़े बड़े उन्नीस शहरो में होता है। अफ़सरों के लिए जितने पद ख़ाली होते हैं, वह पहिले गज़ट में प्रकाशित कर दिये जाते हैं। उम्मेदवारों की उम्र सोलह से २० वर्ष तक होनी चाहिए। मिडिल पास तक की तालीम पाई हो तो उसकी परीक्षा केवल हिसाब व जापानी साहित्य, अँगरेज़ी और चीनीभाषा में होती

है । परन्तु जिसने पास न किया हो उस से जापानी साहित्य, गणित, अँगरेज़ी, चीनी भाषा, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, रसायन और चित्रकारी के प्रश्न पूछे जाते हैं । परीक्षोत्तीर्ण जन जहाज़ी कालेज में भेजे जाते हैं । मार्गव्यय तथा पढ़ने का ख़र्च सब सर्कार देती है। तीन वर्ष पढ़ना पड़ता है । इस समय उनको मल्लाही का काम, समुद्र की गहराई जानने की विद्या, उच्च कक्षा का गणित, अँगरेजी भाषा का विज्ञान, रसायन गोलन्दाज़ी, और इंजीनियरी सिखाई जाती है। पास होने के पीछे उन को काम सीखने के लिए जहाज़ों पर भेज दिया जाता है । ८ महीने पीछे उनकी फिर परीक्षा होती है और तब वे अफ़सर बनाकर लड़ाई के जहाज़ों पर भेज दिये जाते हैं । वहाँ चार महीने पीछे उनकी फिर रिपोर्ट की जाती है और तब वे कमीशन प्राप्त करके सब-लेफ़्टनेण्ट कहलाते हैं। ऊपर की सब उन्नति अच्छे काम की योग्यता दिखाने से ही मिलती है । साल के साल एक सभा होती है जिस में जहाज़ी मंत्री सभापति बनाया जाता है और सब बड़े बड़े हाकिम बुलाये जाते हैं और इन लोगों को अच्छी सिफ़ारश आने पर तरक्की की जाती है—सब लेफ़्टनेंण्ट (१ वर्ष नौकरी), लेफ़्टनेंट २ वर्ष के, लेफ़्टनेण्ट ५ वर्ष के, कमांडर २ वर्ष के, कप्तान (छोटे) २ वर्ष के, कप्तान बड़े २वर्ष के, रीयर अडमिरल ३ वर्ष के ।

इंजीनियरों को ३ वर्ष ४ महीने पढ़ना पड़ता है । उन को जहाज़ी कारख़ानों में भी काम सीखना होता है । जहाज, अंजन बाइलर कैसे बनते हैं यह देखना होता है । बिजली का काम टारपीडो और तोप की बनावट जाननी होती है । पास होने पर उम्मेदवार को असिस्टेंट इंजीनियर का पद मिलता है, तब वे लड़ाई के जहाज़ पर काम चलाना सीखते हैं । ८ महीने पीछे फिर परीक्षा देकर असिस्टेंट इंजीनियरी का पद प्राप्त करते हैं। जहाज़ी विद्या का सर्वोच्च विद्यालय टोकियो में है ।

इन कालिजों में व्याख्यान जापानी भाषा में होते हैं और जिन शब्दों के लिए देशभाषा में शब्द नहीं है, वे विदेशीय भाषा के ही इस्तेमाल किये जाते हैं।

लड़ाई के बहुत से जहाज़ जापान में भी तैयार होते हैं, इन के सिवाय तोप, बन्दूक़, गोला, बारूद सब स्वदेशी होता है। पिछली फ़तह में जापानियों को सेना के बल का लाभ मालूम हो गया है। वे अपनी देश की सेना को सब भाँति प्रबल रखना चाहते हैं।

सन् १८६८ ई० में जापानी फ़ौज का सुधार हुआ था। फ़ान्स से उस्ताद बुलाये गये थे, नई तरह की वरदी बनी। इस नई तरह की फ़ौज ने पहिले सन् १८९४ ई० मे चीन के साथ हाथ किये, और तभी विदेशियों को जापान की शक्ति का हाल जान पड़ा। कठिन मौसिम में, इस ग़रीब देश ने रसद पहुँचाने का बहुत ही अच्छा बन्दोबस्त किया था। सितंबर सन् १८९४ में, उन्हों ने मंचूरिया लिया और नवंबर में पोर्ट आर्थर पहिली बार फ़तह किया। सन् १९०० में जब मैं अपने देश की फ़ौजों के साथ चीन को गया था तब मुझे, जापानियों की फ़ौज देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। मैं ने वहाँ १६ मास इन लोगों के साथ काटे थे। ये सिपाही मार्च करने में सब से तेज़ थे। ख़ूब निडर होकर लड़ते थे, कभी आईन विरुद्ध काररवाई करते नहीं देखे गये और चीनियों के साथ इनका वर्त्ताव बहुत ही अच्छा था। आज कल यह कहना मिथ्या नहीं है कि जापानी फ़ौज सब देशों की फ़ौजों से बढ़ कर है। इस देश वालों ने थोड़े से फ़ान्स, जर्मन और इटालियन-शिक्षकों की सहायता से जादू का सा परिवर्तन किया है।

जापानी फ़ौज की शुमार ठीक ठीक नहीं मिलता परन्तु अन्दाज़न इस भाँति है—

वर्तमान—डेढ़ लाख
फर्स्ट रिज़र्व ,,
सेकिंड रिज़र्व ,,

टोटल-साढ़े चार लाख

इसमें ८,९ हज़ार अफ़सर हैं । इम्पीरियल गार्ड के सिवाय १२ डिवीज़न हैं । साढ़े सात हज़ार आदमी फ़ारमूसा में ड्यूटी पर हैं । अच्छे घोड़ों के अभाव से रिसाले यहाँ के ठीक नहीं हैं । डिवीज़न पीछे एक रिसाला है । टोकियो में दो ब्रिगेड अलग हैं । डिवीज़न पीछे ६ तोपख़ाने हैं । बारह बाटरी और तैयार हो रही हैं । वर्तमान प्रकार की तोप को अरीसाका नाम के अफ़सर ने बनाया था । उसी के नाम पर सब तोपों का नाम "अरीसाका तोप" रक्खा गया है ।

प्रजा में जो मनुष्य आरोग्य है वह फ़ौज में लिया जाता है उँचाई ५ फ़ीट होनी चाहिए । भरती की उम्र २० साल है । ४० व तक उनको फ़ौजमें लिया जा सकता है ।

यद्यपि जहाज़ों पर चढ़ कर लड़ाई करना जापान में पहिले भ था जैसा इतिहास पढ़ने से जान पड़ेगा, परन्तु नियमबद्ध जहाज़ फ़ौज सन् १८६७ में बनी है । इसके लिए जापान ने अपने अफ़स हालेंड में भेजे तथा अंगरेज़ी दूत की सहायता से कुछ शिक्ष इंगलेंड से बुलाये । सन् १८७३ में जहाज़ी कालेज टोकियों स्थापित हुआ जिसमें इंगलिश नेवल गनेरी स्कूल के सदृश क़वायद परेड सिखाई जाने लगी । टोकियो से कालिज जब इताजीमा को भेज दिया गया तब यहाँ बड़े अफ़सरों के लिए पृथक् शिक्षालय खुला । टारपिडो का काम बताया गया । जहाज़ी दस्ते तैयार हुए । सन् १९०१ में जहाज़ी फ़ौज २८,५४१ थी जिस में १,७३९ अफ़सर थे । लड़ाई के जहाज़ों का हिसाब इस प्रकार है—

बैटिलशिप फ़र्स्ट क्लास	११
,, सेकिंड ,, ...	२
,, थर्ड ,, ...	४
कोस्ट डिफ़ेंस	१
आरमोर्ड क्रूसर्स	१३
क्रूसर्ज	१६
टारपिडो गनबोट	२
डिस्ट्रौयर	४२
बड़े टारपीडो बोट	४०
सब मेराइन	१०
लाइनर (२० नाट से ऊपर)	१

फ़ौजी जहाजों के ४ बड़े अड्डे हैं। इन सब में जहाज़ बनाने के कारख़ाने भी हैं। पहिला याकोहामा है जो सब से पुराना है। दूसरा कुरे है जिसमें तोप और गोले बनाने का भी कारख़ाना है। तीसरा सासीवो में एक ऐसा तालाब है जहाँ जहाज़ लाकर पानी सब निकाल दिया जाता है और सूखे में जहाज़ खड़ा हो जाता है तब जहाज़ की मरम्मत की जाती है। चौथा घाट भिजूरू है जो सन् १९०१ मे तैयार हुआ है। और भी नये घाट बन रहे हैं।

पिछले युद्ध में जापान के सैनिक चिकित्सा विभाग ने अपने उचित प्रबन्ध से संसार को चमत्कृत कर दिया है। ऐसे कठिन युद्ध में भी सिपाहियों को जलवायु-सम्बन्धी रोग बहुत कम होने पाये। ये सब जापानी चिकित्सकों की चेष्टा का फल था।

युद्ध के समय में ऐसा देखा गया है कि फ़ौजी इन्तिज़ाम से रोगियों और घायलों की शुश्रूषा सन्तोषजनक नहीं बन पड़ती। फ़ौजों का ध्यान केवल मार कूट और दौड़ धूप में रहता है। बीमार और घायल इस काल में बड़े कष्ट में पड़ते हैं। कुछ वर्षों की बात है कि यूरोप के नरेशों ने सभा करके यह निश्चय किया है कि सैनिकविभाग से पृथक एक ऐसा समाज बनाया जाय जो इस काल में आहत

और रोगियों की शुश्रूषा करे और इस समाज के लोगों पर कोई गोली न चलावे। इन लोगों की वर्दी और झंडे पर ऐसा + चिन्ह लाल रंग का बना हुआ हो। इस समाज का नाम रैड क्रास सोसाइटी रक्खा गया। अन्य देशों की भाँति यह सोसाइटी जापान में भी है और सर्व साधारण लोग इस समाज के कामों में बड़ा अनुराग रखते हैं। लग भग दो फ़ीसदी जापानी इसके मेम्बर हैं जो ५० शिलिंग एक मुश्त अथवा १० वर्ष तक ६ शिलंग वार्षिक चन्दा देते हैं। अन्य देशों की भाँति जापानी इस कर्म को एक धर्मकार्य ही नहीं समझते वरन अपने सिर स्वजाति का ऋण गिनते हैं।

जापानी सर्वदा से दया करना अपना जातीय गुण समझते रहे हैं। अन्य देशों में लोगों की श्रद्धा पर उपर्युक्त समाज का काम चलता है और जापानी इसको अपना आवश्यक काम समझ कर अपनेनिज के काम की तरह करते हैं। अमरीका में जैसे आग बुझाने वाली कंपनी सर्वदा तैयार और सज्जित रहती हैं यह समाज भी हर वक्त प्रस्तुत रहती है।

राजकुमार कानिन इस सोसाइटी के सभापति हैं। महाराज और महाराणी इसके रक्षक समझे जाते हैं। सब प्रकार का प्रवन्ध गवर्नमेंट के हाथ में है। देश भर में इसकी शाखा फैली हुई हैं। इस सोसाइटी का प्रथम बड़ा कर्म यह है कि परिचारक तैयार किये जायँ। चीन के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें इन परिचारकों ने बड़ा काम किया था और राज से उनकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। सन् १९०० में जब चीन को दुबारा जाना पड़ा तब भी अपने और शत्रुदल के घायल रोगियों को सँभालने में बड़ी नामवरी प्राप्त की। परिचारकों का आदर उस समय फ़ौजी अफ़सरों के समान हुआ। तभी से इस समाज की प्रतिष्ठा सर्व साधारण में और भी बढ़ गई। जहाज़ी लड़ाई में इन परिचारकों को काम करने की

आज्ञा मिल गई है। परिचारकों का कर्तव्य इस भाँति निश्चय हुआ है—

"महाराज और महारानी के हृदय में जिस दयाभाव का आसन है, तथा मेम्बरो के मन में जो परोपकार-वृत्ति है उसी का ध्यान करके परिचारकों को अपना काम बड़ी चतुराई से करना चाहिए।

"जिस रणक्षेत्र वा युद्ध-पोत में काम करना हो वहाँ सैनिक-नियमों के अधीन रहना चाहिए, अफ़सरों का असम्मान तथा अपनी उद्दंडता कभी न दिखानी चाहिए।

"रोगी चाहे अपना हो चाहे शत्रुदल का, दोनों पर एक सी दया करनी चाहिए।

"परिचारक उन्नतचरित्र, संयमी, सहनशील बन कर अपने काम को सफलतापूर्वक पूर्ण करें।

"परिचारक और परिचारिका आपस में मेल रखकर सोसाइटी का मुख्य उद्देश पूर्ण करने का यत्न करें।

"उपर्युक्त उचित आचरण बिना परिचारक अपना कर्तव्य पूर्ण कदापि नहीं कर सकते।"

सन् १८७७ मे जो उपद्रव जापान देश में उठा था उस में योद्धाओं की शुश्रूषा का प्रबन्ध हुआ था। उस समय अपने और पराये घायल में कोई भेद नहीं किया गया था। विरोधियो का नाम "उपद्रवी प्रजा" रक्खा गया था और उनकी शुश्रूषा की आज्ञा प्राप्त करने के लिए सेसाइटी ने इस प्रकार आवेदन किया था—

"हमारे ऊपर देश का बड़ा भारी ऋण है। धन्यवाद की भाँति उसका कुछ शोध करने लिए हम ने एक समाज स्थिर की है जिस का यह धर्म है कि युद्ध में आहत वीरों की शुश्रूषा करे तथा उस समय सैनिक अफ़सरों के अधीन रहे। वर्तमान युद्ध में उपद्रवियों के घायल राजसेना के घायलो से बहुत अधिक हैं। उनके।

इनकी चिकित्सा का कुछ बन्दोबस्त नहीं है। वे पहाड़ और मैदानों में पड़े धूप और वर्षा का कष्ट उठा रहे हैं। यद्यपि वे स्वदेश-विरोधी हैं परन्तु तिस पर भी महाराज और महारानी की सन्तान हैं। उन को इस भाँति निर्दयता से छोड़ देना हम से बन नहीं पड़ता। अस्तु, हम प्रार्थना करते हैं कि हमें उनकी शुश्रूषा करने की आज्ञा दी जाय। इस दयाभाव के दिखाने से श्रीमानों का केवल देश-देशान्तरों में नाम ही न होगा वरन इन उपद्रवियों के हृदय पर आपकी इस उदारता का बड़ा प्रभाव होगा और उनको परमोत्तम शिक्षा मिलेगी।"

इस देश में जापान-नरेश सेना के प्रधान नायक हैं और सिपाही उनके निज के सिपाही हैं। प्रजा जो महाराज की बड़ी भक्त और सेवक है, उन सिपाहियों को भी अपना प्रेम-पात्र समझती है जो महाराज के इतने प्यारे हैं। महाराज की प्रसन्नता सम्पादन करने के लिए वे सिपाहियों का बड़ा ही सत्कार करते हैं। महाराज के कारण देश को स्वतंत्रता और वैभव प्राप्त है और महाराज के सहायक सिपाही लोग हैं। महाराज की कृपाओं के बदले में महाराज के सिपाहियों को युद्ध-काल मे सहायता पहुँचाना बड़ा ही आवश्यक है। वे लोग दूसरे सिपाहियों को उसी सम्मान-दृष्टि से देखते हैं जितने अपने देश-वासियों को।

इतिहास पढ़ने से जान पड़ेगा कि इस देश वासियों ने कभी युद्ध में जीते हुए शत्रुओं के साथ या दूसरे घायलो के साथ अन्याया-चरण नहीं किया। यूरोप के लोगों ने आहत शत्रु के ऊपर दया प्रकाश करने का मन्तव्य अब स्थिर किया है परन्तु जापानी इस बात को अनेक दिन से व्यवहार में लाते हैं। सन् १७०० ई० में जब महारानी जिंगो ने कोरिया के ऊपर चढ़ाई की तो सेना में यह आज्ञा प्रचारित की गई थी कि शत्रु भी यदि मुकाबिला करने में असमर्थ हो तो उसे क्षमा करना चाहिए। ३०० वर्ष हुए

हिदेपोशी ने जब कोरिया पर चढ़ाई की थी तो निर्दयता और घातक प्रकृति की बड़ी निन्दा की थी तथा आज्ञा दी थी कि शत्रु-दल के मृत सैनिकों को भी अपने सिपाहियों के साथ ही साथ संस्कार करना चाहिए।

सन् १८७६ ई० मे फ़ारमूसा निवासियों के एक अत्याचार के बदले में उन पर फ़ौज भेजी गई थी। उस समय कह दिया गया था कि जो लोग लड़ाई मे शामिल न हों उनपर कुछ अत्याचार न किया जाय। तमाम फ़ारमूसा में प्रकाशित कर दिया गया था कि युद्ध मे घायल हुए सब मनुष्यों की उचित चिकित्सा की जायगी। इस सम्बन्ध मे बैरनइशीगीरो ने लिखा है—"हमने यह काम बड़ाई के लिए नहीं किया, बरन ऐसा व्यवहार हमारे लिए स्वाभाविक है। हमारे महाराज तथा बड़े जनरलों का भी यह सिद्धान्त है कि दया प्रकाश करना सच्ची मनुष्यता है।"

चीन के साथ जो युद्ध हुआ, उस अवसर के लिए भी बैरन ने कहा—"प्रेम और वीरता हमारे आन्तरिक गुण हैं। हमारे शत्रु कैसे ही असभ्य और निर्दय क्यों न हों, हम उनके साथ दया का ही व्यवहार करेंगे।" उनका इन तीन बातों पर अधिक ध्यान था—

१—"यद्यपि फ़ौजी डाक्टर सोसाइटी के नियमो से .खूब परिचित है और अपना काम बड़े उत्साह से करते हैं, परन्तु इस बार उन्हे विशेष सावधानी से चलना होगा। हमारा शत्रु रैडक्रास सोसाइटी के नियमों से परचित नहीं है।

२—"सिपाही लोग इन नियमों को अच्छे प्रकार अभ्यस्त करलें। शत्रु इस विषय में कुछ नहीं जानता, उनका यह अभ्यास बड़े काम आवेगा।

३—"इस सोसायटी का उच्चाशय शत्रु के हृदय पर भली भाँति अंकित कर देना चाहिए।

यह भी कहा गया था कि—

"कोई घायल सिपाही युद्धक्षेत्र में न छोड़ा जावे, नहीं तो या असभ्य शत्रु उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार करेंगे।

निम्नलिखित विज्ञापन देश-भाषा में लिखकर जगह जगह पर चिपका दिया गया था।

"हम कोरिया और चीन की प्रजा को सूचित करते हैं कि हमारी सेना आत्मरक्षा करने तथा सर्वसाधारण के साथ अपना सद्व्यवहार दिखाने के लिए आई हुई है। क़साई और जल्लाद का काम करना हमें अभीष्ट नहीं है। लड़ाई में न शामिल होने वाली प्रजा को कुछ भी कष्ट न दिया जायगा। उन्हें लड़ाई से डरने या भागने की कुछ आवश्यकता नहीं है। अपने घर रहो और अपना काम किये जाओ। हमारा फ़ौजी क़ानून बड़ा सख्त है। यदि कोई सिपाही लूटमार करता है, हमें ख़बर दो। परन्तु जो कोई शत्रु को किसी प्रकार की सहायता देगा वह शत्रु समझा जायगा। उस पर किसी प्रकार की दया नहीं दिखाई जायगी। अस्तु, ऐसे कर्म को करके अपने सिर पर आफ़त न चढ़ा लेना। हम बीमार तथा घायल सिपाहियों और न लड़ने वाली प्रजा की यथाशक्ति चिकित्सा करेंगे। जहाँ जहाँ हमारी सेना के डाक्टर हैं उनके स्थान पर रैडक्रास के चिन्ह वाले झंडे हैं। रोगी और घायल यहाँ आकर चिकित्सा करावें। अपनी दशा का विचार न करें। सब के साथ उत्तम व्यवहार किया जायगा।"

देश-भक्ति और दयालुता दोनों के प्रभाव से ही यह शुभ कर्म उदय हुआ है। देश भर में इस कर्म के लिए चन्दा होता है। जिस नगर में १००० मेम्बर हों वहाँ इस सोसायटी की शाखा स्थापित की गई है। मुख्य सभा जो टोकियो में सब प्रकार का प्रबन्ध करती है इसमें तीस मेम्बर की एक कौंसिल है। तीसरे वर्ष इनका नया चुनाव होता है। तीसरे महीने अधिवेशन होता है। सब फ़ैसले अधिक सम्मति से तय किये जाते हैं। पंद्रह से

कम मेम्बर होने की दशा में अधिवेशन नहीं होता। प्रबन्ध करने वाले कमेटी में एक प्रेसीडेंट दो वाइस प्रेसीडेंट और पाँच मेम्बर हैं। ये भी तीन वर्ष पीछे स्थिर होते हैं। इनके नाम महाराज और महारानी की सेवा में मंजूरी के लिए भेजे जाते हैं। सभा के सब नियम युद्ध-विभाग के मंत्री और राज-महल के प्रबन्धक के पास संशोधन के लिए भेजे जाते हैं। युद्ध-विभाग की ओर से सैनिक मुख्य चिकित्सक सब बातों का उत्तर देता है। एक मिलिटरी डाक्टर और स्टाफ़ अफ़सर युद्ध-विभाग की ओर से कोंसिल में बैठते हैं। ये दोनों ओर की कारवाई चलाते हैं। अप्रैल के महीने में सोसाइटी का वार्षिक अधिवेशन होता है। इस अवसर पर नूतन पदाधिकारी चुने जाते हैं; रिपोर्ट पढ़ी जाती है; हिसाब की जाँच होती है। नये नये प्रस्ताव होते हैं। युद्ध के दिनों में कार्यकारिणी सभा का अधिकार बढ़ा दिया जाता है।

सभा का सब चन्दा टोकियो में इकट्ठा होता है जिसमे महाराज और महारानी का वार्षिक दान, मेम्बरों का चन्दा, सर्व साधारण का दान, और मूल का व्याज इत्यादि शामिल है।

सोसाइटी के मेम्बरों को एक तमग़ा दिया जाता है जिसका बड़ा आदर किया जाता है। अधिक मेम्बर बढ़ाने वालो, अथवा १००० येन से सोसाइटी की सहायता करने वालो, को एक ख़ास तरह का तमग़ा दिया जाता है।

स्त्रियाँ भी इस सोसाइटी की बड़ी सहायक हैं। उनकी शाखा का प्रबन्ध अलगही है। सन् १९०४ में इसकी ५३८ स्त्रियाँ मेम्बर थीं। इनमें राजकुल की स्त्रियाँ और सब अफ़सरो की घरवाली शामिल हैं। आजकल ३३६६ की संख्या है।

स्त्री-मेम्बर पट्टी तैयार करना और बाँधना सीखती हैं। अस्पतालों में जाकर भी कोई कोई स्त्री अन्य परिचारिकाओं के साथ काम करती हैं। पहिले परिचारिका केवल नीच स्त्री होती थीं

क्योंकि देश-रीति के अनुसार अच्छे घर की लेडी कभी परपुरुष की शुश्रूषा करना पसन्द नहीं कर सकती, परन्तु जब से बड़े घर की लेडियाँ अस्पताल में जाकर परिचारिका का काम सीखने लगीं तब से शिक्षित कुलीन कन्या परिचारिकाओं मे भरती होने लगी हैं। नीच कुल की स्त्रियाँ उतनी सुघड़ाई से काम नहीं कर सकतीं थीं जितना ये करती हैं। जब से महारानी परिचारिकाओं को आदर देने लगीं हैं तब से यह काम बहुत ही उत्तम समझा जाता है।

स्त्री-मेम्बरों ने लड़ाई के दिनों में बड़ा काम किया। उन्होंने साढ़े तीन लाख पट्टी तैयार करके युद्धक्षेत्र में भेजी, लड़ाई से लौटे हुए सिपाही रात को जिस शहर में ठहरते थे उन सब की शुश्रूषा उस शहर की स्त्रियाँ मेम्बर करती थीं। पुरानी पोशाक इकट्ठी करके उनमें से काट छाँट कर उन स्त्री और बच्चो के योग्य बनाती थीं जिनके पुरुष लड़ाई पर गये हुए थे।

स्कूल की लड़कियों ने बड़ा काम किया। १००० कमर-पेटी और एक हज़ार मोजे एक स्कूल से लड़ाई को भेजे गये। एक पाठशाला से २३,००० थैले सिपाहियों के लिए भेजे गये। शरद ऋतु में लड़कियों ने बनियाइन बनाईं। टोकियो मे रैडक्रास सोसाइटी का अस्पताल है। इसमें केवल धनी रोगी रक्खे जाते हैं, परन्तु लड़ाई के दिनो मे इसमें सिपाही रक्खे गये।

इस सोसाइटी ने जहाज़ी अस्पताल भी तैयार किये। चीन के साथ युद्ध होते समय दो जहाज़ थे। प्रत्येक में २०८ रोगी आसकते थे। सन् १८९९ में जापान ने अन्य देशों की जुड़ी हुई सभा मे यह स्थिर कर लिया कि रोगियों के जहाज़ पर कोई वार न करे, न उसे पकड़े। प्रत्येक १०० बीमारों की शुश्रूषा के लिए इतने आदमी होते हैं। २ डाक्टर, १ कम्पोडर, १ क्लर्क, २ बड़ी और २० साधारण परिचारिका अथवा परिचारक।

देश में जब फ़ौजें अभ्यास बढ़ाने के लिए झूँठी लड़ाई लड़ती हैं तब इस सोसाइटी के डाक्टर और परिचारिका तथा परिचारक गण 'युद्धकाल में किस तरह काम होता है' यह देखते हैं।

जब देश में कोई भयानक दुर्घटना यथा भूचाल, बाढ़, रेल लड़ जाना आदि से अनेक मनुष्य आपत्ति में फँस जाते हैं यह सोसाइटी उनको सब प्रकार की सहायता पहुँचाती है।

रोगियों की शुश्रूषा करनेवाले दल में शामिल होने के लिए प्रत्येक उम्मेदवार निम्नलिखित बातो के लिए जाँचा जाता है—

१-शारीरिक आरोग्यता, २-राजकीय विधि से सब भाँति निर्दोष, ३-योद्धा होने के अयोग्य, ४-उंचाई में ५ फ़ोट से ऊँचा।

मेनेजर की उम्र ३०-५० के बीच मे हो और उसमे काम करने की योग्यता हो।

डाक्टर और कम्पोंडर की उम्र ५० से अधिक न हो और वे डाक्टरी सनद रखते हो। क्लर्क २५-४० के बीच।

परिचारिका, परिचारक और डोलीवाले कहार वे ही होंगे जिन्होने सोसाइटी के अधीन काम सीखा है।

जो लोग रिज़र्व मे भरती किये जाते हैं उनको क़सम खानी पड़ती है कि जब उनको युद्ध, उपद्रव, शिक्षा, या झूंठी लड़ाई के लिए बुलाया जायगा तब एक दम हाज़िर होगे। ५५ वर्ष की उमर हो जाने से डाक्टर और ४५ वर्ष पीछे अन्य लोग सब बन्धनो से मुक्त कर दिये जाते है। रिज़र्व मे इन लोगो को इस प्रकार तनख़्वाह मिलती है।

डाक्टर	... ...	३६ येन वार्षिक।
कम्पोडर, मेट, डोलीकहार	...	१८ येनवार्षिक
परिचारक और कहार	...	१२ ,, ,,

परिचारिकाओं को इसलिए कुछ नहीं मिलता कि उनको सोसा इटी से बहुत अच्छी शिक्षा दी जाती है और वे अपने गुण से धनं रोगियों की शुश्रूषा करके बहुत सा धन प्राप्त कर लेती हैं ।

जो लड़कियाँ परिचारिका का काम सीखती हैं वे दो आद मियों की ज़मानत से भरती की जाती हैं । उम्र १७ से ३० वर्ष तक पढ़ने लिखने की योग्यता और शारीरिक आरोग्यता की परीक्ष पहिले ली जाती है । फिर उनकी ३ वर्ष शिक्षा होती है । ५ से ८ येन तक वार्षिक वज़ीफ़ा दिया जाता है । पहिनने को वस्त्र भी दिये जाते हैं । पहिले डेढ़ वर्ष पुस्तकें पढाई जाती हैं और शेष काल में उनसे काम कराया जाता है । फिर परीक्षा और क़सम लेकर उनको स्वतत्र कर दिया जाता है । जो बहुत चतुर होती हैं उनको वैरन डाकृर होशिमोतो ६ महीने और पढ़ाते हैं । तदुपरान्त उनको मुख्य परिचारिका की सनद मिलती है । जब कभी जगह ख़ाली होती है तो इन्हीं मे से मुख्य परिचारिका बनाई जाती हैं ।

परिचारक गण फ़ौजी अस्पतालों में काम सीखते हैं और डोली उठाने वाले कहारो को तीन महीने काम सिखाया जाता है । बीमारां का चढाना उतारना बताया जाता है और डोली का कील काँटा दुरुस्त करना और रस्सी रस्सा बटना सिखाया जाता है ।

यह सोसाइटी युद्ध काल में मित्र और शत्रु का भेद नहीं करती। जापानी सिपाही भी जब अपने प्रति द्वन्द्वी को गिरा लेता है तो उसमे शत्रुभाव भूल जाता है । असमर्थ पर दया करना जापानी अपनी सभ्यता का मुख्यगुण समझते हैं । अहिंसा उनका परम धर्म है वे उजड्ड लोग नहीं है और यह अच्छी तरह जानते हैं कि युद्ध उनको विवश होकर करना पड़ता है । वे अपनी शक्ति दिखाने को नहीं लड़ते । केवल देश और मान रक्षा के लिए ही उनको शस्त्र ग्रहण करना पड़ता है । फ़ौज में ऐसे सिपाही भी हैं जिन्होंने जन्म में कृषिकर्म ही देखा है, चावल खा के दिन काटे हैं, कभी कभी

के दर्शन तक नहीं किये। रूस के साथ जब युद्ध हुआ तो उन्होंने अपनी दयालु प्रकृति का अच्छी तरह परिचय दे दिया।

सन् १८९९ में सब राज्यों ने मिल कर हैग नामक स्थान में घायलों पर दया दिखाने के मन्तव्य स्थिर किये थे। उनको जापान ने प्रत्यक्ष कर दिखाया। उस सभा में रूस भी शामिल था। परन्तु उससे छोटी छोटी बातें भी नहीं बन पड़ीं। पहिले एक बात पत्र-व्यवहार की ही लीजिए। जापान के पास जितने रूसी क़ैदी थे सब को एक विशेष नियम से, अपने अपने घर पत्र भेजने का अधिकार प्राप्त था। ये सब पत्र पढ़ कर क़ैदियों के देश को रवाना कर दिये जाते थे। रूस ने भी जापानी क़ैदियों को पत्र लिखने की आज्ञा दी थी परन्तु उनके सब पत्र एकत्र करके जला दिये जाते थे। रूस में कोई जापानी पढ़ने वाला अफ़सर न था। जापानी बिचारे महीनों इसी आशा में रहते थे कि अब उनके पत्रों का जवाब आता है, अब आता है। जापानियों की गोलियाँ भी छोटी थीं जिनसे घायल असमर्थ बन जाता है, सर्वदा के लिए निकम्मा नहीं हो जाता। इस गोली का घाव बहुत ही जल्द अच्छा हो जाता है।

जापानी सिपाही, जापानी प्रजा और जापानी गवर्नमेंट सब दयालुता को सर्वोपरि समझते रहे हैं। युद्ध के आरम्भ में जो विज्ञापन जापान की ओर से प्रकाशित हुआ था उसमें साफ़ ये शब्द थे कि "हमारी लड़ाई रूसी मनुष्यों के साथ नहीं है, वहाँ की गवर्नमेंट के साथ है। अस्तु सर्वसाधारण जापानी का धर्म है कि जो रूसी लड़ाई में नहीं शामिल है वह शत्रु न समझा जाय"।

जब चीन के साथ लड़ाई हुई थी तब भी जापानियों का ऐसा ही सिद्धान्त था। मार्क्विस ओयामा ने युद्ध का भार अपने सिर लेते हुए प्रसिद्ध किया था—"लड़ाई केवल फ़ौजो फ़ौजों की है। इनसे बाहिर जो मनुष्य हैं उनमें किसी प्रकार का शत्रुभाव न होना चाहिए। शत्रु के जो सिपाही घाव या रोग से असमर्थ होगये हैं

उनकी रक्षा करना हमारा धर्म है। क्योंकि सन् १८८६ में जो समस्त शक्तियों की सभा हुई थी उसमें जापान शामिल था। उस सभा ने यही निश्चय किया है। उपर्युक्त सभा में चीन शामिल नहीं है। अस्तु, यदि उस के सिपाही हमारे घायल और रोगियों के साथ कोई निर्दय व्यवहार करें तो कर सकते हैं। परन्तु जापान को अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहना चाहिए। चीनी चाहे जैसा बुरा वर्ताव करें हम को अपनी सभ्यता कदापि न भूलनी चाहिए। चीनी घायल और रोगी अच्छी चिकित्सा पावें तथा क़ैदियों के साथ भलमनसाहत का बर्ताव हो। जो शत्रु हार स्वीकार करले उसको भी आदर भाव से रखना होगा। मरे हुए शत्रु के शरीर को भी सत्कार करना होगा। उसका जैसा दर्जा हो उसीके अनुसार सम्मान दिखा कर संस्कार किया जाना चाहिए। हमारे महाराज की इच्छा है कि जापानी सिपाही अपने वीरत्व और दयाभाव की पराकाष्ठा दिखा दें"।

यद्यपि चीन ने सभ्यता की कोई बात नहीं दिखाई परन्तु जापान ने अपने दयाभाव प्रकाशित् करने में कोई कसर नहीं की। चीनी घायल, रोगी और क़ैदियो के साथ ऐसा अच्छा वर्ताव किया गया कि चीनी लोग आज तक जापानी डाकृर की वर्दी को देख कर प्रसन्न होते हैं। एक अस्पताल में ५० चीनी सिपाही घायल थे। उनके सम्बन्ध में एक जापानी ने लिखा था—

"उनकी पूरी ख़बर ली जाती है। जापानी लेडियाँ उनको बड़ी दया से सम्बोधन करती हैं। उनको पूड़ी मिठाई देती हैं। मेरे पिता ने एक चीनी से पूछा कि हमारे इस व्यवहार को तुम कैसा समझते हो। चीनी ने उसी समय एक कागज़ पर लिख दिया (लेख द्वारा जापानी और चीनी बात कर सकते हैं) "मैं नहीं समझता कि हम अभी तक इस पापी संसार में ही हैं अथवा स्वर्ग सुख भोग रहे हैं।" दूसरे ने लिखा—। "तुम्हारी गवर्नमेंट ने अभी तक हमारी चोटी नहीं

काटी है । हमें आशा है कि युद्ध शान्त होते ही हम स्वदेश को भेज दिये जायँगे । मेरे एक स्त्री है, एक बच्चा और अस्सी वर्ष का बुड्ढा बाप है जो अब मर गया होगा । वे मुझे जीता हुआ देख कर कितना आश्चर्य करेंगे" ।

दूसरी बार वाक्सर उपद्रव दमन करने के लिए जब जापान अन्य सब यूरोपियन शक्तियों के साथ विजय प्राप्त करके पेकिन में अपना भाग लेकर बैठा तो सब से अधिक चीनी उसी मुहल्ले में एकत्र होते थे जहाँ जापानियों का प्रबन्ध था । दूसरी शक्तियों के अधीन जो मुहल्ले थे वे सूने पड़े थे ।

रूस के साथ युद्ध छिड़ते ही जापान ने एक नया महकमा बनाया जिसमें युद्ध के क़ैदियों के सब समाचार दिये जाते थे । ऐसा अच्छा प्रबन्ध कभी किसी देश मे नहीं हुआ । जनरल इसीमोतो इस महकमे के प्रधान हाकिम थे । इस महकमे में ये काम होते थे—

"हर एक क़ैदी की पिछली कथा सुनना और वर्तमान दशा लिखना । उनके सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करना । उनको आराम पहुँचाने के लिए जो चन्दा आता था अथवा जो पदार्थ उनके लिए सौग़ात के रूप में आते थे उन को लेना और क़ैदियो को बाँटना । क़ैदियो का रुपया—पैसा, ख़त-पत्र उनके देश को भेजना । मरे क़ैदियों का माल मता सँभालना, लड़ाई में मरे हुए रूसियो की उनको ख़बर सुनाना, युद्ध में गिरे हुए लोगो का असबाब सँभालना, सब प्रकार के समाचार जो क़ैदियो के सम्बन्ध में पूछे जाँय उनका जवाब देना । इस विषय के पत्र इस पते से आते थे " प्यूरियो-जोहो क्योको टोकियो-जापान " । रूस देश मे इस महकमे का समाचार पहुँचा दिया गया था । वहाँ से जो पत्र आते थे उनका बराबर उत्तर दिया जाता था । मरे हुए क़ैदियों का माल मता उनके घर पहुँचा दिया जाता था । क़ैदियो के मनीआर्डर

पत्र और पार्सल मुफ्त रूस को भेजे जाते थे। जो चीज़ कहीं से क़ैदियों के लिए आती थी उस पर महसूल नहीं लिया जाता था। यह सोच लिया जा सकता है कि क़ैदियों के रिश्तेदारों को समाचार प्राप्त करके कितनी प्रसन्नता होती होगी। जनरल कुरो पाटकिन को जब इस महकमे की ख़बर लगी तो उसके चित्त पर इसका बड़ा असर हुआ और उसने इच्छा की कि ऐसा महकमा रूस में भी होना चाहिए।

"सब क़ैदियों का पूरा विवरण लिखा जाता था। उनके घाव और रोग का उचित इलाज आरम्भ किया जाता था। क़ैदियों के पत्र व्यवहार की बात को एक जापानी पत्र ने इस प्रकार प्रकाशित किया। "आक्टोबर से दिसंबर तक ३७८९ क़ैदियों ने ८३८३ पत्र भेजे। २८६६ पत्र उन के रूस से आये, परन्तु ये सब पत्र हमारे अफ़सर पहिले पढ़ लेते हैं। केवल वह पत्र नष्ट किये जाते हैं जो इशारों में लिखे होते हैं।"

क़ैदियों के साथ जैसा वर्ताव होता था उसके नियम इस प्रकार थे। (१) क़ैदी के साथ निर्दयता अथवा असम्मान का व्यवहार न किया जायगा। (२) उनके उहदे और इज़्ज़त का सर्वदा ख़्याल रहेगा। (३) क़ानूनी कार्य के सिवाय उनसे कोई शारीरिक काम न लिया जायगा। (४) उनके धर्म-सम्बन्धी विचारों में हस्ता-क्षेप न होगा। (५) जो क़ैदी झगड़ा बखेड़ा करेंगे अथवा भागते हुए पकड़े जांयगे तो उनको फ़ौजी क़ानून के अनुसार दंड दिया जायगा।

क़ैदियों के पास जो हथियार और गोली बारूद होगा वह उनसे ले लिया जायगा परन्तु उनके निजका कोई पदार्थ ज़ब्त नहीं किया जायगा। अफ़सरों को किर्च रखने का अधिकार होगा। ब्रिगेड और डिवीज़न के कमांडर क़ैदियों के बदले में क़ैदी लेने देने का बन्दोबस्त कर सकेंगे। लड़ाई पर फिर न

आने की प्रतिज्ञा लेकर, सैनिकों को रूस भेज सकेंगे। सिपाहियों से पृथक् अफ़सर लोगों का डेरा होगा। क़ैदियों के रहने के लिए मकान बहुत अच्छे होंगे। थोड़ी जगह में बहुत से आदमी न ठूँसे जायँगे। हर एक कमरे के क़ैदियों में से एक उन सब का उत्तर दाता बनाया जायगा। क़ैदियों की सब शिकायत उसी के द्वारा सुनी जायगी। क़ैदी अपने धन से अपने मन प्रसन्न करने की चीज ख़रीद सकेंगे। अपने अफ़सर की मंज़ूरी से तार और चिट्ठी रवाना कर सकेंगे। परन्तु इशारों में कोई बात न लिखी जायगी। चिट्ठियों पर कोई महसूल न होगा।

"जब क़ैदी छोड़े जायँगे, उनकी सब चीज़ उन्हें दे दी जायगी। मरे हुए क़ैदियों का माल रूस की इन्टेलीजेंट बोर्ड को भेज दिया जायगा। जो चीज़ें भेजने लायक़ नहीं हैं वे नीलाम करके उनका दाम भेजा जायगा।

"दो अफ़सरों के बीच में एक क़ैदी उनका अर्दली दिया जायगा।

"अफ़सर यदि इस बात की क़सम खायँगे कि वे भागेंगे नहीं, और न कोई बखेड़ा करेंगे तो उनको बाहिर टहलने की आज्ञा दी जायगी। यदि प्रबन्ध हो सकेगा तो क़ैदी सिपाहियों को भी यह आज्ञा मिलेगी।

इस क़ानून में सब बातों का ख्याल रक्खा गया है। खान-पान, वस्त्र, उढ़ौना-बिछौना, चारपाई, मेज़, मार्गव्यय, मृत्यु के पश्चात् का ख़र्च सब कुछ ठीक ठीक विचार लिया गया है। मरने के पीछे मुर्दे को उसी इज़्ज़त से उठाया जाता है जैसा उस का फ़ौजी दर्जा हो।

क़ैदियों की पहिली टोली जब जापान में पहुँची थी उन्हें एक अमेरिकन लेडी ने देखा था, वह कहती है—

"जिस समय क़ैदी यहाँ आये उन्हें विश्वास था कि उनके सिर काट डाले जायँगे। परन्तु जब सर्व साधारण प्रजा के लोग उन

से हँसकर बातें करने लगे, उनको फल मूल, मेवा-मिठाई उपहार देने लगे, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ"।

पोर्ट आर्थर से जो क़ैदी मोजी में आये उनको शहर के बड़े आदमी लेने गये। रूसी क़ैदी पृथक् टोली में रक्खे जाते थे जिन में १२० आदमी होते थे। बस्ती मे आकर उनकी रक्षा उन्हीं के उहदे-दारों को सौंपी गई। वे ही उनकी गिनती करते थे, और स्नान कराने को ले जाते थे। पन्द्रह मिनट स्नान करने मे लगते थे। वहाँ मीठा और खारी दोनों प्रकार का पानी था। साबुन भी मिलता था। जो जनरल लोग थे उनकी बड़ी इज़्ज़त-बढ़ाई गई थी। जहाज़ से उतार कर सवारी में बिठाल कर शहर में लाये गये थे"।

जापान-टाइम्स ने लिखा है—"हमारे हाकिमों ने क़ैदियों के दर्जे का बड़ा लिहाज़ किया है और उन्हें सब तरह का आराम पहुँचाया है। महीने में कई बार उनको बाज़ार की सैर कराई जाती है। गरम नालों का स्नान कराया जाता है। यद्यपि उन पर पूरी चौकसी रक्खी जाती है परन्तु अच्छे चाल-चलन के क़ैदी बड़ी स्वतंत्रता भोगते हैं। रूसी क़ैदी हमारे इस व्यवहार से बहुत ही प्रसन्न हैं"।

ऊपर जिस अमेरिकन लेडी की बात लिखी गई थी उसी ने दूसरी जगह लिखा है—"डाक्टर और परिचारिका अविश्रान्त परिश्रम करते हैं। सर्जन जनरल किकूची दयालुता और सज्जनता की मूर्त्ति हैं"। एक डाक्टर ने मुझसे कहा—"क्या जापानी और क्या रूसी मैं रोगियों को एक ही सा समझता हूँ और ऐसा ही व्यवहार करता हूँ"।

रूसी सिपाहियों को बड़ी स्वतंत्रता थी जिस का यह फल हुआ कि बहुतेरे दुष्ट सिपाही अपनी पूर्व प्रकृति का परिचय दिखाने लगे। एक जापानी अख़बार ने लिखा—

"आरम्भ में आने वाले सिपाही बड़े ही निडर हो गये हैं। अगले दिन उन्हों ने एक स्त्री को छेड़ा था। रूसी सिपाही ऐसे सच्चरित्र नहीं

होते जैसे जापानी। अस्तु, उन के आचरण पर पूरी निगाह रखनी चाहिए। उन्हें मनमानी करने देना बहुत बुरी बात है। क़ैद की दशा में जो दुराचरण करे उसे अवश्य दण्ड देना चाहिए। यह बात संसार में प्रकाशित हुए बिन न रहेगी कि भले क़ैदियों के साथ जैसा जापानी व्यवहार करते हैं वैसा और कहीं भी देखने सुनने में नहीं आया"।

रूस के डाकृरी विभाग से २९ आदमी इन क़ैदियों में आ गये थे। इन सब को अन्य असमर्थ सिपाहियों के साथ फ़रासीसी दूत की मार्फ़त रूस को भेज दिया।

लड़ाई के समय भी जापानी अपनी दयालु-प्रकृति को नहीं भूलते। जिस रूस ने असमर्थ माल के जहाज़ों पर गोलाबारी की थी उसी रूस का 'रूरिक' नामक जहाज़ जब डूबने लगा तो जापानियों ने उसके सब आरोहियों को बचा लिया। किसी ने एडमिरल कमीमारा से इसका कारण पूछा, उसने उत्तर दिया—"लड़ने से पहिले और लड़ते समय हमारे हृदय मे शत्रु पर बड़ा क्रोध होता है परन्तु जब वह असमर्थ हो जाता है तब हमें उस पर बड़ी दया आती है। बड़ी बड़ी शक्तियों मे यह प्रतिज्ञा भी हो गई है कि असमर्थ पर प्रहार न किया जाय। मैं ने यह बात विशेष करके जापानी वीर सेगो से सीखी है। इस वीर ने जब 'एदज़ू' की गढ़ी तोड़ी और विद्रोहियों को क़ैद कर लिया तो शहर में डोंड़ी पिटवादी कि सब लोग दरवाजे बन्द करके अपने घरों में बन्द रहें। कारण यही था कि कोई उन उपद्रवियों को देख कर उन्हे लज्जित न करें। इसी भाँति होकोडेट के क़ैदियों को देखने की किसी को आज्ञा न थी। पोर्ट-आर्थर में जब रूसियों ने आत्म-समर्पण कर दिया सड़क के दोनों ओर जापानी सिपाही खड़े हो गये। बीच से रूसी सिपाही गुजरने लगे। जापानी योद्धाओं ने इस अवसर पर अपना कुछ भी अभिमान प्रकट नहीं किया। जो सिपाही बहुत दुर्बल थे उनकी बन्दूक़ और असबाब को लेकर जापानी उन्हें सहारा देते

चलते थे। जापानियों ने उनको इतने सत्कार से विदा किया कि जनरल स्टोसेल ही विजयी जान पड़ता था।

पोर्टआर्थर में घिरे हुए रूसी जब .खूब लाचार हो रहे थे और दिन दिन गोलों का निशान बन रहे थे। जापान-नरेश ने उनकी दशा पर दया दिखाई और यह समाचार भिजवाया—

(१) जापान-नरेश निम्नलिखित प्राणियों पर अपनी दया दिखाना चाहते हैं। स्त्रियाँ, १६ वर्ष से नीची उम्र के बालक, पादरी, राजदूत, और तमाशा देखने वाले अन्य देशीय अफ़सर।

(२) इस पत्र का उत्तर सुइशियांग से १०० गज़ दूर पर १७ तारीख़ के सवेरे दस बजे तक रख दिया जाय।

(३) शान्ति के झंडे को लेकर उपर्युक्त लोग उसी स्थान पर दो बजे शाम को आ जायँ।

(४) इन लोगों के लेने के लिए हमारी एक पलटन की टोली उस स्थान पर सुलह का झंडा लेकर पहुँचेगी।

(५) क़िले में से निकलनेवाले लोगों पर असबाब मुख़्तसिर होगा और उस की तलाशी ली जा सकेगी।

(६) लिखे हुए काग़ज़, छपे हुए पत्र, लड़ाई सम्बन्धी समाचार पूरित लेख, बाहिर न लाये जायँगे।

(७) इन लोगों की रक्षा डालनी तक की जायगी।

(८) हाँ या ना का एक जवाब मिलना चाहिए। इन शर्तों में कोई परिवर्त्तन नहीं होगा।

यद्यपि रूसियों ने यह बात स्वीकार नहीं की, परन्तु जापानियों की भलमनसाहत इस बात से .खूब दरस गई।

जब जनरल स्टोसल ने यह दरख़ास्त की कि अस्पतालों पर जापानी गोले न चलावें, तो जनरल नोगी ने निम्न लिखित उत्तर दिया था—

"मैं यह प्रकाशित करने का अधिकार रखता हूँ कि जापानी कभी निर्दयता के काम नहीं करते। हम लोगों ने आरम्भ से लेकर अब तक एक बार भी अस्पताल या रोगियों के जहाज़ पर गोला नहीं चलाया। परन्तु क़िले का बहुत सा हिस्सा हमे दिखाई नहीं देता। दूसरे लगातार चलती रहने के कारण हमारी तोपें ढीली पड़ गई हैं और उनका गोला बहक कर कहीं का कहीं चला जा सकता है। अस्तु, हम अस्पताल पर गोला न लगने का प्रण नहीं कर सकते"।

इस युद्ध में अनेक बातें ऐसी की गईं जो आगे किसी ने न की होंगी। एक बार जापानियों ने डाक के ५ बड़े थैले पोर्टआर्थर को भेज दिये। ये उन्हों ने मार्ग मे पकड़े थे। इन थैलो में सिपाही और अफ़सरो के घर की चिट्ठियाँ थीं जिन्हें पढ़ कर उन्हों ने जापानियों का कितना गुण माना होगा। रूसी जनरल ने इस कृपा के बदले में जापानी घायलों को पत्र लिखने और उन पत्रो को भिजवाने का प्रबन्ध किया था। जापानी रैड क्राससोसाइटी ने यह कहला भेजा कि यदि पोर्टआर्थर में रूसियो के पास अस्पताल का सामान न रहा हो तो पट्टी और दवाई वग़ैरह वाहिर से भिजवा दी जाय।

रूसी घायलों की पूर्ण सेवा होती थी। जापान ने पोर्टआर्थर पर २० हज़ार घायलो के लिए अस्पताल का बन्दोबस्त किया था।

३० मई सन् १९०४ को वह नियम प्रकाशित हुए जिनके अनुसार लड़ाई होने के पश्चात् घायलो को एकत्र करना चाहिए वे चाहे अपने हों या शत्रु के, दोनो के साथ एक सा व्यवहार करना स्थिर किया गया। उक्त नियमावली यहाँ पर प्रकाशित की जाती है।

(१) "प्रत्येक लड़ाई हो चुकने के बाद हर एक पल्टन को चाहिए कि युद्ध क्षेत्र की सफ़ाई करे। बीमारों, घायलों और मुर्दों को एकत्र

करें, खोये हुए असबाब को तलाश करें। इस काम के लिए पल्टन पल्टन से टोली निकालनी चाहिए।

(२) सैनिक वैद्यक विभाग के अनुसार बीमारों के साथ व्यवहार किया जायगा—चाहे वे अपने हों वा पराये।

(३) मृत सिपाही की पाकटबुक, वर्दी के निशान, अथवा हुलिये से रोगी के नाम, उहदे, दर्जे, रिश्ते, और पल्टन का पता लगाना चाहिए।

(४) इम्पीरियल आर्मी के सब मुर्दे जला दिये जायँगे। रूसियों के मुर्दे गाड़ दिये जायंगे। सिवाय उनके जो छूतदार बीमारियों से मरे हों, अथवा फ़ौज मे छूतदार रोग फैल रहे हों तो शत्रुदल के मुर्दे भी जला दिये जायँगे।

(५) जब तक पूरा निश्चय मृत्यु का न होगा कोई मुर्दा न गाड़ा जायगा।

(६) तलाश करने वाली टोली दोनों दल के मुर्दे अलग अलग इकट्ठे करेगी। उन सब को आड़ मे रक्खा जायगा अथवा उनको चटाई से ढक दिया जायगा। जब एक जगह मुर्दे एकत्र किये गये हों तब भी उनको ढकना चाहिए।

(७) जब मुर्दे एकत्र हो गये हों और उनके पृथक् पृथक् समूह बन गये हों तब जितना शीघ्र बन सके उनका अन्तिम संस्कार कर दें।

(८) मुर्दा गाड़ते समय निम्नलिखित बातों का विचार स्थिर करना होगा।

१—समाधिस्थान—जहाँ तक संभव हो सड़क, गाँव क़सबे तथा पड़ाव से कुछ दूरी पर हो।

२—समाधिस्थान नदी नाले और कूओं से जिनका पानी पीने के काम आता है दूर होना चाहिए।

३—समाधिस्थान ऊँची धरती पर हो अथवा जहाँ कुछ ढाल हो, धरती की मिट्टी पोली और सूखी हो।

(९) स्वदेशी फ़ौज के मुर्दे अलग जला दिये जायँ और उनकी अस्थि देश को भेज दी जायं। जब हड्डी भेजना कठिन हो तो केवल बाल भेज दिये जायँ और हड्डियाँ समाधिस्थ कर दी जायँ। जब पृथक् पृथक् जलाना न बन सके तो सिपाही और उहदेदार साथ साथ जलाये जायँ और उनके बाल उनके घर भिजवा दिये जायँ।

(१०) युद्धक्षेत्र की भेजी हुई अस्थियाँ अथवा बाल देश में जाकर फ़ौजी क़ानून के अनुसार दफ़न किये जायँगे।

जिन लोगों की हड्डियाँ समयाभाव से युद्ध क्षेत्र में गाड़ी गई थीं वे भी निकाल कर देश मे ही समाधिस्थ की जायँगी।

(११) जो मुर्दे गाड़े जायँगे उनका बन्दोबस्त इस भाँति होगा।

१—अफ़सर, वारंट अफ़सर, पुराने उहदेदारो की क़बरें अलग अलग होंगी।

२—अन्य लोगों की क़बरें अलग अलग होंगी। परन्तु ऐसा न बन पड़े तो वे एक जगह ही गाड़ दिये जायँगे।

(१२)—दुश्मन के मुर्दे निम्न लिखित नियमों से भूमिस्थ किये जायँगे।

१—बड़े और छोटे अफ़सरों तथा बड़े उहदेदारों की लाश अलग अलग गाड़ी जायगी।

२—सिपाही पचास पचास करके इकट्ठे दबाए जायँगे।

३—क़बर एक गज गहरी होगी।

४—क़बर में पहिले घास या पत्तों का बिस्तरा कर के तब मुर्दा लिटाया जायगा। बीमारी रोकने वाली सब बातो पर पूरा ध्यान दिया जायगा।

५—खोदी हुई मिट्टी क़बर में भर क़र उसी का छोटा चबूतरा बना दिया जायगा।

(१३) स्वपक्ष की सेना के जो लोग समाधिस्थ किये जायँगे उनके थोड़े से बाल काट कर सावधानी से रक्खे जायँगे।

(१४) शत्रु दल के सिपाहियों के जो मुर्दे जलाए जायँगे उन की बची हुई हड्डियाँ क़बर में दबा दी जायँगी।

(१५) अपनी और विपक्षीय क़बरें अलग अलग होंगी और उन पर चिन्ह स्थापित किये जायँगे।

(१६) संस्कार करते समय धार्मिक रीतियों का बर्ताव किया जायगा। शिन्तो अथवा बौद्ध पंडा अपने लिए और पादरी अन्य धर्मावलम्बियों के लिए बुलाया जायगा।

(१७) यदि इस देश-निवासियों (चीनियों) के कोई मुर्दे प्राप्त हों तो वे उनके रिश्तेदारो को दे दिये जायँगे। यदि इस बात का पता न लगेगा तो विपक्षदल के मुर्दों की तरह उनका संस्कार किया जायगा।

(१८) अपने मृत सिपाहियों का माल असबाब, उनके बाल अथवा हड्डियाँ अच्छे प्रकार बाँधकर उन पर सिपाही का नाम दर्जा और पलटन लिखकर वह गठरी पलटन के हेडक्वार्टर में भेज दी जायगी।

(१९) जो शत्रु-दल के सिपाही गाड़े वा जलाये गये हैं उनकी फ़िहरिस्त डिवीज़न कमांडर को भेज दी जायगी। वहाँ से वह टोकियो के उस महकमे में जायगी जहाँ शत्रु-दल के हत, आहत, और क़ैदी सिपाहियों का सब समाचार संग्रह किया जाता है। क़ैदी का सब माल मता भी उसी जगह रवाना कर दिया जायगा।

(२०) जो माल मता उन लोगों का है जो उसी देश अर्थात् चीन के रहने वाले हैं, वह सब उनके हाकिम के पास भेज दिया

जायगा। यदि उसके रिश्तेदारों का पता मिल गया तो फ़ौजी महकमे द्वारा उनको दे दिया जायगा।

(२१) हथियार, रसद, घोड़े, नक़शे, और अन्य पदार्थ जो युद्धक्षेत्र में लावारिस पड़े मिलेंगे। उनका फ़ैसिला जरनैल साहिब करेंगे। इनके सिवाय जो कोई चीज़ होगी वह निशानी समझकर रक्खी जायगी।

(२२) मरे घोड़े गाड़े जायँगे या जलाए जायँगे और ऐसा करते समय डाक्टर की सलाह लेली जायगी।

(२३) युद्धक्षेत्र की जितनी सीमा निर्धारित है उसमें इन नियमों का बर्ताव होगा। चाहे वहाँ लड़ाई हो रही हो या नहीं।

जब डाक्टर अथवा परिचारिका पकड़े हुए क़ैदियों में हो तो उनको तत्काल छोड़ देना चाहिए। इस नियमानुसार मुकदन से भागते हुए जब रूसी दल के अस्पताल वाले पीछे रह गये थे और जापानी दल के हाथ आगये तो उनके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार किया गया कि रूसी लोग भी इस बात की प्रशंसा करते थे। रूसी डाक्टर मातूरीफ़ मार्ग भूल कर जापानियों की एक फ़ौजी चौकी के पास जा निकला। चौकी के अफ़सर ने उससे कुछ बातें पूछकर उसे स्वतंत्र कर दिया। उसे रात को विश्राम दिया, भोजन कराया और ४ दिन पीछे सिपाहियों की रक्षा में रूसी दल की ओर लौटा दिया। कोई जापानी उसे न रोके, इसलिए उसको पास दिया तथा अपनी फ़ौजों का ठीक पता मालूम करने के लिए एक कम्पास भी भेट किया।

यद्यपि जापानी डाक्टर पहिले अपने घायलों को ड्रैस करके तब रूसियों की सुध लेते थे परन्तु छोड़ते किसी को न थे। एक जापानी संवाददाता ने लिखा था—"शत्रुदल का कोई आदमी चाहे किसी तरह से हमारे हाथ पड़ जाता है हम उसके साथ दया और न्याय का बर्ताव करते हैं। रूसी घायलों की मरहम पट्टी

ग्रैार खातिरदारी वैसी ही होती है जैसी जापानियों की। हमारे सिपाहियों के बीच में जब ऐसे घायल ग्रैार क़ैदी आ मिलते हैं तो वे उन्हें अपना साथी मानकर अपने राशन का हिस्सा दे कर समय निकालते हैं। हम लोग शत्रु को तभी तक शत्रु समझते हैं जब तक वह युद्ध करने के योग्य रहता है। उसके असमर्थ होते ही हम उस पर दया करने लगते हैं।

जब जापानियों को मालूम हुआ कि उनकी रसद से रूसियो का पेट नहीं भरता, तब उनके आहार के योग्य पदार्थ देने आरम्भ कर दिये। जो रूसी अफ़सर क़ैद में आये उन्ही को रूसी रीति के अनुसार भोजन बनाने का भार सौंप दिया।"

"जापान मेल" ने दिसंबर १९०४ के एक अंक में लिखा था इस युद्ध में रूसियों की ओर से सब प्रकार के जोर ग्रैार जुल्म हुए जब कि हमारे अस्पतालों में हज़ारो रूसी घायल सब प्रकार की खातिरदारी से आनन्द कर रहे है। रूसी अस्पतालो में एक भी जापानी नहीं है। न जाने हमारे घायलो ग्रैार क़ैदियो का उन्होंने क्या किया?"

जापान में केवल रूसी सिपाहियों की ही खातिर नहीं हुई। वरन उन लोगो का भी पूरा लिहाज़ किया गया जो लड़नेवाले न थे। उनका सब माल मता बड़े यत्न से सँभाला गया। मंचूरिया के जिन शहरो के आस पास लड़ाई होती थी उनकी प्रजा को जापानी कभी क्लेश न देते थे। मुकदन की लड़ाई में जापानी जनरल ने शहर से बाहिर अपनी फ़ौजें रक्खी थीं।

डाक्टर सीमन अमरीकन देश की ओर से जापानी डाक्टरों का काम ताड़ता फिरता था। उसने लिखा है कि आज तक किसी लड़ाई में फ़ौज की ऐसी अच्छी तन्दुरुस्ती नहीं रही। जापानियों ने ही यह योग्यता दिखाई है कि रोग को अपनी फ़ौजों के पास नहो आने दिया। मंचूरिया बड़ा रोगी देश है। उकृसमें डा रों के

बन्दोबस्त अच्छे रहे कि सैकड़ा पीछे केवल एक आदमी बीमार हुआ। अब तक घायलों की अपेक्षा चौगुने सिपाही रोग से मरते थे। जापानी फ़ौज की ऐसी एक भी पार्टी न थी जिसमें डाक्टर न हों। वे सर्वदा सिपाहियों को आरोग्य रखने की फ़िक्र मे रहते थे। कभी उनको ख़राब पानी न पीने देते थे। डाक्टर बराबर ख़ुर्दबीन से जल-परीक्षा करते थे, रासायनिक क्रिया से उसकी जाँच करते थे और उसकी बुराइयाँ सिपाहियो को समझाते थे। बहुत खाने पीने और मैला रहने के दोष उनको बताये जाते थे। इन्हीं चेष्टाओं से जापानी फ़ौज रोगो से बची रही, नहीं तो फ़ौजों मे जब बीमारी फैलती है तो तोपो के गोलो से भी अधिक काम करती है।

सिपाही के मरने पर उसके घर वालो को सर्कार १०० से लेकर कई हज़ार तक का तमस्सुक लिख देती है जिसका व्याज उसके वारिसो को मिला करता है। एक ऐसी सभा है जो सिपाहियो के बाल बच्चों की रक्षा इस प्रकार करती है—

(१) जिन के घर वाले लड़ाई में मारे गये हो।

(२) जो लोग लड़ाई पर जाकर अपना हाथ पैर गवाँ लँगड़े, लूले अथवा लुंजे या टोटे हो जाते हैं।

(३) वे घर जिनके मालिक फ़ौज मे हैं और घर पर विपत्ति पड़ गई है।

इस सभा को वार्षिक रिपोर्ट में से हम कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं।

"इस गाढ़े समय में जब कि हमारे सिपाही स्वदेश-रक्षा के लिए एक प्रबल शत्रु से लड़ रहे हैं, इस बात को कोई अस्वीकार न करेगा कि हमारे लिए कठिन परीक्षा का समय उपस्थित है। ऐसा समय हमारे देश के लिए कभी नहीं आया। इस समय सर्व साधारण प्रजा को मिलकर एक हो जाना चाहिए। इस समय हमारे देश के जवांमर्द लोग लड़ाई मे शामिल हैं: उन्होंने स्वदेश-

रक्षा के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया है। वे अब अपने बुड्ढे मा-बाप की सेवा नहीं कर सकते। अपने बीमार स्त्री बच्चो की ख़बर नहीं ले सकते हैं, अपने भूखे बच्चों का रुदन नहीं सुन सकते। इस दशा में कोई ऐसा स्वदेश-हितैषी भी होगा जो उनकी दशा देखकर विचलित न हो। यद्यपि सर्कार की ओर से सब को सहायता मिलती है परन्तु सर्कारी नियम ऐसे सीधे नहीं है कि प्रत्येक घर की असली हालत के अनुसार बरते जा सकें। इसके सिवाय सर्कारी सहायता कठिनता से यथेष्ट होती है। यद्यपि छोटे कुटुम्ब के लिए जो गॉव मे रहते हैं सर्कारी सहायता से गुजारा चल भी जाता है परन्तु शहरों के रहने वाले अथवा बड़े कुटुम्बों का गुज़ारा मुश्किल से होता है। ऐसे लोगों को सहायता पहुँचाना ही हमारा परम धर्म है।

"स्वदेश की प्रतिष्ठा स्थिर रखने के लिए जो अपना ख़ून बहा रहे हैं। उनके प्रियजनों की सुध लेना हमे कदापि न भूलना चाहिए। उनको यदि इस बात का निश्चय रहेगा कि देशवासी उनके बाल बच्चों की रक्षा कर रहे हैं तो बड़े उत्साह से युद्धक्षेत्र में अपना धर्म निबाहेंगे।

"यद्यपि यह सभा परोपकार के लिए इस कठिन समय मे संगठित हुई है, परन्तु यदि इसके द्वारा देश की अच्छी सेवा होगी तो इसकी स्थिति सर्वदा के लिए रहेगी।

जापानी धर्म का मूल दया है। इसी से वहाँ के लोग बड़े ही दयालु हैं। यद्यपि प्रतिष्ठा के लिए उनको युद्ध करना पडा है परन्तु किसी चीनी या रूसी के साथ उन्होंने निर्दयता का व्यवहार नहीं किया।

इतिहास।

जापान के वादशाहों का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखने से पहिले हम उनकी नामावली लिखते हैं। पाठकों को इससे यह भी मालूम हो जायगा कि कौन कब गद्दी पर बैठा, कब मरा और उसकी कितनी उम्र हुई।

	नाम	गद्दी पर बैठा	मरा	उम्र
		(सन् ईसवी से पहिले)		
१	जिम्मू	६६०	५८५	१२७
२	स्विजई	५८१	५४९	८४
३	अनई	५४८	५११	५७
४	इतोकू	५१०	४७७	७७
५	कोशो	४७५	३९३	११४
६	कोअन	३९२	२९१	१३७
७	कोरई	२९०	२१५	१२८
८	कोजन	२१४	१५८	११६
९	कैका	१५७	९८	१११
१०	सूजन	९७	३०	११९
		(सन् ईसवी)		
११	सुइनिन	२९	७०	१४१
१२	केको	७१	१३०	१४३

	नाम		गद्दी पर बैठा सन् ईसवी	मरा	उम्र
१३	सीमू ...	...	१३१	१९०	१०८
१४	चुआई		१९२	२००	५२
१५	जिंगो (महारानी)	...	२०१	२६९	१००
१६	ओजिन ...	...	२७०	३१०	११०
१७	निनतोकू ...	...	३१३	३९९	११०
१८	रीचू ...	...	४००	४०५	६७
१९	हानज़ाई ...	...	४०६	४११	६०
२०	इनक्यो ...	...	४१२	४५३	८०
२१	आनको ...	...	४५४	४५६	५६
२२	योरीयाकू ...	...	४५७	४७९	...
२३	सेनाई ...	...	४८०	४८४	४१
२४	केन्ज़ो ...	...	४८५	४८७	...
२५	निन्कॅन ...	...	४८८	४९८	५०
२६	मुरेत्सू ...	...	४९९	५०६	१८
२७	केताई ...	...	५०७	५३१	८२
२८	आनकन ...	...	५३४	५३५	७०
२९	सेनका ...	...	५३६	५३९	७३
३०	किमई ...	...	५४०	५७१	७३
३१	बिदात्सू ...	...	५७२	५८५	४८
३२	योमई ...	...	५८६	५८७	६९
३३	सूजन ...	...	५८८	५९२	७३
३४	सूको (महारानी)	...	५९३	६२८	७५
३५	जोमई ...	...	६२९	६४१	४९
३६	कोक्यूको (महारानी)...		६४२		
३७	कोतूको ...	...	६४५	६५४	५९
३८	सेमई (कोक्यूको)	...	६५५	६६१	६८

	नाम		गद्दी पर बैठा	मरा	उम्र
३९	तेनजी	... ...	६६८	६७१	५८
४०	कूबन	... ...	६७२	६७२	२५
४१	तिम्मू	... ...	६७३	६८६	६५
४२	ज़ीतो (महारानी)		६९०	७०२	५८
४३	मम्मू	... ...	६९७	७०७	२५
४४	जेमयो (महारानी)	...	७०८	७२१	६१
४५	जेमशो (महारानी)	...	७१५	७४८	६९
४६	शोमू	... ...	७२४	७५६	५६
४७	कोकेन (महारानी)	...	७४९	...	...
४८	जूनिन	... ...	७५९	७६५	३३
४९	कोकेन	... ...	७६५	७७०	५३
५०	कोनिन	... ...	७७०	७८१	७३
५१	कामू	... ...	७८२	८०६	७०
५२	हेजो	... ...	८०६	८२४	५१
५३	सगा	... ...	८१०	८४२	५७
५४	निन्ना	... ...	८२४	८४०	५५
५५	निमयो	... ...	८३४	८५०	४१
५६	मनताकू	... ...	८५१	८५८	३२
५७	सेवा	... ...	८५९	८८०	३१
५८	योज़ई	... ...	८७७	९४९	८२
५९	कोको	... ...	८८५	८८७	५८
६०	ऊदा	... ...	८८८	९३१	६५
६१	डेगो	... ...	८९८	९३०	४६
६२	शुजाकू	... ...	९३१	९५२	३०
६३	मुरगामी	... ...	९४७	९६७	४२
६४	रजई	... ...	९६८	१०११	६२
६५	एनियू	... ...	९७०	९९१	३३

	नाम		गद्दी पर बैठा	मरा	उम्र
६६	कुआज़न ...	...	९८५	१००८	४१
६७	इचयो ...	...	९८७	१०११	३२
६८	सानजो ...	...	१०१२	१०१७	४२
६९	गो-इचीजो ...	...	१०१७	१०२८	२९
७०	गो-शुजाकू ...	...	१०३७	१०४५	३७
७१	गो-रेज़ई ...	...	१०४७	१०६८	४४
७२	गो-सानजो ...	...	१०६९	१०७३	४०
७३	शिरकावा ...	...	१०७३	११२९	७७
७४	होरीकावा ...	...	१०८७	११०७	२९
७५	तैावा ...	...	११०८	११५६	५४
७६	शुतोकू ...	...	११२४	११६४	४६
७७	कनोई ...	...	११४२	११५५	१७
७८	गो-शिराकावा	...	११५६	११६२	६६
७९	नीजो ...	...	११५९	११६५	२३
८०	रोकूजो ...	...	११६६	११७६	१३
८१	ताकाकुरा ...	...	११६९	११८१	२१
८२	अन्तोकू ...	...	११८१	११८५	१५
८३	गोतावा ...	...	११८६	१२३९	६०
८४	सुची मिकाडो	...	११९९	१२३१	३७
८५	जुनतोकू ...	...	१२११	१२४४	४६
८६	चुकयो ...	...	१२२२	१२३४	१७
८७	गो-होरीकावा	...	१२२१	१२३४	२३
८८	योजो ...	...	१२३२	१२४२	१२
८९	गो-सागा ...	...	१२४२	१२४२	५३
९०	गो-फुका कूसा	...	१२४६	१३०४	६२
९१	कामीयामा ...	...	१२५९	१३०५	५७
९२	गोऊदा ...	...	१२७४	१३२४	५८

	नाम	गद्दी पर बैठा	मरा	उम्र
९३	फुशीमी	१२८८	१३१७	५२
९४	गो-फुशीमी	१२९८	१३३६	४९
९५	गो-विजयो	१३०१	१३०८	२४
९६	हनाजोना	१३०८	१३४८	५२
९७	गो-डेगो	१३१८	१३४९	५२
९८	गो-मुराकामा ...	१३३९	१३६८	४१
९९	गो-कामीयामा ...	१३७३	१४२४	७८
१००	गो-कमात्सू... ...	१३८२	१४३३	५७
१०१	शोको	१४१४	१४२८	२८
१०२	गो-हनाज़ोनो ...	१४२९	१४७०	५२
☼	☼	☼	☼	☼
११२	होगा शियामा ...	१६८७	१७०९	३५
११३	नाका मिकाडो ...	१७१०	१७३७	३७
११४	सकूरमाची... ...	१७२०	१७५०	३१
११५	मोमोज़ोनो	१७४७	१७६२	२२
११६	गोसकू रमाची ...	१७६३	१८१३	७४
११७	गो-मोमोज़ानो (महारानी)	१७७८	१७७९	२२
११८	कोकाकू	१७८०	१८४०	७०
११९	जिंको	१८१७	१८४६	४७
१२०	कोअई	१८४७	१८६७	३७
१२१	मुत्सहितो	१८६८		

जापान के प्राचीन देवताओ की चर्चा करते समय यह लिखा जा चुका है कि सूर्यदेवी का वंशधर ही जापान का राजकुल है। वर्त-मान में ऐसा सोचा जाता है कि जिन प्राचीन लोगो को देवता कहकर बखान किया जाता है वे असल में कोरिया के लोग थे, जो जापान की सुन्दर भूमि देखकर वहाँ जा बसे थे; और धीरे धीरे वे

इतने बढ़े कि उन्होंने उस टापू में अपना राज्य क़ायम कर लिया था।

सूर्यदेवी की जिस सन्तान को जापान का शासन करने की आज्ञा हुई थी उसने तकाचिहू पहाड़ के ऊपर महल बनाया था। यह पहाड़ क्यूशू टापू में दक्षिण की ओर है। और भी अनेक देवता यहाँ एकत्र होकर रहने लगे, कुछ समय पीछे देवताओ की सन्तान बढ़कर इतनी हो गई कि उन्हों ने राजकुमार इत्सूसे और जिम्मू को लेकर जापान के अन्य प्रान्तों का पर्यटन करना स्थिर किया। पहिले वर्ष वे अपने ही टापू में फिरे, फिर किश्तियाँ बनाकर समुद्र की खाड़ी पार की और आकू प्रान्त मे पहुंचे और यहाँ सात वर्ष तक रहे। इनके साथ में बुड्ढे, बुढिया, स्त्री, बच्चे सब थे। राजकुमार जिम्मू ने इनकी रक्षा के लिए एक टोली सिपाहियों की बना रक्खी थी वे जहाँ सुभीता देखते थे खेती कर लेते थे और मछली पकड़ कर उदर-पालन करते थे। उन्हीं किश्तियों की सहायता से वे ओसाका के पास वाली योदो नदी तक पहुँचे। यहाँ उनसे पहिले कोई और लोग बसते थे, जिन्हों ने इन से लड़ाई की और राजकुमार इत्सू से बाण खाकर मरा। उसने इसका कारण यह बताया कि मैं ने सूर्य देवी की ओर मुँह कर के लड़ाई की थी इसी से मेरे प्राण गये।

यमातू प्रायद्वीप के किनारे पर ऊदा नामक स्थान में दो भाई रहते थे। इन मे से बड़े ने राजकुमार जिम्मू को मारने का एक जाल बिछाया, परन्तु छोटे भाई ने राजकुमार को इसकी ख़बर दे दी। जिम्मू ने उस जाल में उसके बडे भाई को ही फँसा कर मारा और उस प्रान्त का अधिकार छोटे भाई को दे दिया।

राजकुमार जिम्मू जब यहाँ से आगे बढ़ा तो उसे गड्ढों में रहने वाले एक प्रकार के असभ्य लोग मिले। अब तक भी ऐसे लोग एक जगह वर्तमान है। ये लोग पहाड़ की तलहटी मे गुफ़ा खोदकर उसे घास और लकड़ियों से पाट कर घर बनाते थे। राजकुमार को

८० वीरों की एक टोली से भेट हुई। इनका बड़ा आदर किया गया। एक लंबी चौड़ी खोह में उन ८० सरदारों के लिये भोजन का प्रबन्ध हुआ। हर एक सर्दार के लिए एक एक सिपाही हथियार बाँध कर ख़ातिरदारी के लिए खड़ा हुआ। इस समय राजकुमार ने एक गीत गाया और ज्योंही उस ने एक ख़ास पद को शुरू किया त्योंही सिपाहियों ने एक दम उन खोह-निवासी सरदारों का सिर तलवार से काट गिराया।

इस प्रकार अनेक प्रान्त जीत कर राजकुमार जिम्मू ने यमातो सूबे के 'काशीवारा' स्थान मे एक महल बनवाया और इसी को अपनी राजधानी ठहराया। जापानियों का संवत् प्रथम महाराज जिम्मू की राजगद्दी के दिन से हो चलता है जो सन् ईसवी से ६६० वर्ष पहिले का है। महाराज जिम्मू ने ९० वर्ष राज्य किया और १२७ वर्ष के होकर मरे। जापानी इतिहास में इनकी बड़ो महिमा लिखी है। महाराज जिम्मू के पीछे जो नृपति हुए उनके समय में कोई उल्लेख-नीय घटना नहीं हुई। दसवें महाराज सूजिन के समय में बड़ी मरी फैली। जब उन्हे प्रजा के नष्ट होने का बड़ा क्लेश हुआ तो एक दिन उन्हें स्टष्टिकर्ता के दर्शन हुए और आज्ञा हुई कि यदि उनके नाम पर मन्दिर बनाया जाय तो यह विपत्ति हट सकती है। मन्दिर बनते हो प्रजा का क्लेश निवृत्त हो गया। राज्य भी बहुत बढ़ गया। लोग बड़े सुख और निश्चिन्ताई से जीवन व्यतीत करने लगे। टैक्स लगाने का तरीक़ा इसो राज्य मे निकला, शिकार और स्त्रियों की दस्तकारी पर भी महसूल था। चावल की खेती के लिए बंध बांधकर पानो इकट्ठा किया जाने लगा। कारीगरों को सरकार से बड़ा उत्साह मिलता था।

ग्यारहवें महाराज सूनिन ने ९९ वर्ष राज किया। इन के प्राण लेने के लिए महारानी के भाई ने बड़ी चेष्टा की थी। एक दिन उसने अपनी बहिन से प्रश्न किया कि "तुझे मैं प्यारा हूँ कि तेरा पति ?" उसने भाई को पति से प्यारा बताया। भाई ने

कहा "जो तू सच कहती है तो मेरी सहायता कर कि मैं इस देश का राजा बनूँ। महाराज जब सोते हों तब उनका सिर काट ले"। कई दिन पीछे एक दिन महाराज महारानी की जङ्घा पर सिर रक्खे अचेत सो रहे थे। महारानी ने कटार निकाल कर कलेजा भेदना चाहा। परन्तु जब अपने पति के रूप पर दृष्टि गई तो उस का हृदय उमग आया, हाथ रुक गया, आखों में से आंसू टपकने लगे। आँसुओं का पानी मुँह पर पड़ते ही महाराज की आँखेँ खुल गईं। वे घबड़ा कर उठ बैठे और बोले—"मैं ने अभी एक विचित्र स्वप्न देखा है। एक काली नाँगिन मेरे गले में लिपट गई है। कालीघटा ने बूँदों की झड़ी से मेरे मुँह को तर बतर कर दिया है। इस सब का क्या अर्थ है?" महारानी ने भयभीत होकर अपने कपट की सब कथा कह डाली।

महाराज ने उसी समय फ़ौज इकट्ठी करके अपने साले पर चढ़ाई कर दी। महारानी भी भागकर भाई के महलों में चली आई और यहीं उसके एक लड़का हुआ। फिर उसने क़िले की दीवार पर आकर महाराज से फ़रियाद की कि वे राजकुमार की रक्षा करें। महाराज ने महारानी पर फिर दया की और माँ बेटों को रक्षित स्थानमें ले आने का प्रबन्ध किया। एक चतुर सरदार को आज्ञा दी कि जब तुम बच्चे को लेने जाते हो तो महारानी को भी पकड़ लाना।

महारानी को यह भय था कि शायद मैं भी लड़के के साथ पकड़ी न जाऊँ इस लिए उसने सिर मुँड़वाकर नक़ली बालों को गूँथ सिर पर रखली। कमज़ोर सूत में आभूषण पिरो कर पहिने। कपड़े भी बड़े नाजुक थे। जब लड़का लेने को सरदार ने हाथ किया वह झटपट बच्चे को दे कर पीछे भागी। एक सिपाही ने उसे पकड़ने के लिए उसकी चोटी पकड़ ली। चोटी हाथ में रह गई दूसरे ने माला पकड़ी, वह भी टूट गई। तीसरे ने दुपट्टा पकड़ा जो खींचते ही फट गया, और महारानी भागकर भीतर महलों में घुस गई। महाराज को यह समाचार सुन कर बड़ा दुःख हुआ।

उन्होंने फिर चिल्ला कर कहा—"बच्चे का नाम इस की मा क्या रखना चाहती है"? उत्तर मिला—"कुमार होमूर्चिवाके"—महाराज ने पूछा—"इसका पालन कैसे होगा"? महारानी बोलीं—"धाय रख लेना"—फिर पूछा। "इसकी बाँह में जो तावीज़ है इसे कौन खोलेगा"? इसका भी उत्तर दे दिया गया। इतने ही मे महल में आग लगी और महारानी वहीं जल कर भस्म हो गई।

उन दिनों में ऐसी रीति थी कि जब कोई राजा मरजाता था तो उसके सब नौकर चाकर ज़िन्दा उसके साथ गाड़ दिये जाते थे। महाराज का एक भाई मरा, उसके सब नौकर चारों ओर बिठाल दिये गये और उन को मिट्टी से ढक दिया। केवल सिर नङ्गा रहा। वे बिचारे बड़े क्लेश से मर गये। महाराज को इस रीति से बड़ा शोक हुआ और निश्चय किया कि आगे को ऐसा न होना चाहिए। जब महारानी को समाधिस्थ करने लगे तो ज़िन्दा नौकरा के बदले मे मिट्टी की मूर्त्तियाँ बनाकर गाड़ दी गईं। जब देश मे बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ तब मिट्टी की मूर्त्तियाँ गाड़ने की रीति भी बन्द हो गई।

महाराज सुइनिन के बेटे केको ने ५९ वर्ष राज्य किया। केको का पुत्र कुमार ओसू बड़ा नामवर हुआ है। एक बार पिता ने उस से पूछा कि तेरा बड़ा भाई दरबार में क्यों नही आता है? तुम उसके पास जाना और समझाना।

कुछ दिन पीछे महाराज ने फिर वही बात कही और पूछा—"बेटे! तुमने अपने बड़े भाई को समझाने का कष्ट उठाया"? कुमार ने उत्तर दिया। "हाँ आप की आज्ञा पालन कर दी है। पिता ने पूछा "तुम्हारे समझाने का क्या फल हुआ"? बेटा बोला—"मैं ने आज्ञा उल्लंघन करने के दोष में उसे मार कर फेंक दिया।"

छोटे बेटे का ऐसा तेज़ मिज़ाज देखकर बाप बहुत घबड़ाया, ऐसे बेटे से कुछ काम निकालना चाहिए, उन दिनों में दो डाकू

जो आपस में भाई भाई थे बड़ा उपद्रव करते थे और किसी तरह वश में नही आते थे। अपने निडर बेटे को उन के मुकाबिले में भेजना बिचारा।

कुमार ओसू का नाम यामातोडेक पड़ गया था। वह इन डाकुओं के मारने को चला। अपने चाचा से स्त्री के कपड़े लिए जिन्हें पहिन कर वह एक ख़ूब सूरत लड़की बन गया। सीने में एक कटार छिपाली और डाकुओं के घर का पता चलाया। इन दिनो में उन्हों ने अपने लिए एक नवीन गुप्त स्थान बनाया था। उन्होने उस में एक दावत का बन्दोबस्त किया था। अनेक स्त्रियों को भी एकत्र किया था। यमातोडेक भी इन स्त्रियों के साथ भीतर घुस गया। इसके सुन्दर रूप पर वे दोनों बड़े मोहित हुए और अपने बीच में बिठाल हसने बोलने लगे। कुमार ने मौका पाकर बड़े डाकू के हृदय मे कटार घुसेड़ दी। यह दशा देख कर छोटा घर से भागा। कुमार भी उसके पीछे लगा। एक हाथ से उसकी गर्दन पकड़ी और दूसरे हाथ से पीठ मे कटार भोंकदी। डाकू गिर पड़ा और बोला–"अभी घाव में से कटार न निकालो, पहिले यह बता दो कि तुम कौन हो?" कुमार ने इस पर अपना सब वृत्तान्त कहा, डाकू फिर बोला—इस प्रान्त में ऐसा कोई न था जो हम दो भाइयो पर हाथ उठाने की हिम्मत करे। तैं ने आज यमातोडेक (यमातो बहादुर) नाम सच्चा कर दिखाया"। कुमार ने तरबूज की तरह उसे चीर कर अपना कटार बाहिर निकाल लिया, और काम पूरा कर के पिता को सब समाचार विदित किया।

दूसरी बार पिता ने उत्तर दिशा में बसने वाले एनो लोगों को वश करने के लिए भेजा। आज्ञा थी कि "वनदेवता तथा द्वादश मार्ग के आस पास रहने वाले लोगों को अधीन किया जाय"।

इस भारी मुहिम पर जाने से पहिले राजकुमार ने सूर्यदेवी के दर्शन करने की इच्छा की। कुमार की चाची यमातोहाइम मन्दिर

की अधिकारिणी थी। उसने अपने बहादुर भतीजे को नरदेव की दी हुई तलवार दी और एक तावीज़ भी दिया जिसको गाढ़ी विपत्ति मे खोलकर पढ़ने का परामर्श दिया।

जब वह ओवरी प्रदेश में पहुँचा तो राजकुमारी मियाज़ू पर मोहित हो गया। युद्ध जीत कर उसका पाणिग्रहण करने का निश्चय करके आगे बढ़ा। जब वह सगामी प्रान्त में पहुँचा तो वहाँ के राजा ने धोखा देकर एक झील के पास वाले जगल में होकर उसको जाने का मार्ग बता दिया। जब वह भीतर जंगल मे पहुँच गया तो चारों ओर से आग लगवादी। कुमार ने जब अपने चारो ओर आग आती हुई देखी तो उस तावोज़ को खोला तो उस मे आग से बचने की क्रिया लिखी पाई। तलवार से अपने आसपास का जङ्गल साफ़ करके अपनी तरफ़ से आग भी लगा दी और आप बीच मे साफ़ की हुई जगह पर निश्चिन्त होकर बैठा रहा। जब अन्दर और बाहिर दोनों ओर की आग आपस मे मिल कर बुझगई तब बाहर आया और जिस राजा ने यह धोखा दिया था उस को मार डाला।

सगामी से किश्ती मे बैठकर काज़ूसा को चला। बड़े ज़ोर से आँधी आई। इस समय उसके साथ उसकी स्त्री भी थी। उसने अपने पति से प्रार्थना की कि पति के बदले स्त्री का मरजाना बहुत अच्छा है इस लिए किश्ती मे से कई चटाइयाँ पानी मे फेंक दीं और वह उन के ऊपर समुद्र में कूद पड़ी। भेट लेकर लहरे शान्त हो गईं और शीघ्रही किश्ती पार जा लगी। इस राज-वधू की एक कङ्घी समुद्र किनारे लोगों को मिली। उन्हो ने इस पर एक बड़ी सुन्दर समाधि बनाई। जापानी चित्रकार इसी कथा के मूल पर चित्र बनाते हैं, जिस में राजबधू 'ओटो टचू बाना' चटाइयों के ऊपर बही जाती है और उसका पति किश्ती मे बैठा हुआ उसे निरख रहा है।

कुमार यमातोडेक ने एनोज़ लोगों की बस्ती में प्रवेश किया और उन्हें अपने अधीन किया। जब वह सफल होकर स्वदेश को

लौटा और समुद्र के उस स्थान पर उसकी दृष्टि गई जहाँ उसकी स्त्री डूबी थी उसका हृदय भर आया और बोला-"अज़ूमा हा या" (ओ मेरी स्त्री) ।

लौटते समय वह बीमार पड़ गया और घर पहुँचने योग्य नहीं रहा । उसने लूट में जो कुछ प्राप्त किया था वह अपने एक सच्चे मित्र के द्वारा सूर्यदेवी के मन्दिर को भेज दिया और एक पत्र पिता को लिखा कि "आप की और देवताओं की कृपा से मैं ने समस्त पूर्व देश आप के अधीन कर दिया है । मैं इस जीत का समाचार लेकर स्वयम् आनेवाला था, परन्तु रोगने मुझे असमर्थ कर दिया । मैं अब एक खेत मे पड़ा हूँ । मुझे किसी बात का शोक नही है । केवल यही चिन्ता रही कि मेरे जीवन ने मेरे इतना साथ नहीं दिया कि मैं अपनी यात्रा का सब वृत्तान्त आपको सुनाता" । ३२ वर्ष की अवस्था ही में उसका प्राणान्त हुआ । उस स्थान पर एक सुन्दर समाधि बनाई गई । केको का नाती सोमू ५९ वर्ष राज करके मरा । उसका पुत्र जापान का चौदहवाँ नृपति चुआई हुआ । जिसकी राजधानी कोरिया प्रायद्वीप के अति निकट क्यूशू टापू में थी । महाराज चुआइ की रानी जिंगो कोगो जापानी इतिहास में एक प्रसिद्ध रमणी हुई है । यह स्त्री अपने पति से भी अधिक चतुर और साहसवाली थी । मंत्री ताकीनोउची भी बड़ा बुद्धिमान् था । इसने लगातार तीन महाराजो की वजीरी की थी और तीन सौ वर्ष की अवस्था का होकर मरा था । महाराणी को दैवी प्रेरणा हुई कि पश्चिम की ओर एक बड़ा सुन्दर देश है जो धन धान्य से सब भाँति पूर्ण है । सोना चाँदी देख कर आँखें झलमला जाती हैं । यह देश जापाननरेश को मिलेगा ।

महाराज ने कहा-पश्चिम की तरफ़ तो सिवाय समुद्र के और कुछ भी दिखाई नहीं देता यह देव-वाणी सच्ची नहीं है । महारानी द्वारा पुनः देव-वाणी हुई । "तू राज्य करने योग्य नहीं है—जा सीधा मार्ग ले"—

मंत्री देववाणी सुन कर बहुत घबड़ाया। इसी समय अल्प काल ही में महाराज मूर्छित होकर मर गये।

महारानी ने मृत्यु का समाचार किसी पर प्रकट नहीं किया और कोरिया पर चढ़ाई करने का पक्का मनसूबा कर लिया। फ़ौजों की तैयारी होने लगी और जहाज़ों का बेड़ा तैयार किया गया। महारानी जिस जहाज़ पर सवार हो कर चलने वाली थी उसको मछलियों ने ले चलना निश्चय किया। उस काल में कोरिया देश के तीन भाग थे। कोराई, शिराकी और कुदारा। महारानी जिगो-कोगो के जहाज़ शिराकी के किनारे आकर लगे। यहां का राजा लड़ाई के लिए बिल्कुल तैयार न था। फ़ौज को देखते ही डर गया और सब भाँति अधीनता स्वीकार कर ली। अन्य दोनों राजाओं ने भी ऐसा ही किया। महाराणी को बहुत सी भेट मिली और भविष्यत् के लिए सालियाना ख़िराज मुक़र्रर हो गया। इस भाँति ये तीनों राज्य जापान के करद राज्य होगये। तीन वर्ष तक महारानी कोरिया में रही और लौटते समय अपने साथ अनेक क़ैदी इसलिए लाई कि राजा लोग अपने इक़रार से न फिर जायँ। इस बीच में महारानी के पुत्र भी हुआ था जो "ओजिन" नाम रख कर गद्दी पर बैठा। उस समय तब महाराज चुआई की मृत्यु का संवाद प्रकट किया गया। ओजिन नाम मात्र को महाराजा कहलाता था, यथार्थ में सब प्रबन्ध महारानी ही करती थी। ६८ वर्ष राज-काज करके १०० की अवस्था मे स्वर्ग सिधारी। पुत्र ने भी बहुत राज्य किया और ११० वर्ष का होकर मरा।

महाराज ओजिन के समय में कुदारा के राजा का वकील अजीकी आया, जिसने राज-पुत्र को चीनी भाषा सिखाई। दूसरे वर्ष एक और पंडित कोरिया से आया जिसने चीनी भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ राज-पुत्र को पढ़ाये।

ओजिन के पीछे राजगद्दी मझले पुत्र को मिली जो निन्तोकु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह महाराजा बड़ा दयालु हुआ है।

उसने एक बार प्रजा की दशा देख कर निश्चय किया कि लगातार टैक्स देते देते प्रजा बहुत ग़रीब हो गई है। इसलिए राजाज्ञा प्रचारित की कि तीन वर्ष तक कोई टैक्स नहीं लिया जायगा। यहाँ तक कि महलों की मरम्मत और तोशाख़ाना के कपड़ों के लिए भी रुपया नहीं माँगा। महाराज टूटे फूटे महलों में रहे, और फटे पुराने कपड़े पहिन कर गुज़ारा करते रहे। प्रजा ने बहुतेरी अर्ज़ की, परन्तु तीन वर्ष तक उस ने किसी से कुछ भी नहीं लिया। इस काल में देश की अवस्था सुधर गई। किसान लोग सब भाँति खुश नज़र आने लगे। एक ऊंचे बुर्ज पर चढ़ कर उस ने देखा कि खेतियाँ लहरा रही हैं। गाँव गाँव में धूँआ उठ रहा है। तब उसने टैक्स लगाया और प्रजा ने भी ख़ुशी ख़ुशी देना स्वीकार किया। प्रजा ने महाराज निन्तोकू को "महात्मा महाराज" कह के पुकारा।

इसी महाराजा ने अपने राज्य के सब सूबों में लेखक भेजे जो सब समाचार लिख कर दरबार में भेजा करते थे।

महाराजा निन्तोकू के चौथे पुत्र का नाम महाराजा इनक्यू हुआ जो जापान के १९वें महाराजा थे। ये बड़े उदासीन थे, बड़ी मुश्किल से राजगद्दी पर बैठने को राजी हुए। इनके समय में नामों का बड़ा झगड़ा पड़ा क्योंकि बहुत से आदमी उन प्रसिद्ध घरानों के नाम पर अपना नाम रख लेते थे जिन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। महाराज ने ऐसे झूंठे लोगों को खौलते हुए पानी के कढ़ाव में हाथ डालने को कहा। ज्यों ज्यो लोगों के हाथो मे फफोले पड़ते जाते थे उनको झूंठा किया जाता था। महाराज ने भविष्यत् के लिए नाम रखने के नियम स्थिर किये।

महाराज अकसर बीमार रहते थे। एक वर्ष जो कोरिया का एलची दरबार मे आया वह चीनी हकीम था। उसकी चिकित्सा से महाराज अच्छे हुए और साथ ही चीनी चिकित्सा का प्रचार देश भर में फैलाया।

इनक्यू के बड़े बेटे को मार कर उससे छोटा भाई गद्दी पर बैठा और महाराजा आनको कहलाया। आनको ने अपने चाचा की बहिन का विवाह अपने से छोटे भाई ओहात्सूसे के साथ करना चाहा और चाचा की रज़ामन्दी पूछने के लिए एक दरबारी सरदार को भेजा। महाराजा की इच्छानुसार विवाह करना चाचा ने स्वीकार किया। और अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए एक क़ीमती कंठा उपहार की भाँति भेजा। दरबारी सरदार कंठे को देख कर बेईमान हो गया। कंठा अपने घर रख लिया और महाराजा से कह दिया कि चाचा यह सम्बन्ध करने में राज़ी नहीं है। महाराजा को बड़ा क्रोध आया। फ़ौज को आज्ञा दी कि चाचा का घर घेर लिया जाय। अस्तु, वह निरपराध चाचा मारा गया। महाराज ने चाची को अपने महलों में रख कर अपनी महारानी बना लिया और चाचा की छोटी बहन अपने भाई को व्याह दी। यही भाई समय पाकर योरोयाकू नाम का महाराजा हुआ। चाची के साथ उसका एक पुत्र भी आया जो उस समय केवल सात वर्ष का लड़का था और लाड़ प्यार के कारण स्वतंत्र चित्त वाला हो गया था। महाराज को भय हुआ कि जब यह लड़का बड़ा होगा तो अवश्य बाप का बदला लेगा। इसीलिए इसका कुछ बन्दोवस्त करने की, सलाह उसकी मा अर्थात् महारानी से की। इनकी बातो को लड़का भी कहीं कान लगा कर सुन रहा था। उसने बाप का बदला लेने का पक्का इरादा कर लिया। एक दिन जब कि महाराजा सो रहे थे छुरी लेकर उनकी छाती में घुसेड़ दी और आप वहाँ से भाग निकला। मृत्यु के समय महाराजा की उम्र केवल ५६ वर्ष की थी। महाराजा का छोटा भाई ओहात्सूसे बड़ा उद्दंड स्वभाव का था। इसने घातक लड़के के सिवाय उसके रक्षा करने वालो के भी प्राण लिये। सत्तरहवें महाराज रीचू के पुत्र 'इचीनोबे-नोओशीहा' का वध किया। उसके दो छोटे छोटे बेटे ओकी और केकी डर से भाग निकले और गाय चराने वालों में मिल कर

अपने प्राण बचाये । इतना ख़ून ख़राबा होने के बाद "योहात्सूसे" राज गद्दी पर बैठा और अपना नाम योरीयाकू तिन्नो रक्खा ।

सन् ४७० ई० में चीन का एक एलची आया, इसकी ख़ातिरदारी करने का भार येरीयाकू ने उसी सरदार को दिया जिसे उसके बड़े भाई ने उसकी सगाई ठहराने के लिए चाचा के पास भेजा था। इसका नाम नीनोओमी था । तुनारी नाम का एक दूसरा सरदार एलची के साथ रहने के लिए मुक़र्रर हुआ । नीनोओमी ने बड़ी आव भगत से एलची की ख़ातिरदारी की। तथा अपना वैभव दिखाने के लिए बढ़िया बढ़िया पोशाकें पहिनी, आभूषण सजे और वह कंठा भी धारण किया जो उसे महाराजा के चाचा से सगाई स्वीकार करने के समय मिला था और उसने बीच ही में हज़म कर लिया था। एलची के साथ रहने वाले सरदार से जब महाराज ने एलची की ख़ातिरदारी का हाल पूछा ? तो उस ने नीनोओमी की बड़ी प्रशंसा की । बातों ही में उस कंठे का ज़िकर भी आ गया कि नोनीओमी ने जो पोशाक पहिनी थी बड़ी ही बढ़िया थी विशेष करके उसने एक कंठा बहुत ही क़ीमती पहिना था । महाराजा यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और आज्ञा की कि उस ने जो वस्त्राभूषण एलची के सम्मान के लिए पहिने थे उन्हें ही पहिन कर महाराजा को भी दिखावे । जिस समय वह सज धज कर आया महारानी भी महाराजा के निकट विद्यमान थी । उस कंठे को देखते ही पहिचान लिया । नीनोओनी को लाचार अपनी चोरी स्वीकार करनी पड़ी । महाराजा ने चाचा का निर्दोष होना प्रसिद्ध किया और अनजाने जो उसके साथ कुव्यहार किया गया था उसके लिए पश्चात्ताप प्रकट किया ।

एक बार महाराजा नदी किनारे टहल रहे थे । निकट ही एक नवीन सुन्दरी कपड़े धो रही थी । उसके रूप से आकर्षित होकर

महाराजा उसके पास गये और बोले-"क्या तुझे पुरुष की इच्छा नहीं है? मैं स्वयं तुझे अपने महलों में बुलाऊँगा।" जब वह वहाँ से लौटकर महलों में आये तो उन्हे अपनी बात याद न रही। लेकिन वह लड़की महाराजा के उस वचन को नहीं भूली। वर्षों बीत गये। कोई उसे राज महल में ले जाने के लिए नहीं आया। यहाँ तक वह बाट देखते देखते अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो गई। तब उसने सोचा कि "अब मेरे मुंह पर झुर्रियां पड़ गईं, हाथ पैर सूख गये। अब क्या आशा की जा सकती है, परन्तु यदि अब भी मैं महाराजा को अपना सतीत्व न दिखाऊँ कि मैंने उन पर कितना निश्चय रक्खा है तो बहुत ही निरासता रहेगी।" अस्तु अपने साथ यथा शक्ति अच्छी अच्छी भेट लेकर वह महाराजा के सामने पहुँची। महाराजा ने उसे आश्चर्य भरी निगाहों से देखकर पूछा-"बुढ़िया तू कौन है? और मेरे पास क्यों आई है?" उसने उत्तर दिया-"अमुक वर्ष, अमुक मास, अमुक दिन श्रीमहाराज ने मुझे राजमहल में बुलाने का बचन दिया था, आशा देखते देखते मैं अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो गई हूँ। अब कोई आशा पूर्ण होने का लक्षण नहीं रहा परन्तु मैं यह सिद्ध करने के लिए यहां उपस्थित हुई हूं कि मैंने अब तक आपके वचन पर विश्वास रक्खा है"। महाराजा को प्राचीन कहानी स्मरण कर बड़ी उद्विग्नता हुई। उत्तर दिया-"मैं अपना वचन बिलकुल भूल गया था, मुझे बड़ा शोक है कि तूने अपनी ऐसी अच्छी जवानी मेरी आशा में व्यतीत करदी। निश्चय, मुझे बड़ा दुःख हुआ है"। फिर उसको अपनी कृपा दिखाने के लिए बहुत सा धन धान्य देकर विदा किया।

जापानी इतिहास मे लिखा है कि यह महाराजा १२४ वर्ष के होकर मरे। इनके पुत्र ने अपना नाम महाराजा सेनाई रक्खा, और वह केवल ५ वर्ष राज करके मर गया। इसके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए महाराजा बनाने के लिए किसी राज-कुलोत्पन्न पुरुष की खोज की जाने लगी। यह पहिले कहा जा चुका है कि जब महाराजा

योरीयाकू ने अपने बड़े भाई के मारने वाले लड़के और उसके हिमायतियों का प्राणवध किया था तब उनके दो बेटे भी डरकर भाग गये थे और गाय चराने वालों में रहते थे। इनका नाम ओकी और वाकी था। ये हरीमा नाम के सूबे में अपने दिन काटते थे। एक दिन किसी अमीर के यहां सूबे के गवर्नर की दावत थी और वे दोनों लड़के भी उसी अमीर के यहां नौकर थे। इनको नाचना गाना भी आता था। जब गवर्नर के सामने इन्होंने गाया तो उसको इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्होने जो गीत गाये थे सब राज-दरबार में गाये जाने वाले थे। जब पूछ ताछ की गई तो जान पड़ा कि ये दोनों महाराजा रीचू के पोते हैं। गवर्नर ने दोनो को अपने साथ लिया और विधवा महारानी के पास भेज दिया। छोटा लड़का वाकी गद्दी पर बैठा और महाराजा केन्जो कहलाया। महाराजा यूरीयाकू ने इनके पिता को मार कर साधारण समाधि में गाड़ा था। इसने एक उत्तम समाधि बनवाई। महाराजा की समाधि नष्ट करने की भी इच्छा थी परन्तु उसके भाई ने ऐसा करने से रोक दिया।

कोई सन्तान न होने के कारण भाई ओकी गद्दी पर बैठा और निनकेन नाम का चौबीसवाँ महाराज कहलाया।

२५ वें महाराजा बड़े निर्दय थे। २६ वें महाराजा केताई के समय कोरिया पर दूसरी चढ़ाई हुई। २९ वें महाराजा के माई-तिम्रो के समय सन् ५५२ ई० में कोरिया से बुद्ध महाराज की मूर्ति आई।

तीसवें महाराजा बितात्सू तिम्रो के समय में कोरिया से बौद्ध-धर्म की पुस्तकें, पण्डित, बैरागिन, ज्योतिषी, और मूर्ति बनानेवाला कारीगर तथा बौद्ध मन्दिर बनाने वाले बढ़ई, आये। कई मन्दिर बनाये गये।

महाराजा बितात्सू ४८ वर्ष की अवस्था में मरे। इनके पीछे के महाराजा जिम्मू कहलाये। प्रधान मंत्री सोगा ने इनामेथा जो बौद्धधर्म का बड़ा भक्त था, महाराजा की स्त्री और मामी सोगा घराने की थी। राजसभा के कुछ लोग बौद्धधर्म के प्रेमी थे और कुछ उसे अच्छा नहीं समझते थे। इस महाराजा के मरने पर आपस में बड़ा फ़साद हुआ। मोरिया मंत्री जो प्राचीन धर्म का पक्षपाती था, मारा गया और फिर बौद्धों का प्रभाव बढ़ने लगा। सन् ५८८ मे ३२ वें महाराजा सूजन को अधिकार मिला। इनके समय में कोरिया से और भी घनिष्ट सम्बन्ध हुआ। मंत्री उमाको जो वर्तमान में राजमंत्री बौद्धधर्म का सच्चा प्रचारक था उसने अनेक जापानियों को धर्म-शिक्षा पाने के लिए कोरिया को भेजा। जापान में अनेक मन्दिर प्रतिष्ठित हुए। इस मंत्री के हृदय में दुर्वासना ने आकर घर किया और कुचक्र रचकर ४ वर्ष राज न करते करते महाराजा को मरवा डाला। गद्दी पर महाराजा की बहन बैठी, जो महारानी सूको कहलाई। राज का कामकाज उसका भतीजा उम्या दोनो ओजो करता था। महारानी के पीछे इसी का गद्दी पर वैठना स्थिर हुआ। यह बहुत भला आदमी था और अपनी मृत्यु के पीछे शोतोकू तैशी कहलाया। उसके सम्बन्ध मे कई आश्चर्य भरी बातें कही जाती हैं अर्थात् वह जन्म लेते ही बोलने लगा था और बड़ा चतुर था। उसकी याददाश्त बड़ी अद्भुत थी। आठ मनुष्यों के प्रश्न एक साथ सुनता और आठों को ठीक ठीक उत्तर दे सकता था। इसीलिए लोग उसको अष्टकर्ण भी कहते थे। इसके समय में लोगों ने अनेक मन्दिर बनाये और अपने ख़र्च से चलाये। उसने कोरिया निवासी एक पंडित को अपना गुरु बनाया और बुद्धदेव की निम्नलिखित पाँच आज्ञाएँ सीखीं—

१ चोरी न करना। २ झूंठ न बोलना। ३ शराब न पीना। ४ हत्या न करना। ५ व्यभिचार न करना। बुद्धदेव की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ बनवाई गईं और गांव गांव में प्रतिष्ठित की गईं। चीन देश से

उसने अनेक बातों का उपदेश लिया, चीनी भाषा पढ़ने का प्रचार किया गया। सन् ६२२ में २१ वर्ष राज्य करके परलोक-वासी हुआ।

मंत्री उमाको भी सन् ६२६ ई० में मर गया। दो वर्ष पीछे महारानी सूको परमधाम को गई। इनके समय में बौद्धधर्म ने बड़ी उन्नति की। इस समय देश में ४६ मन्दिर थे और १३८५ महन्त और वैरागिनें थीं।

इस धर्म के साथ ही साथ जापान में सभ्यता ने प्रवेश किया। तरह तरह के ज्ञान, विज्ञान और शिल्प जापान में चीन से आये। एक इतिहास में लिखा है कि चीन का एक राजपुत्र जापान में आ बसा था। उसके साथ कपड़ा बुनने वाले कारीगर भी थे। जापान में ये लोग अपनी अलग बस्ती बना कर रहा करते थे। उनके उपदेश से ही जापान में चीन से और भी कारीगर बुलाये गये। रेशम के कीड़े पालना और शहतूत के बग़ीचे लगना आरम्भ हुआ।

बौद्धधर्म के उपदेश का यह भी गुण हुआ कि बहुत से लोग वैरागी होने लगे। महाराजाओं को भी संसार मिथ्या सूझने लगा।

सन् ६६८ में महाराजा तेंनजी केवल तीन वर्ष के लिए राज्य पद पर सुशोभित हुए। ये पहिले दो महाराजाओं के समय में भी सब राजकाज करते थे। इसलिए इन्हें महाराजा होने पर कोई नई बात नहीं करनी पड़ी। इनके समय मे फ़्यूजी वांरा घराने का नाम ख़ूब चमकना शुरू हुआ। इस घराने के पुरखे लोग उन देवताओं के वंश मे थे जो प्रथम क्यूशू में बसे। इसीलिए यह भी राजकुल के समान प्राचीन समझा जाने लगा। महाराजा कोतोक्यू ने इन्हें सबसे पहिले आदर दिया। दूसरा घराना सोगा भी इस काल में बड़ा नामवर हुआ। उमाको के पीछे उसका बेटा मंत्री हुआ। पुत्र यमेशी ने अपने बड़े ठाट बाट बढ़ाये। अपना एक बड़ा क़िला बनाया और थोड़ी सी फ़ौज रक्खी। इसके बेटे इरोका ने और भी

वैभव बढ़ाया, परन्तु अभिमान का फल यह हुआ कि सन् ६८५ ई० में वह मरवा डाला गया।

जापान की जो फ़ौज कोरिया में रहती थी वह चीन की साजिश से निकाल दी गई। इस फ़ौज के साथ कोरिया के बहुत से लोग आये जो तरह तरह के हुनर जानते थे। जापानियों ने इनका बड़ा आदर किया। इनकी बस्ती पृथक् बसाई गई और सब प्रकार के टैक्सों से इन्हें मुआफ़ किया गया।

इस पीछे जो राजा हुए उनके विषय में कुछ कहने योग्य बातें नहीं हैं। महाराजा तिम्मू (सन् ६७३-६८६) ने नये नये उहदे मुकर्रर किये और बौद्ध के उत्सवों का प्रचार किया और मांस खाना बन्द किया। सन् ६७४ ई० में सुशीमाने चांदी का प्रकाश किया, इस से २० वर्ष पीछे चाँदी का सिक्का बना। महारानी जेमियों के ज़माने (७०८-७१५) में ताँबे का पैसा चला। पहिले इस देश में चीन और कोरिया का पैसा चलता था। सोने का सिक्का महाराजा जूनिन (७५९-७६५) के समय में चला। ग्रह-बेधने की शाला भी बनी। सन् ७०० के लग भग मुर्दा जलाना प्रचलित हुआ। जो चाहते थे अपना दाह कर्म कराने की इच्छा प्रकाश कर मरते थे।

पिछले समय में एक महाराजा के मरने पर जब दूसरे गद्दी पर बैठते थे तो अपनी राजधानी बदल लेते थे। महाराणी जेमियों के समय से नारा राजधानी स्थिर हुई और ७० वर्ष तक यहाँ सात महाराजा गद्दी पर बैठे। शहर नारा की रौनक़ ख़ूब बढ़ गई। सन् ७३६ में महाराजा शोमू ने एक बुद्ध की मूर्ति बनवाई जो ५३ फ़ोट ऊंची थी। सन् ११८० ई० में इस मन्दिर में आग लगी थी, जिस में मूर्ति का सिर पिघल गया और दुबारा बनवाया गया।

महाराजा क्वामू ने अपनी राजधानी सन् ७९४ में क्यूटो ठहराई और उसका नाम मियाको रक्खा। यह पहिले कहा जा चुका

हैकि फ्यूजी वारा घराने का सम्बन्ध राज परिवार से बहुत बढ़ गया था। राजवधू और राजमाता सब इसी वंश की होती थी। पुरुष राजदरबार में बड़े बड़े उहदों पर मुक़र्रर थे। उन्हों ने कुछ ऐसा प्रबन्ध किया कि महाराजा को तो वैरागी बना देते थे और गोद के बच्चों को नाम का राजा बना कर आप सब हुकूमत करते थे। बच्चा जब होश में आता था तो इस पराधीन जीवन की अपेक्षा धार्मिक जीवन ही अच्छा समझता था और वैरागी होकर किसी मठ में चला जाता था।

फ्यूजी वारा घराना लग भग ४०० वर्ष राज काज सँभालता रहा। सब बड़े बड़े उहदे इन लोगों के हाथ ही में थे। महाराजाओं के लिए रानी और उपपत्नी पैदा करना इनका प्रधान कर्म था। महलों में जो स्त्रियां होती थीं वे फ्यूजीवारा घराने की होती थीं। इसी से अल्पावस्था के राजपुत्रों को वश में रखना इन्हे कुछ कठिन नहीं था। स्त्रियो के अधिक प्रभाव से महाराजाओं का आचरण भी ठीक नहीं रहता था। वे महलों मे बैठे भोगविलास करते रहते थे। उनको राज्य का कोई झगड़ा नहीं बताया जाता था।

जब राज्य में कहीं लड़ाई झगड़ा होता था तो फ़ौज की कमान फ्यूजीवारा घराने के किसी सज्जन को नाम मात्र दे दी जाती थी, लड़ानें वाले लोग और ही होते थे। विजय का समाचार आने पर सब से पहिले फ्यूजी वारा घराने के सज्जन को इनाम दिया जाता था।

सागूवारा और आई घराने के लोग इस काल मे बड़े पंडित होते थे। उस समय शिक्षा विभाग इन्हीं के हाथ मे था। सागूवारा मिचीज़ाने नाम के पंडित राजगुरु थे। उनका शिष्य महाराजा ऊदा जब गद्दी पर बैठा तो बड़ी स्वतंत्रता से राजकाज करने लगा। यह देख कर फ्यूजीवारा घराने के लोग घबड़ाये और एक छोटे बच्चे को गद्दी देकर महाराजा ऊदा को वैराग्य दिला दिया। राजगुरु

मिचीज़ा इस बच्चे का भी शिक्षक नियत हुआ। महाराज देगो की उम्र उस समय केवल चौदह वर्ष की थी। मंत्री ने देखा कि राजगुरु के उपदेश से यह लड़का भी बाप की भाँति स्वतंत्र हो जायगा, इसी से गुरु जी को एक दूर देश का वाइसराय बनाकर भेज दिया, जहाँ वह ९०३ ई० मे मर गया। इस राजगुरु का बड़ा मान हुआ। इसका मृत्युदिवस (जून महीने की २४ तारीख़) अनध्याय समझा जाता है।

जब जापान में भी चीन को भाँति फ़ौजी और मुल्की महकमे अलग अलग हुए तो फ्यूजोवारा लोगों ने मुल्की काम पसन्द किये और फ़ौज के उहदे अन्य लोगों को बाँटे। फ़ौजी कामो को रुचि पूर्वक करने वाला तैरा घराना था। इनकी उत्पत्ति महाराजा काम्मू की उपपत्नी से थी। फ़ौजी कामों में अनुराग रखने वाला एक और घराना था जो मिनामोतो कहलाता था, यह भी राजकुल में से था। लड़ाई झगड़े इन दिनों मे बहुत होते थे। बहुत से लोगों ने सिपाही का काम अपना पेशा ठहरा लिया था और हथियार चलाना बड़े शौक से सीखते थे। ऐसे लोग किसी सरदार से सम्बन्ध स्थिर कर लेते थे। जब कभी काम पड़ता था उसके पास आ उपस्थित होते थे। इस सैनिक दल की वृद्धि और सेनापतियों के प्रभाव से फ्यूजीवारा लोग घबड़ाने लगे। तैरा घराने में कियोमोरी नामी पुरुष बड़ा प्रसिद्ध हुआ है। महाराजा गोशिराकावा को गद्दी से उतारने के लिए जब सरदारों में तकरार हुई तो कियोमोरी ने महाराजा का पक्ष लिया और विजय प्राप्त की, जिस से उसके अधिकार भी फ्यूजोवारा घराने के समान हो उठा। इस उच्चाधिकार को देख कर सरदार योशीतोमो जो मीनामोतो घराने का मुखिया था, फ्यूजीवारा लोगो का सहायक बन कर कियोमोरी से लड़ पड़ा। कियोमोरी ने उन सब को नीचा दिखाया। योशीतोमो के कई लड़के मारे गये। केवल कियोमोरी की सास के प्रबन्ध से एक लड़का योरीतोमो बचा लिया गया। हो जोतोकी मासा इसका प्रारू

रक्षक था। योशीतोमा के तीन लड़के उसकी उपपत्नी से और थे। इस स्त्री का नाम तोकीवा था जो यह बड़ी रूपवती थी। जापानी चित्रकार इसका चित्र खींचने में बड़ी योग्यता खर्च करते हैं। रूप के सिवाय इसके प्रसिद्ध होने का दूसरा कारण यह भी है कि इसका पुत्र योशित्सुने बड़ा नामवर हुआ है। जिस समय यह बालक गोद में था। चित्र में उस समय का भाव दिखाया जाता है। जब कि मा इस बालक को गोद में लिये अन्य दो बच्चों के साथ पथरीले मार्ग में फिरती थी। ऊपर से बर्फ़ पड़ रही थी। उनको इस दुर्दशा में देखकर एक सिपाही को तरस आया और उसने इनकी रक्षा की। उन दिनों शिक्षा का यह प्रभाव था कि सन्तान की अपेक्षा मा-बाप की रक्षा मुख्य समझी जाती थी। जब उसने यह सुना कि कियोमोरी ने उसके बदले में स्त्री की मा को क़ैद कर रक्खा है उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह अपने लिए कुछ नहीं डरती थी केवल यह ख़याल था कि कियोमोरी के पास यदि मैं वापिस जाऊँगी तो वह मेरे इन बच्चों को अवश्य मार डालेगा। तब उसने त्रियाचरित्र का आश्रय लिया और अपने रूप पर उसे मोहित करना विचारा। वह बच्चों समेत निधड़क वापिस चली आई तथा अपने हावभाव से उसे ऐसा वशीभूत किया कि कियोमोरी ने मा भी छोड़ दी और बच्चो को अलग अलग महन्तो की सेवा में भेज दिया। छोटा लड़का योशित्सुने क्योटो के पास कुरामायामा नामक मन्दिर में भेजा गया था जहां उसका पालन पोषण बहुत अच्छी तरह से हुआ और उसे शस्त्र विद्या की शिक्षा मिली। जब सोलह वर्ष का हुआ तो मन्दिर से भागकर उत्तर दिशा को चला गया और वहां फ्यूजीवाराना हिदेहीरा जो मुत्सु का गवर्नर था इसका आश्रयदाता बना। जिसके अधीन उसने अच्छे प्रकार युद्धविद्या सीखी और कई लड़ाइयों में नाम किया।

योशीतोमा का वह लड़का योरीतोमो जो कियोमोरी की सास ने बचा लिया था, अब अपने घराने का मुखिया हुआ और

कियोमोरी के वैरियों से सलाह करने लगा। वैरागी महाराजा भी इसके सहायक हुए और ३०० आदमी इकट्ठे करके कियामोरी से लड़ पड़ा। उसके प्रबल दल के सामने ये लोग ठहर न सके। योरीतोमो ने एक खोखले पेड़ के भीतर घुसकर अपने प्राण बचाये।

छोटे भाई योशित्सुने ने अपना बड़ा प्रभाव जमा लिया था और बड़ा दलबल इकट्ठा करके कियोमोरी का सामना करने की तैयारी की, परन्तु इसी बीच में कियोमोरी जो इतने दिन तक जापान का कर्ताधर्ता रहा सन् ११८१ ई० में मर गया। मरते समय उसने अफ़सोस किया कि मुझे केवल यह लालसा रह गई कि मैंने योरीतोमो का सिर कटा हुआ न देखा। मेरे लिए मृतक क्रिया न की जाय। कोई पूजा या पाठ न हो। सिर्फ़ योरीतोमो का सिर मेरी क़बर पर लटका दिया जाय।

कियोमोरी के मरने पर बेटा मुनेमोरी बाप की जगह पर हुआ। इस समय योशित्सुने, योरीतोमो और उसके भतीजे योशीनाका ने फ़ौजें लेकर राजधानी पर चढ़ाई कर दी। तैरा घराने की फ़ौज ने शिकस्त खाई। महाराजा अवतोकू जो गद्दी पर थे उनकी उम्र इस समय केवल ६ वर्ष की थी। मुनेमोरी महाराजा और राजपरिवार को लेकर शिकोकू टापू को भाग गया। योशीनाका ने राजधानी पर अधिकार जमाया। वैराग प्राप्त महाराजा गो-शिराकावा और ताकाकुरा इस के सहायक बने। पलायित राजा के छोटे भाई गो-तावा को गद्दी पर बिठाया गया और योशीनाका "ने से इ ई शोगन" जो फ़ौजी महकमे का सब से बड़ा पद था ग्रहण किया। परन्तु चचाभतीजों में अनबन होने के कारण उसे आत्महत्या करनी पड़ी।

योशित्सुने ने पलायित महाराज की खोज शुरू की और उन्हें समुद्र में जाते हुए जा घेरा। इनके साथ में स्त्री बच्चों का साथ था। महाराजा की दादी ने अपना बचाव न देखा तो महाराजा

आन को गोद में लेकर समुद्र में कूद पड़ी । अनेक जन लड़ाई मे मारे गये। जो पकड़े गये उनका सिर अलग किया गया। मुनेमोरी के भी प्राण गये और उसके वंश का कोई आदमी स्त्री, बच्चा तक न छोड़ा गया।

योरीतोमो को अपने भाई का वीरत्व देखकर मन में यह शंका उपजी कि कदाचित् यह मुझ से भी न लड़ बैठे । अपने भाई को पत्र लिखा कि जिसमें उसकी भरपूर निन्दा की तथा कामाकुरा में (जो उनका प्रधान नगर था) घुसने का निषेध कर दिया। योशित्सुने क्योटो को लौट आया। उसे निश्चय हो गया कि भाई अब उसके प्राण न छोड़ेगा। इसलिए एक रात्रि को छिपकर भागा और अपने पुराने गवर्नर के पास पहुँच गया । गवर्नर उस समय मर चुका था। बेटा यसूहीरा ने योरीतोमो की प्रसन्नतार्थ सन् ११८९ में उसे मरवा डाला। योरीतोमो ने यह बात पसन्द न की और एक भारी फ़ौज लेजाकर गवर्नर यसूहीरा को दण्ड दिया । योरीतोमो अपने वैरियों से जब निष्कंटक हो गया तब राज्यप्रबन्ध सुधारने में लगा। सन् ११९० ई० मे वह महाराजा गो-तावा और वैरागी महाराजा शिराकावा से भेंट करने के लिए राजधानी में आया। बड़े ठाट बाट से राजधानी में प्रवेश किया। महीने भर तक ख़ुशी के जलसे होते रहे।

योरीतोमो ने राजधानी में रहना पसन्द नहीं किया। महाराजा से सर्वोत्तम पद प्राप्त करके अपने इच्छित स्थान कामाकुरा में चला आया और यहाँ उसने अपनी अदालत बनवाई।

सन् ११८४ ई० में उसने एक ऐसी कौंसिल बनाई जो सब तरह के क़ानून बनावे। प्रेसीडेंट इस कौंसिल का हीरोमोतो नामक एक सज्जन था, जो मोरी घराने का पुरखा कहा जाता है । चोरी, डकैती तथा अन्य कुकर्मों के रोकने का महकमा जुदा स्थिर किया। अपने पाँच लड़कों को महाराजा की आज्ञा लेकर पाँच सूबों

का गवर्नर बना दिया। इस समय से पहिले गवर्नरी सिविल विभाग के लोगों को मिलती थी। फ़ौजी आदमियों के हाथ में देश का शासन जाना ही जापान के खंड खंड होने का कारण हुआ। योरीतामो ने निज के लिए 'सेइ-इ-ताइ शोगन' नाम का पद ग्रहण किया। यह पद सब से बढ़कर था, और सन् १८६८ तक क़ायम रहा। पूर्णाधिकार पाकर योरीतामा ने देश का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि सब ओर शान्ति हो गई।

योरीतोमो ने महाराज की आज्ञा लेकर खेती की उपज पर टैक्स लगाया और इस आमदनी को फ़ौजी महकमे के ऊपर ख़र्च किया। मुक़दमे करने और प्रजा के झगड़े बखेड़े फ़ैसल करने के लिये अदालत खोली। महन्त और वैरागियों को शस्त्र बाँधना बन्द किया। इन सब बातों के लिए योरीतामो महाराज की आज्ञा अवश्य ले लेता था। स्वतंत्र अपने मरजी से उसने कोई काम नहीं किया। दुहरा राज्य जापान में इसी समय से आरंभ हुआ।

इसके सुप्रबन्ध से जापान की अच्छी उन्नति हुई। कामाकुरा शहर, जहां इसकी अदालत थी, ख़ूब रैानक़दार शहर हो गया।

यह ५३ वर्ष की अवस्था में घोड़े से गिर कर मर गया। इसकी मृत्यु का लोगों को बड़ा शोक था।

योरीतोमो का लड़का योरीई योग्य नहीं निकला। राजकाज उसका नाना तोकामासा करता था। भाईभतीजों के विरोध से सब मारे गये और सन् १२१९ तक योरीतोमो का वंश अस्त हो गया। तब योरीतोमो की स्त्री ने फ्यूजीवारा घराने का एक लड़का गोद लिया और महाराजा से उसी के नाम "शोगन" का पद मंजूर कराया और अपने भाई योशीतोकू को प्रबन्धक नियत किया। इसने अपना प्रभाव इतना बढ़ाया कि महाराजा तक डरने लगे। महाराजा जनतोकू को गद्दी से उतार कर वैरागी बनाया और ताकाकुरा को गद्दी दी। बड़े बड़े सरदारों की जायदाद ज़ब्त करके

अपने भाईभतीजों को दे दी। इनका दबदबा शोगन और महाराजा दोनों पर था। महाराजा या शोगन की आज्ञा बिना जो चाहे सो करता था। शोगन सब बच्चे होते थे। अब खटपट हुई दूसरा शोगन मुक़र्रर करा लिया। योशीतोकु के साथ होजो घराने का नाम चमका। नाम मात्र के लिए शोगन का पद रह गया था। काम सब इसी घराने के लोग करते थे। नियमानुसार इस घराने का भी पतन हुआ। सन् १२५९ ई० में जब सोहो वंश का तोकीयोरी मर गया तो पीछे केवल एक छः वर्ष का लड़का रह गया और वह नागातोकी के अधीन शिक्षा पाने लगा। अब यह शिक्षक ही रियासत के काम देखता था और शोगन का रक्षक भी था। शोगन महाराजा का प्रतिनिधि समझा जाता था और महाराजा ख़ुद स्त्रियों के बीच में रहने वाले एक बच्चे होते थे। अस्तु, जापान की गवर्नमेंट का हाल इन दिनों बहुत ही ख़राब था।

इस दशा में एक ऐसी घटना हुई कि जापान ने अपना मूल महत्त्व दिखा दिया। चीन देश के कुबलई ख़ान ने जापान के धन-धान्य की प्रशंसा सुनी और उस पर अपना अधिकार जमाना चाहा। पहिले एक एलची को जापानी दरबार में इसलिए भेजा कि बिना लड़ाई के जापान देश ख़ान की अधीनता स्वीकार कर ले। महाराजा ने शोगन से पूछा जिसने कुबले ख़ान का विचार अस्वीकार किया। कुबले ख़ान चीन और कोरिया के अनेक जहाज़ लेकर जापान पर चढ़ आया और सुशीमा टापू का (जो कोरिया और जापान के बीच में है) अधिकार लेलिया। फिर एलची भेजा कि अब भी सुलह कर ली जाय तो अच्छा है। कामाकुरा में शोगन का रक्षक उन दिनों 'होज़ो' घराने में से था। इस ने एलची की बात सुनते ही उसे मरवा डाला। ख़ान ने क्रोधित होकर एक लाख फ़ौज तीन सौ जहाजों में चढ़ा कर क्यूशू टापू के मुक़ाबिले में ला खड़ी की। इधर से जापानी लश्कर आ जमा और दिल खोल कर लड़ने लगे। जापान के साहित्य में इस लड़ाई के बड़े बड़े क़िस्से मौजूद हैं।

एक कप्तान के विषय में लिखा है कि वह अनेक दिन से अपने देवता के सामने प्रार्थना किया करता था कि उसे कभी चीनियों के मुकाबिले में लड़ने का संयोग प्राप्त हो। आज उसके लिए बड़ी ख़ुशी का दिन था। समुद्र किनारे खड़ा होकर चीनियों की फ़ौज को देखा और ललकारा–"कोई है जो मुझ से यहाँ आकर लड़े"। जब कोई न आया तो कुछ सिपाही साथ में लिए और दो डोंगियों में बैठ कर चीनियों के दल में जा पहुँचा। चीनियों ने समझा कि ये लोग सुलह का पैग़ाम ले कर आते हैं। जब किश्ती एक बड़े जंक के पास पहुँची तो कप्तान निचिग्रारी अपने साथियों समेत ऊपर चढ़ गया और सब जगह आग लगादी। बात की बात में कितनों को काट डाला, कितनों को क़ैद कर लिया और क़ैदियों समेत सही सलामत लौट आया। इतना कुछ हो गया परन्तु चीनियों को इसका पता भी नहीं चला।

जापानी इस ज़ोर शोर से लड़े कि चीनियों को बिल्कुल किनारे तक न आने दिया। इतना तो सब कुछ हुआ परन्तु किस प्रकार चीनी लोग यहाँ से अपने देश को वापिस लौटे; इस बात की चिन्ता होने लगी। देश-रक्षक देवताओं से प्रार्थना की गई। स्वयं महाराजा ने अनेक प्रार्थना लिख कर समुद्रदेव की भेंट कीं। तब एक आश्चर्य घटना घटी। एक छोटा सा बादल उठा और बढ़ने लगा। अल्प काल ही में समस्त आकाश मेघाच्छन्न हो गया। और आँधी शुरू हुई। इस आँधी ने अपना सब क्रोध चीनी जहाज़ों पर आ झाड़ा और अल्प काल ही में सब बेड़ा तहस नहस कर दिया। जो लोग किनारे पर आ लगे उनको जापानियों ने मार डाला। केवल तीन चीनी बचे, जिनको जापानियों ने फ़ौज की दुर्दशा का समाचार सुनाने के लिए कुबले ख़ां के पास भेज दिया।

इस युद्ध के पीछे भी जापान का आन्तरिक राज्य प्रबन्ध वैसा ही बना रहा। 'होजो' घराने के लोग महाराजा और शोगन दोनों

को अपने अधीन किये हुए थे। जब जिसको चाहते थे वैरागी बना देते थे और बच्चों को उनके पद पर बिठा देते थे।

सन् १३१८ में ऐसा संयोग हुआ कि महाराजा गो-डैगू गद्दी पर बैठे। इनकी अवस्था ३१ वर्ष की थी। उन्हें अपने देश के राज-प्रबन्ध की दुर्दशा बहुत अखरी। इन्हीं दिनों में एक भारी अकाल पड़ा। महाराजा ने प्रजा की सुधि लेने में बड़ी चेष्टा की, जिस का यह फल हुआ कि प्रजा अपने नृपति की परम भक्त बन गई। होजो घराना प्रजा पर ज़ोर ज़ुल्म करता था। इसके रोकने का उपाय जब महाराजा करने लगे उस समय होजो घराने वालों ने इन्हें क़ैद कर लिया और ओकी नामक टापू मे देश निकाला दे दिया। जोकोगेन महाराजा बनाये गये। परन्तु महाराजा यत्न करके उक्त टापू से निकल आये और बड़ी फ़ौज संग्रह करके क्योटो पर चढ़ाई कर दी। इधर "होजो" घराने की फ़ौज के नित्ता नामक सेनापति ने अपने देशाधिपति महाराजा के विरुद्ध लड़ना मुनासिब न समझा। उसने अपने घर गाँव में पहुँच कर राजविरोधी होजो घराने को दण्ड देने के लिए एक और फ़ौज खड़ी की और कामाकुरा को प्रस्थान कर दिया। इसकी फ़ौज को ऐसे मार्ग से जाना पड़ा जिसके एक ओर पहाड़ और दूसरी ओर समुद्र था। समुद्र बढ़ कर एन पहाड़ की जड़ में बह रहा था। फ़ौज को यहाँ होकर निकलने का कोई बन्दोबस्त न रहा। नित्ता बड़ा चिन्तित हुआ तब उसने पहाड़ पर चढ़ कर समुद्र देव से प्रार्थना की कि फ़ौज के निकलने को मार्ग मिले। कमर से तलवार खोल कर समुद्र में डाल दी। कहा जाता है कि उसी समय समुद्र पीछे हटने लगा और अल्प काल ही में सूखा मार्ग निकल आया।

शोगन के कामाकुरा नगर पर तीन ओर से फ़ौजें चढ़ीं। बड़ी लड़ाई हुई। नित्ता ने शहर में आग देकर उसे राख कर दिया। होजो घराने का नाम निशान मिट गया। इन लोगों को प्रजा ने इस

कारण श्रीर भी निन्दित समझा था कि सूर्य्यवंशावतंस महाराजा साहिब का विरोध करने के समान पापमय कर्म करने से भी ये लोग नहीं डरे।

महाराजा गोड़ेगू ने जब पुनः राज्य प्राप्त किया तो अपने उन सैनिक सरदारों को जो महाराजा के लिए लड़े थे, खूब इनाम दिये। आशीकागा जो महाराजा की ख़ास फ़ौज के साथ था निचा पर यह दोष लगाने लगा कि निचा सच्चा राजभक्त नहीं है। यह बात निचा को बहुत बुरी लगी। महाराजा ने आज्ञा दी कि निचा इसका बदला आशीकागा से ले। अपनी अपनी फ़ौज लेकर दोनों भिड़ गये श्रीर आशीकागा जीता। उस समय महाराजा को भी राजधानी छोड़ कर भागना पड़ा। निचा के साथ एक सरदार श्रीर था जो बड़ा ही राजभक्त था। उसने अपनी फ़ौज के साथ बड़ी बहादुरी दिखाई परन्तु आशीकागा की सेना इन से संख्या में कई गुनी थी। इन्हें हारना पड़ा। जब मरना निश्चय होगया तो बचे हुए डेढ़ सौ सिपाही श्रीर सरदार कुसूनोकी ने हाराकिरी (आत्महत्या) करली। मरते मरते अपने बेटे मसत्सुरा से कह गया—"यदि सांसारिक लाभ के लिए तू आशीकागा से मेल कर लेगा तो यह बड़ा ही नीच कर्म होगा। जब तक हमारे वंश में कोई जीवे देशाधिपति महाराजा के लिए प्राण देने में कदापि न डरे।"

सरदार निचा ने भी लड़ाई में बड़ी बहादुरी दिखाई। उसके पास केवल डेढ़ सौ सिपाही थे। अचानक उसकी आँख में एक तीर लगा जिस को इसने खींच कर बाहिर निकाल दिया, फिर अपनी तलवार निकाल कर अपने हाथ से अपना सिर अलग कर दिया और लोगों को भी जब क़ैद होने के सिवाय श्रीर कुछ आशा न रही तो इसी भाँति आत्महत्या करनी पड़ी। सिर अलग कर देने का कारण यह था कि कोई उनको पहचान न सके। महाराजा डेगो के दिये हुए परवाने से निचा का शरीर पहिचाना गया। सिर क्यूटो पहुँचाया

गया और धड़ की समाधि यहीं बना दी गई। आज तक लोग इस समाधि पर पुष्प चढ़ाते हैं।

शोगन के अधिकार अब आशीकागा घराने में आये। इस घराने में कई आदमी बड़े नामवर हुए हैं। जिन्हो ने अच्छे अच्छे महल बनाये। योशोमित्सू नाम के शोगन ने महाराजा चीन से मिलकर राजा का ख़िताब लिया। योशीमासा ने चाय पीने के जलसों का प्रचार किया। शोगन योशीमित्सू ने राजपरिवार के दो विभागों को एक बनाया। सन् १३३६ ई० से लगाकर इस समय तक उत्तर मे एक महाराज और भी अपने तईं जापान के मालिक समझते थे परन्तु इनका नाम राजवंशावली में नहीं लिखा गया। कारण यह था कि इनको महाराजा बनने का अधिकार नहीं था।

आपस की तकरार से फ़ौजी झगड़े लगे रहते थे। जिन लोगों का पेशा सिपाही का था वे किसानों के सिर खाते थे। किसानों को खेती करना मुश्किल हो रहा था। आज सूबे का मालिक एक है तो कल दूसरा बदल जाता था। सूबे का सर्दार डेमियो कहलाता था। हर एक डेमियो अपना अपना अधिकार बढ़ाने की फ़िकर मे था। योरीतोमो के मरने पीछे उन्हे शोगन का भी कुछ डर नहीं रहा। जो डोमियो अच्छे होते थे उनकी प्रजा आराम करती थी और जो निकम्मे होते थे उनकी प्रजा कष्ट पाती थी। देश मे बडी दरिद्रता छा रही थी। यहाँ तक कि सन् १५०० में जब सुची मिकाडो का देहान्त हुआ तो ४० दिन तक लाश बिना संस्कार के पड़ी रही। शाही ख़ज़ाने में मृतक संस्कार के लिए काफ़ी द्रव्य नहीं था।

सन् १५४२ में अचानक पोर्चुगीज़ लोगों को जापान का पता लगा व्यापार और धर्म प्रचार के लिए वे आने लगे। पिन्टा नाम का एक पोर्चुगीज पहिले पहिल जापान मे गया था। जब उसने दूसरी बार जापानयात्रा की तो उसके पास भागे हुए दो जापानी

आये जिनको वह अपने साथ गोआ में ले आया और उनको अपनी भाषा सिखाई। इनको सहायता से जापान में ईसाई-धर्म का प्रचार करने के लिए ज़वीयर नाम के पादरी ने जापान को प्रस्थान किया। १५ अगस्त सन् १५४९ को ये पादरी साहिब कागोशीमा में (जो सत्सूमा सूबे की राजधानो था) आये और कई शहरों में फिरे। इनके पश्चात् इनके शिष्य भी धर्मप्रचार का काम करते रहे। राजकुमार ओमूरा ईसाई हो गया। नागासाको में अनेक ईसाई हो गये और यहीं पर विदेशो सौदागर उतरने लगे। प्रिन्स ओमारी को कोशिश से मन्दिर तोड़ कर गिरजे बनाये गये। सन् १५६७ में यह बस्तो केवल ईसाई लोगों की थी।

विदेशियों की चर्चा छोड़कर हम जापान की इतिहास सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख करना हो मुख्य समझते हैं। नोबूनागा नाम का एक नया पुरुप इस बोच में उदय हुआ जिसने उस काल में जापान की बिगड़ो हुई दशा बहुत हो सुधारी।

नोबूनागा कियामोरी के वंश में था। इसका शरीर बृहदाकार और बल अपार था। युद्धविद्या में यश प्राप्त करते करते वह जनरल बन गया। देश में जो घोर कुप्रबन्ध फैल रहा था उसको दूर करना इसको अभीष्ट था। उन दिनों में १०५ वें महाराजा ओगोमाची गद्दी पर थे और आशीकागा घराने के यूशीफ़ासा शोगन के पद पर थे। महाराजा और शोगन केवल नाममात्र थे। राजकाज और हो लोगों के हाथ में था। सूबे सूबे में लोग मालिक बन बैठे थे। अपना अपना बल बढ़ाकर आस पास के इलाक़ो को अपने वश में करते और अपना राज बढ़ाते चले जाते थे। महाराजा अथवा शोगन को किसो को परवा नहीं थी। इन छोटे छोटे ताल्लुकेदारों को हम राजा शब्द कहकर उल्लेख करेंगे।

नोबूनागा को पुश्तैनी जायदाद ओवारी सूबे में केवल ४ गाँव को थी। उसने अपने भुजाबल से उसे बढ़ाना शुरू किया और

सन् १५५९ में पूरे सूबे को अपने अधिकार में लाकर शहर कियास मे अपना महल बनाया । उसकी फ़ौज में बड़े बड़े नामी सैनिक थे जिन में हिदेयोशी ने समय पाकर बड़ा नाम प्राप्त किया । नोबू नागा जब कभी लड़ाई से .फ़ुरसत पाता था अपनी फ़ौज को क़वाइद परेड सिखाता रहता था । उसको अपना साथी हिदेयोशी ऐसा मिल गया था जो नयी तजवीज़ें सोचने, जोड़ तोड़ मिलाने और नये काम उठाने में परम पण्डित था ।

जापान में इन दिनों जिसकी लाठी उसकी भैंस थी । नोबूनागा ने समस्त जापान अपने अधीन करने की ठान ली ।

सन् १५६७ में शोगन येशूनेरू को उस के एक कारिन्दा ने मार डाला । छोटे भाई ने शोगन बनना चाहा परन्तु पुराने कारिन्दों को यह मंज़ूर न था । छोटे भाई योशियाकी ने नवानोबू नागा की शरण ली । वह राजदर्बार में अपनी रसाई पहिलेही चाहता था । यदि शोगन उसका अपना आदमी हो तो फिर छोटे छोटे रजवाड़ों को क़ाबू में करना क्या कठिन है । अस्तु योशियाकी को उचित अधिकार दिलाने के लिए वह दल बल के साथ क्योटो जा पहुँचा और सन् १५६८ में उसे शोगन का पद दिला दिया । परन्तु कामकाज के लिए उसके सब इख़्तियार अपने हाथ में रक्खे । उस की फ़ौज और ठाट बाट का राजधानी पर बड़ा प्रभाव हुआ ।

हिदेयोशी को उसने कमाँडरइन्-चीफ़ मुक़र्रर किया, जिसने बड़ी उत्तमता से इस पद का निर्वाह किया । इस समय तक राजधानी की दशा बहुत ही ख़राब थी । वर्तमान परिवर्तन से प्रजा को अच्छी आशा हुई । राजआज्ञा से पुरानी और टूटी हुई इमारतें सुधारी जाने लगीं । शोगन और महाराजा के महल उन की मर्यादा के अनुसार सजाये जाने लगे । पुल, और सड़कें सुधारी गईं । कई सौ वर्षों के पीछे राजधानी के मुख पर मुसक्यान की झलक दिखाई दी ।

बड़ी धूमधाम से नये वर्ष का तिवहार बना कर नोबूनागा ने योशोकागे पर चढ़ाई की; क्योंकि यहाँ का राजा अभी तक उसके अधिकार को कुछ भी नहीं समझता था। इस राजा के साथ नागामासा नाम का राजा जो ओमी सूबे में रहता था मिल गया। दोनों की फ़ौज मिल कर एक बड़ा समूह हो गया था परन्तु नोबू-नागा के पास हिदेयोशी और इयासू नामी जनरल थे। इयासू बड़ा चतुर और दृढ़ था। लड़ाई में नोबूनागा ही जीता और मीनो सूबे के गीफ़ू महल में जीती हुई फ़ौज ने विश्राम किया।

हारे हुए राजा मन से नहीं हारे थे। जब एक उपद्रव मेटने के लिये नोबूनागा की फ़ौजें ओसाका को चली गईं उन दोनों राजाओं ने फिर मिल कर राजधानी पर चढ़ाई कर दी। वे बीवा झील के पास वाले पहाड़ तक आ पहुँचे थे। उस समय इस पहाड़ पर बौद्ध वैरागियों का एक बड़ा अखाड़ा था। यहाँ हज़ारों मठ बने हुए थे और वैरागियों का दल ऐसा प्रबल था कि वे किसी से दबते न थे। परन्तु नोबूनागा के प्रबल प्रताप ने उनकी मनमानी ज़बर्दस्तियाँ रोक दी थीं, इसी से चिढ़ कर वे भी इन दोनो राजाओं के साथ मिल गये। सौभाग्य से नोबूनागा अपने दल बल समेत राजधानी में आ पहुँचा था। इन सब को ऐसी ख़बर ली कि सिवाय क्षमा प्रार्थना के उन से और कुछ न बन पड़ा। सन् १५७१ में नेबूनागा ने उस अखाड़े का सत्यानाश किया और सब वैरागियों को वहाँ से मार भगाया।

वैरागियों के दुष्कर्मों से नाराज़ होकर नोबूनागा ने ईसाई उपदेशकों को अपना मित्र बनाया। राजधानी में एक गिरजा बना। बीवा झील के किनारे पर अपने लिए एक सुन्दर महल और ईसाइयों के लिये एक गिरजा बनवाया। सन् १५८२ में दो राजपुत्र जो ईसाई हो गये थे अन्य १६ कारिन्दों के साथ एक पादरी के संग पोर्तगाल और स्पेन देखने गये। पोप से भेंट की। योरप में इन लोगों का बड़ा आदर हुआ।

योशियाकी जो नाम मात्र का शोगन था, नोबूनागा के अधीन रहने से घबड़ा उठा और विरोधी राजाओं से मिलने का यत्न करने लगा। नोबूनागा ने उसकी यह कुचेष्टा देख कर उसे तत्काल मौक़ूफ कर दिया। २३८ वर्ष स्थिर रह कर यह घराना भी अस्त हुआ।

अब तक जो काम शोगन के नाम से होता था वह अब महाराजा के नाम से होने लगा। नोबूनागा ने स्वयं शोगन बनना पसन्द नहीं किया।

सन् १५७८ में नोबूनागा ने फिर विजय करने के लिए प्रस्थान किया और ५ सूबे अपने अधिकार में लाया। ताकामत्सूका क़िला फ़तह करना बड़ी होशियारी का काम था। इस क़िले के दोनो ओर झील थी इस लिए फ़ौज का ले जाना कठिन था। हिदेयोशी ने नदी का बंध बाँध कर सब पानी क़िले की तरफ़ छोड़ दिया। जब पानी क़िले में भरने लगा तो लोग घबड़ा उठे। इस युक्ति का समाचार उस ने नोबूनागा को भी लिखा और उसे अपनी सहायता के लिए बुलाया। नोबूनागा तत्काल चल पड़ा। मार्ग में उसने होनोजी के एक मन्दिर में विश्राम किया। इस बात का समाचार उसके एक शत्रु को लग गया। जिसने चारों ओर से मन्दिर को आ घेरा। नोबूनागा भरसक लड़ा। जब जीने का कोई उपाय न देखा तो मन्दिर में आग लगा ली और हाराकिरी (आत्महत्या) कर ली। नोबूनागा की मृत्यु सन् १५८२ ई० में हुई।

नोबूनागा ने जापान में अच्छा प्रबन्ध रक्खा था। इसके समय में शिल्प, कृषि और विद्या ने अच्छी उन्नति की। नोबूनागा का घातक शत्रु उसीकी फ़ौज का एक सर्दार अकेची था। किसी दिन नोबूनागा ने मस्त होकर इस के सिर को अपनी गोद में ले लिया था और पंखे से उसे नगाड़े की तरह ठोका था। सरदार को यह दिल्लगी अच्छी नहीं लगी और समय पाकर इस भाँति उस बात का बदला लिया।

हिदेयोशी ने जिस युक्ति से क़िले के मालिक को घबड़ा दिया था वह बड़ी प्रशंसनीय थी। क़िलेवालों को अपनी हार माननी पड़ी और सुलह मंज़ूर कर ली। जब नोबूनागा के मारे जाने का समाचार पहुँचा तो कमाँडर इन चीफ़ को बड़ा शोक हुआ। इस समय घातक सरदार अकेची ने सोचा कि अब जैसे बने तैसे कमाँडर इन चीफ़ को मारना चाहिए नहीं तो वह नोबूनागा का बदला लिए बिना नहीं छोड़ेगा। नोबूनागा के मरते ही कमाँडर इन चीफ़ हिदेयोशी को राजधानी में पहुँचना परम आवश्यक था। वह अपने साथ थोड़ी सी पार्टी सैनिकों की लेकर क्योटो को चला। मार्ग में अकेचो के भेजे हुए घातकों ने आ घेरा। हिदेयोशी बड़ी फुर्ती से धान के खेतों में होकर, एक पगडंडी के रस्ते, पास वाले मन्दिर को ओर को चल दिया, दूर आकर घोड़े से उतरा और घोड़े की टाँग में बरछा मारकर अपनी साथी सिपाहियों की तरफ़ उसे खेद दिया और आप मन्दिर में घुसा वहाँ एक हौज़ में वैरागी स्नान कर रहे थे। झट पट कपड़े दूर कर के आप भी उन में मिल गया और न्हाने लगा। वैरागियों ने यह जान लिया था कि वह प्रसिद्ध सेनापति है। उन्हों ने यह भेद गुप्त रक्खा। जब घातक लोग मन्दिर में पहुँचे तो उन्हें सब वैरागी ही नजर आये। इधर उधर देख भाल कर चले गये। उनके चले जाने के पीछे हिदेयोशो के साथी सिपाही आये। उन्हें अपने प्रधान को स्नान करते हुए देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ।

हिदेयोशी ने राजधानी में पहुँच कर सब राजा लोगों को बुलाया और नोबूनागा के मारने वाले को दंड देना स्थिर किया। क्योटो से कुछ दूर पर लड़ाई हुई। अकेचो भगा। जब वह अपने महल में जा रहा था एक किसान ने उसे पहिचान लिया और बाँस के भाले से उसको घायल कर दिया। अकेची ने जब अपने बचने का कुछ उपाय न देखा तो आत्महत्या कर ली। सिर उस का काटा गया और जिस मन्दिर में उसने नोबूनागा को मारा था वहीं लटका दिया गया।

हिदेयोशी ने नोबूनागा के पोते समबोशी को उत्तराधिकारी ठहराया ।/यह बहुत छोटा बच्चा था । श्राद्ध के दिन सब राजा लोगों को बुलाया और बच्चे को अपनी गोद में लेकर पूजा करने को मन्दिर में गया । जितनी फ़ौज क्योटो में थी सब को ऐसे प्रबन्ध से सजाया कि द्वेषी राजा उसका प्रबल सैन्य बल देख कर मलिन हो गये । हिदेयोशी के साथ शिवाता नाम का एक जनरल नोबूनागा के अधीन फ़ौजी सरदार था; उसने कमांडर इन चीफ़ की इतनी प्रतिष्ठा देख, बड़ी ईर्ष्या की । नोबूनागा के जो लड़के उपपत्नी से थे उनको उभार कर, लड़ाई की ठहरा दी । परन्तु प्रबल हिदेयोशी के सामने ठहर न सका और आत्महत्या करनी पड़ी । इस लड़ाई में पहिले पहिल तोपों से काम लिया गया ।

प्रसिद्ध येरीतोमो का एक लड़का सन् ११९३ में सतसूमा जाति का राजा बनाया गया था । सब की भाँति सतसूमा नृपति का भी मन चला कि अपना राज्य बढ़ा लें, ह्यूगा, बुंगो, हीगो और हीज़न निवासी उनके अधीन हो गये । इस समय वह आठ सूबों का राजा था, और शिमाज़ू कहलाता था । हिदेयोशी ने अपना एक पैग़ाम भिजवाया कि राजा शिमाज़ू क्योटो आकर महाराज से भेट करें और राजतिलक लें । राजा ने इस पैग़ाम को सुनकर बड़ी घृणा प्रकाशित की और कहा कि नीच-कुलोत्पन्न हिदेयोशी का कहना राजा लोग कभी नहीं मानेंगे । हिदेयोशी ने अन्य सैंतीस रजवाड़ों से फ़ौज माँग कर डेढ़ लाख आदमी इकट्ठे किये । अपने भाई हीदेनागा को ६० हज़ार फ़ौज का कुमेदान बनाकर भेजा । जब पश्चिमदेश की फ़ौज इन में मिल गई तो इनकी संख्या ९० हज़ार पर पहुँची । यह फ़ौज का पहिला दस्ता था । इसके पीछे ख़ुद हिदेयाशी एक लाख तीस हज़ार आदमी लेकर ओसाका से रवाना हुआ । सतसूमा फ़ौज इनके सामने कुछ भी नहीं थी । हिदेयाशी ने अपने जासूस भेज कर देश और शत्रुबल का पूरा पता चला

लिया था। उन्हें उस युक्ति से घेरा कि वे हटते हटते कागोशीमा के क़िले में आ घुसे।

हिदेयाशी ने देखा कि शत्रु अब लड़ने योग्य नहीं रहा। उनसे मेलकर लिया। शिमाज़ का जो कुछ असली राज्य था वह उसको लौटा दिया। उसके जीते हुए किले सब वापिस दे दिये। राजा को कहा गया कि वह अपने बेटे को राज्य देकर .खुद भजन पूजा में अपना शेष जीवन काटे। हिदेयाशी की यह कार्रवाई निस्सन्देह बहुत ही अच्छी थी।

सन् १५८७ ई० में उसके पास समाचार लाया गया कि "आज कल जापान में यूरोप से ईसाई उपदेश के लिए आते हैं, इनकी यह मंशा है कि ये पहिले प्रजा का मन अपनी ओर खींचे और जब इनकी संख्या बहुत बढ़ जाय तब यूरोप से फ़ौज आवे। उस समय जापान को अधीन करना कुछ कठिन नहीं होगा"। हिदेयाशी ने जब यह समाचार सुना तो आज्ञा दी कि २० दिन में सब ईसाई देश को छोड़कर चले जायँ, जो न जायगा मारा जायगा। विदेशी सौदागरों को समुद्र-किनारे रहने की आज्ञा थी परन्तु साथ ही यह भी शर्त थी कि यदि वे अपने जहाजों में ईसाईधर्म लावेंगे तो उनके जहाज और माल सब जब्त हो जावेंगे। इस आज्ञा के अनुसार ओसाका और क्योटो में से ९ पादरी पकडे गये और आग में जला दिये गये। सन् १५९० में विदेशियों के लिए सिर्फ़ नागासाकी का बन्दर रहने सहने के लिए नियत किया गया।

हिदेयोशी को समाचार मिला कि उदावारा का राजा होजो-आजीमासा अभी तक राजविरोधी है। निश्चय हुआ कि ऐसे आदमी का शीघ्र फ़ैसला करना चाहिए। इस कार्य में हिदेयोशी सफल हुआ। एक नई बात यह है कि लड़ाई पर फ़ौज भेजती समय बहुत से घोड़ों को एनशू समुद्र में होकर जाना ज़रूरी हुआ। किश्ती चलाने वालों ने कहा कि यदि किश्तियो पर घोड़े लादकर

समुद्र पार होंगे तो समुद्र-देव बहुत नाराज़ होगा । संभव है कि सब के प्राण जाँय । अस्तु, हम मल्लाह लोग ऐसा कर्म कभी नहीं करेंगे । जब हिदेयोशी ने यह समाचार सुना तो उसने मल्लाहों को बुलाया और कहा कि यह युद्धयात्रा महाराजा की आज्ञा से होती है । ऐसे कार्य में समुद्र देव कदापि बाधा न देंगे । उसने यह भी विश्वास दिया कि हम समुद्र देव के नाम अभी चिट्ठी देते हैं और इसको पाकर वह तुम्हारी रक्षा करेगा । चिट्ठी तैयार की गई जिस पर समुद्र देव का पता लिखा था और वह समुद्र में बहा दी गई । किश्तीवालों का सब सन्देह मिट गया और वे ख़ुशी ख़ुशी घोड़ों को चढ़ाकर ले गये ।

उदावारा के साथ साथ और भी कई सूबे राज्याधिकार में आये । यह सब देश हिदेयोशी ने अपने होनहार चतुर सेनापति इयासू को दे दिये । इस सैनिक से उसने आप और अपने परिवार के लिए बड़ी आशा सोची थी । अपनी एक बहिन का विवाह भी इयासू के साथ कर दिया । हिदेयोशी को "काम वाकू" का पद महाराजा ने दिया था । इस को त्यागकर सन् १५९१ में उसने "तेको" का ख़िताब लिया । तब से उसका नाम तेकोसामा पड़ा । "काम वाकू" का पद अपने भतीजे को दिलवाया और सब से बड़ा कर्मचारी बनाया । एक पादरी ने इसे बड़ा निर्दय लिखा है और कहा है कि यह मनुष्यों को प्राणघात का दण्ड देती समय उन्हें बहुत बुरी तरह से मारता था ।

सन् १५९२ में तेकोसामा के जो पुत्र हुआ उसका नाम हिदेयोरी रक्खा और राजभर में बड़ी धूमधाम की गई और अपने भतीजे को कहा कि यह लड़का उसकी गोद बैठे । भतीजा इस पर राज़ी न हुआ, वरन चाचा के विरुद्ध कुचक्र रचने लगा । इसी कारण उसे सपरिवार प्राण देना पड़ा ।

हिदेयोशी का अनेक दिन से कोरिया और फिर चीन पर चढ़ाई करने का इरादा था । बातों ही बातों में उसने एक दिन नोबूनागा

से सलाह की थी कि 'जब चुकोगू फ़तह हो जायगा तब क्यूशू को अपने अधिकार मे लाऊँगा। जो मुझे केवल एक वर्ष उस सूबे की आमदनी मिल जायगी तो मैं लड़ाई के जहाज़ बनवाऊँगा और कोरिया को हस्तगत करूँगा। इस कोरिया को इनाम की भाँति आप से अपने लिए माँगलूँगा और तब कोरिया में फ़ौज तैयार करके समस्त चीन पर हाथ फेरूँगा। तब चीन, कोरिया और जापान तीनों एक राज्य हो जायँगे। मैं यह सब इतनी सुगमता से कर सकता हूँ जैसे कोई चटाई को तह करके उसे बग़ल में दबाकर चल देता है"। इस समय वह चुकोगू और क्यूशू तो फ़तह कर चुका था, अब कोरिया और चीन की ओर बढ़ना अभीष्ट था।

इस यात्रा के लिए जहाज़ों की ज़रूरत थी। जो विदेशी सौदागर विदेशो से आकर जापान में व्यापार करते थे उनके जहाज़ लेने का उसने इरादा किया परन्तु व्यापारी लोग इस बात पर राज़ी नहीं हुए। हिदेयोशो को बड़ी निराशता हुई और तभी से उसने ईसाइयों को अच्छा समझना छोड़ दिया।

कोरिया पर चढाई करने के लिए कारण भी मौजूद था। अनेक काल से कोरिया का ख़िराज जापान में नहीं आया। सन् १५८२ में सर्कारी दूत भी भेजे गये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई। तब राजा सुशोमा को भेजा कि इसका कारण मालूम करे। राजा ने सब काम ठीक कर लिया और कोरिया का वकील हिदेयोशी की सेवा मे भेजा गया। परन्तु हिदेयाशी ने इस वकील को बुलाया भी नहीं। ऐसा मालूम होता था कि वह वकील को इस बात का दण्ड दे रहा था कि क्यों इतने दिन और इतनी कोशिश करने पर वह आया है? उसने कोरिया और चीन पर चढाई करना ठान ही लिया था और वकील का निरादर करके रहा सहा सलूक तोड़ रहा था। वकील ने जब देखा कि जिसका जापान में इतना प्रताप और प्रतिष्ठा है वह एक केवल राजकर्मचारी है, उसको बड़ा आश्चर्य हुआ।

बड़ी कठिनता से वकील के पेश होने का दिन आया। उसने कोरिया के राजा की ओर से बधाई का पत्र और भेट नज़र की। भेट की चीज़ें ये थीं—घोड़े, बाज़, विविध भाँति के वस्त्र, जिनसेंग औषध, जीन, काठी । हिदेयाशी ने आज्ञा दी कि वकील इसी दम अपने देश को लौट जाय। उसको अपने राजा के पत्र का उत्तर पाने के लिए ठहरने की कुछ आवश्यकता नहीं है। वकील के आग्रह करने पर अनेक दिनों पीछे पत्र मिला भी परन्तु वह ऐसे बुरे भाव से लिखा हुआ था कि वकील उसको कोरिया के पास ले जाने में बहुत ही डरता था। इस पत्र में साफ़ साफ़ लिखा था कि हिदेयाशी कोरिया और चीन पर चढ़ाई किये बिना नहीं रहेगा।

कोरिया में वकील के लौटने पर लड़ाई की तयारी होने लगी। परन्तु पिछले दो सौ वर्ष कोरिया ने ऐसी शान्ति में काटे थे कि कोई लड़ाई का काम ही न जानता था और न फ़ौज मे जनरल थे। जापानी बन्दूक़ चलाते थे परन्तु कोरियन सिपाहियों ने इसकी शकल भी नहीं देखी थी। इस मे कुछ सन्देह नहीं कि कोरिया की रक्षा का भार चीन के ऊपर था परन्तु जबतक अफ़ीमची चीन की आखें खुलें तब तक कोरिया का सत्यानाश हो सकता था।

हिदेयाशी सदा का चतुर था। उसके फ़ौजी इन्तिज़ाम सर्वदा दृढ़ और पूरे होते थे। इस युद्ध में क्यूशू का सूबा सब से अधिक उपयोगी था। इसी से क्यूशू के राजा को आज्ञा हुई कि वह पूरी पूरी सहायता दे। सब रजवाड़ो को सूचना दी कि अपनी अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार फ़ौज और धन से सहायता करें। समुद्र किनारे पर जिन राजाओं का अधिकार है वे जहाज़ (जङ्क) और मल्लाह देंगे। हिजेन सूबे के करात्सू स्थान में ३ लाख सेना इकट्ठी हुई। जिन में से एक लाख तीस हजार दलपकदम रवाने होने वाले थे। यह दल १५९२ में कोरिया आया और इसने फ्यूसन बन्दर पर दख़ल कर लिया। इस स्थान पर पहिले कोरिया आने वाले जापानी ठहरा करते थे। फिर फ़ौज

के दो डिवीज़न होकर राजधानी पर चढ़े। रास्ते में जो गाँव, शहर और क़िले मिले तहसनहस कर दिये गये। बड़े बड़े कोरियन पकड़े गये। कोरिया का राजा चीन की सरहद पर एक क़िले में जा। घुसा जापानी फ़ौज भी वहाँ जा पहुँची। उधर से कोरिया की सहायता के लिए चीन से फ़ौज आई। भारी ख़ून ख़राबा हुआ। कोरिया और चीन की फ़ौज ने शिकस्त खाई। सर्दी की अधिकता से जापानी फ़ौज का भी बड़ा नुक़सान हुआ। अन्त को सुलह की बात चीत होने लगी। अब कोरिया को कोई नहीं पूछता था। सुलह चीन और जापान के बीच में थी। जापानी वकील पेकिन में पहुँचा और चीन ने सुलह की ये शर्तें स्थिर कीं, कि—"जापानी सब फ़ौजें कोरिया से चली जायँ और फिर कभी लड़ाई न हो। हिदेयाशी को चीन-दरबार से उपाधि दी जाय"। चीननरेश की तरफ़ से सन् १५९६ में हिदेयाशी के लिए "उपाधि" लेकर चीनी वकील पहुँचा। बड़ी धूमधाम से दर्बार लगा और चीन का भेजा हुआ पत्र पढ़ा गया जिस में हिदेयाशी को चीननरेश की ओर से "राजा" की उपाधि देने की बात लिखी थी और बताया गया था कि इस पद के उपयोगी पोशाक और राजचिन्ह वकील द्वारा भेजा गया है।

हिदेयाशी को इस पत्र के सुनने से ऐसा क्रोध आया कि उसने अपने कपड़े फाड़ दिये। पत्र की धज्जियाँ धज्जियाँ करके फेंक दीं। कहने लगा कि "जापान आज घड़ी सब मेरे हाथ में है। मैं चाहूँ तो आज यहाँ का "महाराजा" बन सकता हूँ। क्या इन बर्बर लोगोंके कहने से मैं "राजा" बनूँगा?" वह चीनी वकील का सिर काटने को था परन्तु दरबारियों ने समझा लिया। तब चीनी वकील को कह दिया गया कि चीन पर फ़ौज भेजी जायगी और उन्हें पशुओं की तरह ज़िबह किया जागा।

पिछली लड़ाई के पीछे जनरल लोग छुट्टी पर चले गये थे। उन सब को वापस बुलाया गया। नये सिपाही भरती किये गये।

चीनी वकील बड़ी लज्जा से स्वदेश को लौटे। असली भेद कहने मे वे लजाते थे, इसलिए बाज़ार से तुहफ़े की चीज़ें ख़रीद कर के जापान की सौग़ात के बहाने दरबार में पेश की गईं और कहा गया कि राजा का ख़िताब पाकर हिदेयोशी बहुत प्रसन्न हुआ। पिछली लड़ाई का कारण कोरिया के सिर थोपा गया कि कोरिया ने चीन के साथ जापान की मित्रता न होने दी। परन्तु सौग़ात की चीज़ें शीघ्र पहिचान ली गईं कि वे जापान की बनी हुई नहीं हैं, सब यूरोपियन सौदागरो से ख़रीदी गई हैं। लाचार वकील को मूल भेद कहना ही पड़ा।

एक लाख तीस हज़ार नई फ़ौज जापान में तैयार हुई। इस बार रसद का इंतिज़ाम ठीक न था। कोरिया की सहायता के लिए चीन ने पचास हज़ार फ़ौज भेजी। जापानियों के एक जहाज़ पर कोरियन फ़ौज ने पहिले हमला किया और शिकस्त खाई। यूल-सेन पर इस बार भारी लड़ाई हुई थी। सन् १५९८ में एक मौक़े पर ३८७०० सिर चीनी और कोरियन सिपाहियो के काटे गये और उनके नाक कान काट कर क़िले की खाई मे दबा दिये गये। यहाँ से फिर वे सिर राजधानी क्योटो को भेजे गये, जहाँ उनके ऊपर एक चबूतरा बनाया गया और उसका नाम, कानों का टीला' रक्खा गया। यह टीला अभी मौजूद है।

यह युद्ध चल ही रहा था कि हिदेयोशी का प्राणान्त हो गया। इयासू नाम के जनरल पर इस युद्ध का भार छोड़ा गया। उसने शीघ्र सुलह कर ली।

जब फ़ौज़ें लौटीं तो कोरिया के अनेक कारीगर जापान में आये। सत्सूमा के राजा शिमाज़ू अपने साथ ११ कुँभार लाया था जिनके वंशधर अभी तक मौजूद हैं और उनका आचरण वेष भूषा कोरियन लोगों का सा है। इनके बनाये हुए बर्तन बड़ी दूर दूर तक जाते हैं और ख़ूब पसन्द किये जाते हैं।

अपने मरने से पहिले हिदेयोशी ने अपने कारिन्दों की एक कोंसिल बनाई। इयासू तोकूगावा को उसका प्रधान बनाया और अपने लड़के हिदेयोरी को जो केवल ५ वर्ष का था उनकी गोद रखवाया और सब से क़सम खिलवाई कि कदापि विश्वासघात न करेंगे।

सब कारिन्दों में इयासू तोकूगावा सब से चतुर और प्राचीन आदमी था। उसने हिदेयोशी के साथ नोवूनागा की सेना में काम प्रारंभ किया था। इसके गांव का नामा तोकूगावा था। इसी से वह इयासू तोकूगावा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह लड़ाई में शूर वीर और शान्तिकाल में राजनीतिज्ञ था। हिदेयोशी का इसमें बड़ा विश्वास था इसीलिए उसने मरते समय इससे कहा—"मैं यह जानता हूँ कि मेरे मरने के पीछे बहुत से फ़साद उठेंगे, परन्तु तुम उन सब को दबा सकोगे। यही जानकर मैं यह सब राज्य तुम्हारे हाथों में सौंपता हूं और विश्वास रखता हूं कि तुम में शासन करने की शक्ति विद्यमान है। बच्चा हिदेयोरी तुमारी गोद है, इसको सँभालना। वह मेरा उत्तराधिकारी बनने योग्य है कि नहीं इस बात का फ़ैसला तुम आप करना।" इयासू ने जब सब काम अपने हाथ में लिया तो देखा कि अनेक राजा लोग ख़ुद मुख़्तार बनने की फ़िकर कर रहे हैं और चाहते हैं कि सब स्वतंत्र हो जायँ। कई राजाओं ने मिलकर बहुत सी फ़ौज इकट्ठी की और जहाँ इयासू का महल था उस बस्ती को आघेरा। नगर फुशीमी को जलाकर नष्ट कर दिया। इयासू इस समय किसी दूसरी जगह था। जब उसे यह समाचार मिला तो उसने अपना लश्कर इकट्ठा किया। अपने बड़े लड़के हिदेयासू को यद्दो के आस पास की रक्षा करने के लिए नियत किया। सब फ़ौज ७०,००० थी। उसके दो हिस्से करके आधी अपने दूसरे बेटे को दी और आधी आप संभाली। सेकूगहारा नामक गाँव पर फ़ौजों की आपस में मुठभेड़ हुई और बड़ी सख़्त लड़ाई हुई जिस में बाग़ियों के ४० हज़ार आदमी

काम आये। इस स्थान पर अभी तक ऐसे दो टीले बने हुए हैं जिन्में बागियों के सिर काट कर दबाये गये थे। इस लड़ाई की जीत के साथ क्योटो और ओसाका का इलाका जब्त किया गया तथा सब रजवाड़े भेट लेकर आमिले। इस समय इयासू ने बड़ी बुद्धिमत्ता का काम किया। केवल उन्हीं लोगों को प्राण दण्ड दिया जो कुटिल प्रकृति के दुःखदायी लोग थे। बहुतों का इलाक़ा ज़ब्त हुआ। बहुतों को समझा बुझाकर छोड़ दिया गया। जहाँ तक संभव हुआ दया और नीति से काम किया और देश के रजवाड़ों की नामावली नये सिरे से तैयार की गई और अपने लड़के हिदेतादा को महाराजा की सेवा में भेजा कि वे इस फ़हरिस्त को पढ़ें और स्वीकार करें। महाराजा बड़े प्रसन्न हुए और उसे सी-ई-ताइ शोगन की पदवी दी, जो पदवी इस घराने मे १८६८ तक रही। ये लोग तोकागावाशोगन कहलाये। इयासू ने अपना सदर मुकाम यद्दो मे नियत किया। अब एक कटक हिदेयोशी का लड़का हिदेयोरी रह गया था जिसकी अवस्था अब २३ वर्ष की थी। इसने जब इयासू के शत्रुओं का साथ दिया तो इसका फ़ेसला करना भी उचित समझा गया। जून सन् १६१५ मे उसकी फ़ौज के साथ एक भारी लड़ाई हुई। हिदेयोरी और उसकी मा ओसाका के क़िले मे रहते थे और इसी में जल कर भस्म हो गये।

कोरिया के साथ हिदेयोशी ने बिना बात की तकरार की थी और बहुतसा जान माल नष्ट किया था। इयासू ने अपने पड़ौसी चोन और कोरिया के साथ फिर सद्भाव चाहा। जापान ने कोरिया से अनेक बाते सीखी थीं। उसी कोरिया को जापान ने तबाह कर दिया। उस भारी महाभारत मे कितने शहर बरबाद हो गये; कारख़ाने नष्ट हो गये, खेतियाँ उजड़ गईं। एक समय वह ऐसा फलदार हरा भरा वृक्ष था कि जापान ने उसके अनेक फल चक्खे। वहाँ से शिल्प, साहित्य और सभ्यता प्राप्त की। परन्तु युद्धाग्नि ने उस वृक्ष को ऐसा जलाया कि पुष्प, फल और शाखा सब नष्ट

हो गईं। वह अब नाम मात्र का वृक्ष था। इयासू ने राजा सुशीमा के द्वारा अपनी इच्छा कोरिया-नरेश पर प्रकट की। उत्तर में कोरिया से जो पत्र आया उसमें अनेक बातों के सिवाय यह भी लिखा था—"इस देश के नृपति और सर्व साधारण प्रजा को इस बात का बड़ा शोक है कि वे लोग आपके देश के साथ सद्भाव से नहीं रह सके......परन्तु यदि आप लोग प्राचीनों की करतूत पर अफ़सोस करते हैं और फिर सद्भाव बनाना चाहते हैं तो इसमें दोनो देशो का मंगल है। अस्तु, हम अपनी शुभ कामना अपने वकील द्वारा स्वीकार करते हैं और अपने देश की उपज से सौग़ात की भाँति कुछ पदार्थ मित्रता का चिन्ह स्वरूप भेजते हैं। आशा है आप प्रसन्नतापूर्वक हमारे आशय को समझ लेंगे।"

ईसाइयों के विरुद्ध हिदेयाशी ने जो किया वह पहिले वर्णन हो चुका है। इयासू ने भी उन पर नजर रक्खी। सन् १६१४ में एक आज्ञा निकली कि—"ईसाई चाहे यूरोपियन हो अथवा जापानी, सब देश से निकाल दिये जाय। गिरजे सब गिरा दिये जाँय, जितने जापानी इस धर्म को त्यागे उतने अच्छे समझे जाँय। २५ अक्टूबर सन् १६१४ को ३०० ईसाइयों ने जापान छोड़ा और जहाज़ द्वारा वहाँ से भागे।

सन् १६१६ ई० में इयासू मर गया। इसके पुत्र ने भी ईसाइयों को तलाश कर कर के निकाला। ईसाई पहाड़ो पर से ढकेले गये, आग मे जिंदा जलाये गये, बैलों से रुँदवाये गये, बोरो के भीतर भर कर आग मे डाल दिये गये, हाथ पैरो में मेखें ठोकी गईं, बाजों को पिंजड़े में रखकर भूखा मारा। दिल ललचाने के लिए उनकी आंखों के सामने भोजन रक्खा रहा। सन् १६२२ मे १३० स्त्री, पुरुष और बच्चे मारे गये। दूसरी साल १०० और। जो ईसाई जलाये जाते थे उनकी भस्म को अन्य ईसाई रात को चुरा लाते थे और बड़ी ही पवित्र मानते थे। इसीलिए आगे से आज्ञा हुई कि सब राख समुद्र में फेंक दी जाया करे।

ये ईसाई न बाइबिल पढ़े थे और न पढ़ सकते थे परन्तु विश्वासी बहुत भारी थे। मरने से बिलकुल न डरते थे। छिपे हुए ईसाइयों का पता लगाने को यह युक्ति निकाली गई कि ईसा की मूर्ति पर घर घर के आदमियों को पैर रखकर चलाया जाता था जो मूर्ति के ऊपर पैर रखने में झिझकता था ईसाई समझा जाता था। पहिले काग़ज़ पर मूर्ति बनायी गई थी, फिर लकड़ी पर और अन्त को अष्टधाती चद्दर के टुकड़े पर मूर्ति बनाई गई। चद्दर के टुकड़े ५ इंच लंबे, ४ इंच चौड़े और एक इंच मोटे थे। सूली पर चढ़े हुए ईसा का चित्र उन पर खुदा हुआ था।

कहा जाता है कि शिमावारा का उपद्रव ईसाइयों ने किया था परन्तु यथार्थ मे उसका कारण और ही था। ईसाइयों ने केवल इतना किया कि उपद्रवियों के साथ जाकर मिल गये। सिवाय नागासाकी के और कहीं ईसाइयों की तादाद इतनी न थी कि वे बाग़ी बनकर बलवा कर बैठते। उपर्युक्त उपद्रव अरीमा सूबे में हुआ था और मूल कारण यह था कि इस सूबे का पहिला डेमियो शोगन ने एक दूसरे प्रान्त को बदल दिया था और जो नया गवर्नर आया वह अपनी शरीर-रक्षक सेना अपने साथ लेता आया। जो लोग पहिले हाकिम के बाडी गार्ड थे उनको बारक से निकाल दिया और आज्ञा दी कि वे खेती बारी करें या किसी और प्रकार से अपना पेट भरे। ये सब लोग सामुराई थे जो सिवाय सिपाही के काम के और कुछ करना पसन्द नहीं करते और न कुछ करना जानते थे। उनसे खेती बारी का कुछ काम न हो सका। जब लगान का वक़्त आया और वे कुछ अदा न कर सके तो उनको साधारण किसानों की भाँति कष्ट दिया गया। तब तो वे सब लोग बिगड़ खड़े हुए। सब किसान इनके साथ हुए आमाकुसा टापू के किसान भी आ मिले। ईसाई जो इतने कष्ट झेल रहे थे इन उपद्रवियों मे आकर सहायक हुए, और ईसाइयों पर जो ज़ोर ज़ुल्म हुआ था उनका बदला लेने का विचार बाँधने

लगे। ईसाई दल सन् १६३७ में आमाकुसा के आई गाँव में खड़ा हुआ। कहा जाता है कि कुछ दिनो ही में ८ हज़ार तीन सौ प्राणी जमा हो गये, इनमें स्त्रियाँ भी थीं। गाँव के ज़मीदार ने मुखिया का पद लिया। शिमावारा की गढ़ी लूट ली और वहाँ से हथियार लिये जो सरकारी अन्न जमा था आपस में बाँट लिया। फिर हारा के किले में इन लोगों ने अपना मोर्चा जमाया। हाकिमों ने सहायता के लिए यद्दो को लिखा। शोगन के पद पर आज कल इयासू का नाती था। उसने इन उपद्रवियों के दबाने के लिए इनाकूरा नेज़न को कमांडरइनचीफ़ बनाकर रवाना किया। एकतीस दिसंबर १६३७ को बाग़ियों का क़िला घेर लिया गया। भीतर के लोगों ने क़िले की रक्षा जान तोड़ कर की। उनको विश्वास था कि जो क़िले मे पकड़े गये तो रक्षा नहीं है। कई महीने होगये परन्तु फ़ौज से क़िला टूट न सका। तब कमांडर इन चीफ़ ने डच लोगों से गोला बारूद मँगाया और उनकी तोपें माँगी। इनसे भी बाग़ियों पर कुछ असर नही हुआ। विदेशियो से मदद लेने का समाचार जब बाग़ियों को मिला तो उन्होंने एक पत्र लिख कर तीर के द्वारा कमांडर इनचीफ़ के डेरे पर फेंका, जिसमें लिखा था कि जापान में अनेक वीर रहते हुए विदेशियो से सहायता लेना बड़ी लज्जा की बात है। पत्र मिलने पर डच लोगों से सहा-यता लेना बन्द कर दिया गया और १०२ दिन की लगातार चेष्टा से क़िले का डण्डा तोड़ पाया। जो बाग़ी ज़िन्दा मिले वे सब मार डाले गये। जिस राजा ने इस विरोध का कारण उत्पन्न किया था उसे आत्महत्या करनी पड़ी।

इस उपद्रव के शान्त होने पर ईसाई लोग अपना धर्मभाव बहुत ही गुप्त रखने लगे। ऐसा जान पड़ता था कि अब ईसाई बिलकुल रहे नहीं हैं परन्तु जब ईसाई धर्म को फिर स्वतंत्रता मिली तब कितने घराने प्रकट हुए जो अपना धर्म भाव बिलकुल गुप्त रक्खे हुए थे।

इयासू ने रजवाड़े को दुरुस्त करने में बड़ी चेष्टा की। राजा लोग अनेक काल से ऐसे स्वतंत्र हो रहे थे कि अपनी मनमौजी चाल पर चलते थे। उसने इन राजाओं को एक नियम में बाँधा। जो सूबे ज़ब्त हो गये थे वे उसने अपने बेटों में बाँट दिये। उसके ९ बेटे और तीन बेटियाँ थी। बेटियों को उसने तीन राजाओं को दे दिया। पहिला बेटा मरचुका था। दूसरे बेटे हिदेयासू को इशोज़ेन का सूबा दिया। तीसरे हिदेतादा को जो हिदेयोशी का दामाद था, शोगन बनाया। ओवारी, कई और मितो का इलाक़ा शेष तीन बेटों को दे दिया। इयासू ने सब राजा लोगों को दो दर्जों में बाँटा अर्थात् फ़ुदाई और तोज़ामा। तोकूगावा घराने के राजा लोग फ़ुदाई कहलाते थे। छोटे मोटे मिला कर इन की संख्या १७७ थी। दूसरे पदधारी राजा लोग ८६ थे।

फ़ुदाई पद वाले २१ राजा शोगन के नज़दीकी रिश्तेदार थे और तीन सगे भाई थे।

इन राजा लोगों के सिवाय छोटे छोटे ताल्लुकेदार भी थे जो हातामोतो कहलाते थे और शोगन के नियत किये हुए हाकिम का काम देते थे। इनसे भी छोटे लोग गोकेनिन कहलाते थे और वे निम्न श्रेणी के कर्मचारी गिने जाते थे। सब से नीचे सामुराई की गिनती थी जो सिपाही का काम करते थे। सर्वसाधारण प्रजा की अपेक्षा इनका अधिक आदर था।

इयासू ने अपने वसीयतनामें में लिखा है कि—"सामुराई चारों वर्णों मे श्रेष्ठ हैं। किसान, कारीगर और बनियो को उसके साथ निरादर का बर्ताव कदापि न करना चाहिए। सामुराई यदि अपने असम्मान प्रकाशित करने वाले को मार डाले ता कोई उसे बाधा न दे। तलवार सामुराई की जान है"। इसकी प्रतिष्ठा जब इतनी अधिक होगई और काम काज कुछ न करके बैठे बैठे खाने को मिला तो इनमें से कितनों के आचरण ख़राब हो गये, परन्तु इसमें सन्देह

नहीं कि बहुधा ये लोग उच्चहृदय, नेक और विद्वान् होते थे। जापान ने विदेशियों के सत्संग से जो नाम पैदा किया है वह सब इन्हीं लोगो के कर्तव्यपालन से। इसी जाति मे से विद्यार्थी बन कर विदेश में विद्या प्राप्ति करने गये थे। पञ्चायती राज्य प्रणाली चलाने में इन्हीं लोगों ने सहायता दी है, स्वतंत्रता का प्रेम भी इन्हीं लोगों से उपजा है। पठन पाठन प्रणाली सर्वदा से इनके हाथ में रही है। आज कल जो अख़बार, रिसाले, तवारीख़, राजनीति, क़ानूनी और सौदागरी विषय की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन सब में प्राचीन सामुराई लोगो की ही प्रधान चेष्टा है।

सामुराई दो तलवार लेकर चलते थे। बड़ी तलवार कताना कहलाती थी, लम्बाई ४ फ़ीट, सिर्फ़ नोक पर मुड़ी हुई होती थी और बाँई तरफ़ कमर पट्टे मे लटकाई जाती थी। छोटी तलवार ९½ इञ्च लम्बी वाक़ोज़ाशी कहलाती थी।

जापानी लोग अपने देश की तलवार की बड़ी तारीफ़ करते हैं। तीन आदमियों के शरीर मे से एक दम पार कर देना, पैसों की गड्डी बीच में से काट देना, ये तलवार की प्रशंसा के काम थे। हर एक सामुराई घोड़े पर चढ़ना, तीरन्दाजी और बल्लम बाज़ी करना तथा तलवार चलाना सीखता था। आत्महत्या के सरल तरीक़े भी उनको जानने होते थे।

इयासू यद्यपि धर्म्मसम्बन्ध में कुछ अधिक स्वार्थ प्रकाशित नहीं करता था परन्तु जोदो नामक बौद्ध लोगो के सम्प्रदाय से उसे अधिक प्रेम था। एक दिन जब वह मन्दिर में गया तो बोला—"एक जनरल के लिए यह बड़ी लज्जा की बात है कि उसका कोई निज का मन्दिर न हो। अस्तु, आज से यह मन्दिर मेरा हुआ"। बस इसी मन्दिर को शोगन लोग अपना समझते थे। यही कारण है कि टोकियो में ज़ोज़ोई मन्दिर सब से सुन्दर और वैभवपूर्ण रहा है।

इयासू ने राज्यपद ६३ वर्ष की अवस्था ही में छोड़ दिया था। वह यह देखना चाहता था कि उसके लड़के कैसा काम करते हैं। देशमें जो कुछ होता था सब पर उसका ध्यान था। प्रजा में विद्या-प्रचार करना उसे बहुत अच्छा जान पड़ता था। विद्वानो का आदर करने और नूतन ग्रन्थ पढ़ने में अपना समय व्यतीत करता था।

स्पेन देश वालों की देखा देखी डच और अँगरेजों ने भी यहाँ आना शुरू कर दिया। यूरोप वालों को पूर्वी देशों में तिजारत करने का बडा चसका था। इंडिश कम्पनी ने ५ जहाज़ों का एक बेड़ा पूर्वी देशों में व्यापार करने के लिए भेजा था। जिसमें विलियम एडेम्स नाम का एक अँगरेज़ भी था। ये जहाज़ मार्ग में तूफ़ान और लुटेरों से बहुत सताये गये। केवल वह जहाज़ जापान में आकर लगा जिसमें विलियम एडेम्स था। सूने का गवर्नर इस जहाज़ वालो से अच्छी तरह पेश आया, रहने को एक घर दिया। यह सन् १६०० ई० के एप्रिल महीने की बात है। नियमानुसार इयासू को ख़बर दी गई। उसने एक किश्ती भेजी जिसमे एडेम्स और उसका एक साथी बैठ कर ओसाका पहुँचे। इयासू इनसे भेट कर के ख़ुश हुआ और इनको दरबार में रख लिया। एडेम्स ने जापान के लिए अठारह टन का एक जहाज़ बनाया। फिर सन् १६०९ में १२० टन का जहाज़ बनाया। इन्हीं दिनों मे मनीला का गवर्नर न्यूस्पेन नामक टापू को जा रहा था। शिमोसा सूने के समुद्र किनारे पर उसका जहाज़ टूट गया। वह जहाज़ हजार टन का था। गवर्नर को जापानियों ने अपने नये बने हुए जहाज़ द्वारा नियत स्थान पर पहुँचा दिया। गवर्नर ने इस कृपा के बदले में उस जहाज को रख कर एक नया और बड़ा जहाज़ जापान को भेज दिया। एडेम्स विदेश-सम्बन्धी बातों का ज्ञान ख़ूब रखता था। इसी से इयासू को सर्वदा ठीक सलाह देता था। यही कारण था कि इसका आदर बहुत बढ़ गया। डच वालों को शोगन ने आज्ञा दी थी कि वे जापान में कहीं भी रोके टोके न जाँय और जापानी प्रजा के

समान समझे जाँय। सन् १६१३ में एक अँगरेजी जहाज भी आया और एडेम्स के उद्योग से इनको भी व्यापार करने की आज्ञा मिली परन्तु डच सौदागरों ने इन्हे टिकने नहीं दिया।

इयासू ने अपना वसीयत नामा जो लिखा इस में १०० अध्याय हैं और वीर प्रकृति के जापानियों को इसका पढ़ना बहुत सुहाता है। साधारण लोग भी पढ़ कर प्रसन्न होते हैं। पंदरहवें अध्याय में लिखा है-"जवानी में मेरा यही संकल्प था कि वैरियों को जीतूँ। उनका देश छीनूँ, अपने वंश के पुराने वैरियों से बदला लूँ परन्तु जब मैं ने युयू का यह उपदेश पढ़ा कि प्रजा को प्रसन्न रक्खो और राज्य में शान्ति स्थापन करो तो मुझे यह बात ठीक जँच गई और तब से मैं इसी पर चलता हूँ। मेरी सन्तान भी प्रजारञ्जन करना अपना परम कर्तव्य समझे। जो इस पर नहीं चलेगा मेरा वशज नहीं है। प्रजाही राज्य की जड़ है"। ४६वें अध्याय में लिखा है-"विवाह मनुष्य के लिए बड़ा उपयोगी और दृढ़ सम्बन्ध है। १६ वर्ष की उम्र पीछे सब किसी को विवाह करना चाहिए। वंश बढ़ाना परमावश्यक है। एक कुटुम्ब का आपस में विवाह न होना चाहिए। विवाह के लिए सर्वदा अच्छा कुल देखना चाहिए। वशवृद्धि देख कर पितृगण प्रसन्न होते हैं। मनुष्य मात्र में विवाह का नियम सर्वोपरि समझा जाता है"।

इयासू के पोते इमत्सू ने प्रबन्ध किया कि राजधानी में सब रजवाड़ों की कोठियाँ बनें और वे नियमानुसार राजधानी में शोगन से मिलने आया करें इयासू के पीछे और कोई उल्लेख योग्य शोगन नहीं हुआ। परन्तु देश मे शान्ति रहने से उन्नति बहुत हुई। शिल्प ने बड़ा चमत्कार दिखाया। रोगन चढ़ाने का काम ख़ूब चमका। अष्टधाती चीजें भी अच्छी अच्छी बनने लगीं। चित्रकारी ने अद्भुत चमत्कार दिखाया।

डच और पोर्चुगीज़ सौदागर आपस में द्वेष करने लगे और पोर्चुगीज़ यहाँ से चले गये। सन् १६४० में दशीमा टापू में

डच सौदागरों ने अपनी कोठियाँ बनाईं उस समय सब विदेशियों के आने जाने का यही दरवाजा था । रूस, अंगरेज, अमेरिका सब इस बात की चेष्टा में लगे कि जापान सब के लिए खुल जाय । कारण यह था कि ह्वेल का शिकार जापान के उत्तर समुद्र में बहुत मिलता था । चीन के साथ अमेरिका का व्यापार बहुत बढ़ गया था । सान फ्राँसिस्को से चीन आने के लिए जहाज़ पर बहुत सा कोयला लादना पड़ता था । यदि जापान मे जहाज़ो को कोयले भरने का स्टेशन मिल जाता तो बड़ा ही सुभीता होता । अस्तु, कमोडोर पेरी ने जापान का पर्दा उठाया जैसा कि भूमिका में लिखा जा चुका है ।

कमाडोर पेरी के उद्योग से जो जापान और अमेरिका में सन्धि हुई थी उस में १२ शर्तें थीं—

१—दोनों देशों में मित्रता और शान्ति रहे ।

२—शिमोदा बन्दर तत्काल और हकोडेट बन्दर वर्ष दिन पीछे अमेरिकन जहाजों के लिए खोल दिया जाय और जहाज़ वालों को आवश्यक पदार्थ दिये जायँ ।

३—डूबे हुए जहाजों से बचे हुए प्राणी दोनों देशों में सहायता पावें । ख़िदमत का ख़र्च वापिस लिया जाय ।

४—टूटे जहाज़ों से बचे अथवा अन्य लोगों को क़ैद न किया जाय । न्यायानुसार बर्ताव हो ।

५—शिमोदा और हकोडेट में अमेरिकन घिरे न रहें । उन्हें नियमित सोमा के भीतर घूमने फिरने का अधिकार रहे ।

६—व्यापारसम्बन्धी तथा अन्य फ़ैसलो के लिए फिर कमेटी हो ।

७—खुले हुए बन्दरों में जापानीज़ गवर्नमेंट के नियमानुसार व्यापार हो ।

८—लकड़ी, पानी, खाने की चीज़ें, कोयले आदि का प्रबन्ध जापानी अफ़सर करें ।

९—यदि उपर्युक्त बातों के सिवाय किसी अन्य देश को और रिआयतें दी जायँ तो अमेरिका को भी मिलें।

१०—आपत्ति के सिवाय अमेरिका के जहाज़ और किसी बन्दर पर न ठहरें।

११—अमेरिका का वकील शिमोदा में रहे।

१२—अठारह महीने पीछे इस संधि-पत्र का परिवर्त्तन हो।

इसी प्रकार की सन्धि अंगरेजों के साथ हुई। नागासाकी और हाकोडेट खोला गया। रूसियों के बन्दर अमेरिकन के साथ ही साथ थे।

कुछ दिन पीछे विदेशियों को बसने और व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। नीगाता, ह्यूगो, कनागा वा बन्दर खुल गये। यदो और ओसाका शहरों में जाने आने का बन्धन न रहा। जो अपराधी जिस देश का हो उसी देश के न्याय द्वारा दण्डित होना निश्चय हुआ। जापान में अफ़ीम न आने पावे यह शर्त हो गई। जापान में बिकने वाले माल पर ५ फ़ीसदी महसूल लगा। नशे की चीज़ों पर ३५ फ़ीसदी। यही महसूल विदेशों में जापानी चीज़ों पर हुआ।

विदेशियों के साथ गवर्नमेंट का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध सर्व-साधारण जापानियों को पसन्द नहीं आया। देश में दो प्रकार के दल थे। "ज़ोई" पार्टी वाले विदेशियों को यहाँ से भगाना चाहते थे और "काई कोकू" पार्टी वाले अपने देश को सब के लिए खोल देना चाहते थे। पिछले पार्टी में शोगन गवर्नमेंट के लोग थे। "ज़ोई' पार्टी वाले लोग पुराने विचार के थे। इनके साथ वे लोग भी थे जो तोकूजावा घराने को विपत्ति में डाला चाहते थे। सतसूमा, चोशू, हिजन और तोसा के राजा शोगन के विरुद्ध थे। मीतो के राजा यद्यपि शोगन के मित्र थे परन्तु विदेशियों को देखना नहीं चाहते थे। वह "ज़ोई" पार्टी के सरदार समझे जाते थे। बहुतेरे सामुराई भी इस दल में शामिल थे।

जापानी कहते थे कि शोगन को यह अधिकार नहीं है कि विदेशियों से किसी प्रकार की सन्धि करें । शोगन की प्रतिज्ञा सर्व-साधारण का बंधन नहीं हो सकती । अस्तु, विदेशियों पर अत्याचार होने लगे, जिन का शोगन-गवर्नमेंट कुछ प्रतीकार नहीं कर सकती थी । स्वयम् शोगन नादान था। उसका जो कारिन्दा सब काम काज सँभालता था उसको २३ मार्च सन् १८६० के दिन शोगन के महल के दरवाज़े पर मार डाला । अब उस की जगह कोई काम करने वाला मौजूद न था । शोगन की गवर्नमेंट में एक दम गड़बड़ी पड़ गई ।

कुछ दिन पीछे अमेरिका का वकील मारा गया । एक दिन ब्रिटिश एलची के क़िले पर उपद्रवियों ने हमला मचाया । एलची और उसका सेक्रेटरी घायल हुआ । यह दशा देखकर शोगन की ओर से ख़बर दी गई कि "उपद्रवकारियों को रोकना गवर्नमेंट की सामर्थ्य से बाहिर हो गया है । जापानी लोगों का ख़याल था कि अन्न का महँगा होना, सिक्के का बदलना और अकाल का पड़ना विदेशियों ही के कारण से है । गवर्नमेंट ने यह विचार करके कुछ आदमी चुन कर उन देशों को भेजे जहाँ के वकील जापान में रहते थे। इनका इरादा था कि उन देशों की गवर्नमेंट से प्रार्थना की जाय कि विदेशी जहाज़ो का जापान में जाना आज कल भयानक हो उठा है। इसी लिए नये नये बन्दर अभी न खोले जायँ । उन लोगों का सब जगह बड़ा आदर हुआ । इस यात्रा द्वारा उन को जान पड़ा कि ये विदेशी कैसे सभ्य, विद्वान् और चतुर जाति के हैं । उन्होंने सब मुल्कों के जङ्गी जहाज़, तोपख़ाने और फ़ौजें देखीं । तब उनकी समझ में आया कि इन विदेशियों से विरोध करना हंसी ठट्ठा नहीं है । विदेशियों की इतनी शक्ति रहने पर भी जिस शुश्रूषा और प्रतिष्ठा के साथ जापानियों के साथ व्यवहार हुआ उसे देखकर जापानी आश्चर्य्य में आ गये । सब विदेशी राज्य शान्ति और न्याय

प्रिय सिद्ध हुए। जापानियों की यह प्रार्थना सब ने स्वीकार की। अभी नये बन्दर न खोले जायँ।

क्योटो मे महाराजा और यद्दो में शोगन का निवास था। दोनों में आपस का विरोध दिन दिन बढ़ने लगा। बहुत चेष्टा करने पर भी मेल की कुछ आशा न रही। तब शिमाज़ू नाम के एक सर्दार ने, जो सत्सूमा राजकुमार के रक्षक थे, इस विरोध को मेटना चाहा। अपने साथ कुछ फ़ौज लेकर वे राजधानी क्योटो को चले। इनके साथ और भी स्वतंत्रजीवी सामुराई शामिल हो गये। शिमाज़ू के लशकर से महाराजा घबड़ा उठे। उस समय शिमाज़ू ने प्रार्थना की कि जापान से इन विदेशियों को निकालने के सिवाय देश मे शान्ति स्थापन होना और किसी प्रकार संभव नहीं है। इस काम में सहायता देने के लिए और राजा लोग भी आ मिले थे। जिन मे चोशू का राजा, शोगन के सख़्त ख़िलाफ़ था। शिमाज़ू ने यद्दो जाकर शोगन से भी भेट की। परन्तु उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। जब लश्कर यद्दो से चला तो तोकानागावा गाँव के पास तीन अंगरेज़ और एक मेम घोड़ों पर चढ़े लश्कर का तमाशा देखने लगे। जापान में उस समय यह नियम था कि जब किसी राजा का लश्कर निकलता था तो प्रजा का कोई आदमी खड़ा न रह सकता था। सब को ज़मीन में सिर टेकना पड़ता था। जब अँगरेज़ों ने यह नहीं किया। तो एक सिपाही लशकर मे से आया और उन तीनों अँगरेज़ों को घायल कर दिया। मेम भाग कर बच गई। घायल होते ही वे सब भागे और बड़ी दुर्दशा से अपने घर पहुँचे। कुछ दिन पीछे रिचार्ड सन नाम का अँगरेज़ उन में से मर भी गया। अँगरेज़ी वकील ने इस के बदले में एक लाख पौण्ड शोगन गवर्नमेंट से माँगा। और सतसूमा के राजा पर पृथक् दण्ड ठहराया गया।

सतसूमा के राजा ने न तो घातक का नाम बताया और न ज़ुर्माना दिया। तब अँगरेज़ ७ जहाज़ लेकर उस पर चढ़ गये।

जापानी कहते थे कि शोगन को यह अधिकार नहीं है कि विदेशियों से किसी प्रकार की सन्धि करें। शोगन की प्रतिज्ञा सर्व-साधारण का बंधन नहीं हो सकती। अस्तु, विदेशियों पर अत्याचार होने लगे, जिन का शोगन-गवर्नमेंट कुछ प्रतीकार नहीं कर सकती थी। स्वयम् शोगन नादान था। उसका जो कारिन्दा सब काम काज सँभालता था उसको २३ मार्च सन् १८६० के दिन शोगन के महल के दरवाज़े पर मार डाला। अब उस की जगह कोई काम करने वाला मौजूद न था। शोगन की गवर्नमेंट में एक दम गड़बड़ी पड़ गई।

कुछ दिन पीछे अमेरिका का वकील मारा गया। एक दिन ब्रिटिश एलची के क़िले पर उपद्रवियों ने हमला मचाया। एलची और उसका सेक्रेटरी घायल हुआ। यह दशा देखकर शोगन की ओर से ख़बर दी गई कि "उपद्रवकारियों को रोकना गवर्नमेंट की सामर्थ्य से बाहिर हो गया है। जापानी लोगों का ख़याल था कि अन्न का महँगा होना, सिक्के का बदलना और अकाल का पड़ना विदेशियों ही के कारण से है। गवर्नमेंट ने यह विचार करके कुछ आदमी चुन कर उन देशों को भेजे जहाँ के वकील जापान में रहते थे। इनका इरादा था कि उन देशो की गवर्नमेंट से प्रार्थना की जाय कि विदेशी जहाजो का जापान में जाना आज कल भयानक हो उठा है। इसी लिए नये नये बन्दर अभी न खोले जायँ। उन लोगों का सब जगह बड़ा आदर हुआ। इस यात्रा द्वारा उन को जान पड़ा कि ये विदेशी कैसे सभ्य, विद्वान् और चतुर जाति के हैं। उन्होंने सब मुल्कों के जङ्गी जहाज, तोपख़ाने और फ़ौजें देखीं। तब उनकी समझ मे आया कि इन विदेशियों से विरोध करना हंसी ठट्ठा नहीं है। विदेशियों की इतनी शक्ति रहने पर भी जिस शुश्रूषा और प्रतिष्ठा के साथ जापानियों के साथ व्यवहार हुआ उसे देखकर जापानी आश्चर्य्य में आ गये। सब विदेशी राज्य शान्ति और न्याय

प्रिय सिद्ध हुए। जापानियों की यह प्रार्थना सब ने स्वीकार की। अभी नये बन्दर न खोले जायँ।

क्योटो में महाराजा और यद्दो में शोगन का निवास था। दोनों में आपस का विरोध दिन दिन बढ़ने लगा। बहुत चेष्टा करने पर भी मेल की कुछ आशा न रही। तब शिमाज़ू नाम के एक सर्दार ने, जो सत्सूमा राजकुमार के रक्षक थे, इस विरोध को मेटना चाहा। अपने साथ कुछ फ़ौज लेकर वे राजधानी क्योटो को चले। इनके साथ और भी स्वतंत्रजीवी सामुराई शामिल हो गये। शिमाज़ू के लशकर से महाराजा घबड़ा उठे। उस समय शिमाज़ू ने प्रार्थना की कि जापान से इन विदेशियो को निकालने के सिवाय देश मे शान्ति स्थापन होना और किसी प्रकार संभव नहीं है। इस काम में सहायता देने के लिए और राजा लोग भी आ मिले थे। जिन मे चोशू का राजा, शोगन के सख़्त ख़िलाफ़ था। शिमाज़ू ने यद्दो जाकर शोगन से भी भेंट की। परन्तु उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। जब लश्कर यद्दो से चला तो तोकानागावा गाँव के पास तीन अंगरेज़ और एक मेम घोड़ों पर चढ़े लश्कर का तमाशा देखने लगे। जापान में उस समय यह नियम था कि जब किसी राजा का लश्कर निकलता था तो प्रजा का कोई आदमी खड़ा न रह सकता था। सब को ज़मीन में सिर टेकना पड़ता था। जब अँगरेज़ों ने यह नहीं किया। तो एक सिपाही लशकर मे से आया और उन तीनों अँगरेज़ों को घायल कर दिया। मेम भाग कर बच गई। घायल होते ही वे सब भागे और बड़ी दुर्दशा से अपने घर पहुँचे। कुछ दिन पीछे रिचार्ड सन नाम का अँगरेज़ उन में से मर भी गया। अंगरेज़ी वकील ने इस के बदले में एक लाख पौण्ड शोगन गवर्नमेंट से माँगा। और सतसूमा के राजा पर पृथक् दण्ड ठहराया गया।

सतसूमा के राजा ने न तो घातक का नाम बताया और न जुर्माना दिया। तब अँगरेज़ ७ जहाज़ लेकर उस पर चढ़ गये।

शहर कागूशीमा जहाजी तोपों से उड़ा दिया गया। विदेशियों का ऐसा प्रबल प्रताप देखकर सतसूमा के राजा की आँखें खुलीं। उन को विश्वास हो गया कि पुराने हथियारों से इन लोगों का मुकाबिला भारी मूर्खता है। इनके साथ लड़ने के लिए इनके समान ही जहाज़ और हथियार होने चाहिएँ। दण्ड का रुपया देकर सुलह कर ली गई। कुछ दिन पीछे एक दल विद्यार्थियों का लण्डन भेजा गया कि जहाज़ी काम सीखें और सब प्रकार के कला कौशल प्राप्त करें। चोशू के राजा ने भी विदेशियों से छेड़खानी की। शिमोनो सेकी के पास तंग समुद्र से जो जहाज़ गुज़रते थे उन पर गोला चलाने का हुक्म दे दिया। जब कई जहाज़ो पर गोला बरसा तो विदेशियों ने जहाज़ों का एक दल इस जगह पर भेजा। तीन दिन तक लड़ाई हुई और राजा ने अपनी हार मान ली। विदेशियों ने ३ लाख डालर लड़ाई का हरजाना वसूल किया।

जापान के वर्त्तमान महाराजा के पिता महाराजा कोमोई उन दिनों गद्दी पर थे जो सन् १८४७ में १८ वर्ष के होकर गद्दी पर बैठे थे। शोगन का नाम इमोचो था। जो सन् १८५८ ई० मे १२ वर्ष का बालक था। मीतो के राजा का पुत्र हितोत्सुबाशी इसका रक्षक और कारिन्दा था। जब से विदेशियों के साथ शोगन-गवर्नमेंट ने सन्धि की अनेक राजा उसके विरोधी हो उठे थे। वे यही चाहते थे कि देश का शासन केवल महाराजा के हाथ मे रहे। सन् १८६३ ई० में शोगन भी महाराजा से सम्मति लेने के लिए क्योटो में आया। एक बड़ी सभा हुई जिस में एक राजाज्ञा निकाली गई कि विदेशियों को निकाल देने के लिए शोगन एक दम प्रबन्ध करे। चोशू के राजा ने ऐसी तजवीज की कि जिस से महाराजा को वह राजधानी से उठाकर अपने राज्य में ले जाय और फिर मनमानी रीति से शोगन और विदेशियों के साथ व्यवहार करे। परन्तु उसकी यह तजवीज़ ज़ाहिर हो गई। चोशू की जो फ़ौज राजधानी में थी हटा दी गई। इस तजवीज़ में सात राजा और थे, उनका सम्मान हटा

दिया गया। वे भी चोशू के राजा से जा मिले। महाराजा और दरबारियों को यह सिद्ध हो चुका था कि बलपूर्वक विदेशियों का निकालना सहल नहीं है।

चोशूराज ने अनेक उपद्रवी सामुराई (रोनिन) लोगों के साथ बलपूर्वक क्योटो में प्रवेश करना चाहा, बड़ा युद्ध हुआ परन्तु अन्त को हारना पड़ा। बहुतों ने शरम के मारे आत्महत्या की। अनेकों ने राजविरोध के कलक से बचने के लिए आग मे जलकर मुँह छिपाया। क्योटो का बहुत सा शहर जल गया। जो क़ैदी पकड़े गये उनके साथ अच्छा व्यवहार किया और राज़ीनामा हो गया।

विदेशियों के साथ आज कल जापान का क्या सम्बन्ध है यह जानने के लिए शोगन राजधानी मे बुलाया गया। साथही विदेशी भी अपने जहाज़ लेकर ह्योगो में इस इरादे से जमा हुए कि पिछले सब शर्तनामो पर महाराज की मंज़ूरी ली जाय। कारिंदा हितोत्सुबाशी की चेष्टा से विदेशियों की इच्छा पूर्ण हुई। २३ अकतूबर सन् १८६५ को महाराजा के शोगन के किये हुए शर्तनामे मजूर किये।

सन् १८६६ मे शोगन मरगया और उसका पद हितोत्सुबाशी को मिला। कुछ महीनों पीछे महाराजा कोमाई का भी स्वर्गवास हुआ। मृत्यु का कारण शीतला का रोग था जो विदेशियों के जापान में बसने को आज्ञा देने का फल समझा गया। पंद्रह वर्ष की अवस्था में पुत्र मुत्सहितो १२१ वें महाराजा बन कर गद्दी पर बैठे।

सन् १८६७ ई० को अकतूबर महीने में तोसा के राजा ने शोगन को इस भाँति का एक पत्र लिखा।

"देश में लगा तार उपद्रव होने का कारण यह है कि आजकल दो शासको के हाथ में शासन है। आज कल समय में बड़ा परिवर्तन हो गया है जिस से प्राचीन रीति भाँति स्थिर नहीं रह सकती।

शासन का सब भार महाराजा के हाथ में रहना चाहिए जिस से हमारा देश भी अन्य देशों के समान हो जाय।

शोगन ने सब राजा लोगों को पत्र लिख कर उनकी सलाह माँगी। पत्र में कहा गया कि हम लोगों का दिन दिन विदेशियो से रिश्ता बढ़ता जाता है। उस से प्राचीन नियमो का टिकना कठिन है। राज्यप्रबन्ध एक ही के हाथ में रहना अच्छा होगा मैं अपना सब अधिकार महाराज को समर्पण करने के लिए उद्यत हूँ।"

१९ नवंबर सन् १८६७ ई० में शोगन इस्तीफ़ा दे दिया।

महाराजा के हाथ में अधिकार दिलाने वाले राजाओं का पहिला कर्तव्य यह था कि शोगन के हिमायती रजवाड़ों की जो फ़ौज राजमहलों की रक्षा के लिए नियत थी हटा दी जाय और पुराने राजभक्तों का दल पुनः अपना स्थान ग्रहण करे। चोशू के राजा का अपराध क्षमा किया गया तथा उसके अन्य साथी भी मुक्त कर दिये गये और उन सब के पुराने अधिकार उन्हें वापिस दिये गये।

शोगन के पक्षपातियों को अपना यह निरादर बहुत बुरा लगा। शोगन इस्तीफ़ा देने के पीछे ओसाका को चला गया। उसके मित्र राज्यों की सेना भी वहीं एकत्र हुई। नये प्रबन्ध के अनुसार यह निश्चय हुआ कि शोगन को अब राज्यशासन में कोई नया पद मिलना चाहिए। तदनुसार शोगन को राजधानी क्योटो में बुलाया गया। इस समय शोगन के मित्रों ने भय दिखाया कि इस समय राजधानी में जाने से अवश्य शोगन के प्राण लिये जायँगे। अस्तु, एज़ू और कुवाना के राजा ने साथ साथ चलने को कहा। दस हज़ार फ़ौज रक्षा के लिए साथ हुई। शोगन का फ़ौज लेकर आने का समाचार राजधानी में भी आया। उसको अकेला बुलाया गया था, फ़ौज लेकर आना अच्छा नहीं समझा गया, अस्तु उसका आना रोकने के लिए सतसूमा और चोशू की फ़ौज

के १५०० आदमी राजधानी से रवाना हुए और मार्ग मे दोनों दलों की मुठभेड़ हो गई। तीन दिन लड़ाई रही । शोगन के हिमायती हार गये और पीछे लौट गये।

८ फ़रवरी सन् १८६८ को विदेशी वकील सूचित कर दिये गये कि अब शोगन से कुछ व्यवहार न किया जाय। सब लिखा पढ़ी राजधानी को की जाय। इसी सूचना के लिए विदेशी वकील महाराजा के सम्मुख बुलाये गये। देश भर में ख़बर हो गई कि विदेशियों के साथ झगड़ा करने वाला चाहे सामुराई ही क्यो न हो, साधारण अपराधियों की भांति दंड पावेगा और उन्हें हाराकिरी करने की भी आज्ञा नहीं दी जावेगी । शोगन को यद्दो ख़ाली कर देना का परवाना गया और उसको मीतो नामक प्रदेश में एकान्त बास करना निश्चय हुआ । वह शिज़ोका के सुम्पू महल में चला गया और उसके साथ तोकूगावा घराने का भी अस्त हुआ।

क्योटो में अब शासनप्रणाली इस प्रकार ठीक हुई । १ बड़ी अदालत, २ धर्म विभाग, ३ देश प्रबन्ध, ४ वैदेशिक, ५ सैनिक, ६ कोष, ७ न्याय ८ और नीतिसभा। सतसूमा जाति के ओकूवो तोशीमिची नामक सज्जन ने जो बड़ा चतुर था महाराजा से प्रार्थना की कि "अब संसार की दृष्टि से छिपे रहकर महाराजा कहलाने का समय नहीं है। अब आप प्रत्यक्ष हो कर राजकाज अपने हाथ मे लीजिए" यद्दो नई राजधानी स्थिर हुई । बड़ी धूम धाम से महाराजा ने यद्दो नगर मे प्रवेश किया। राजधानी का नाम टोकियो रक्खा गया और क्योटो सेक्यो का नाम दिया गया। और जनवरी सन् १८६५ से नया संवत् चला। सन् १८७२ ई० में ईसाईधर्म के विरुद्ध पिछली आज्ञाएँ रद कर दी गईं । सब रजवाड़ो का अपराध क्षमा हुआ।

महाराज ने अपनी सभा के सामने ५ बातों की शपथ की।

१—एक पंचायत मुक़र्रर की जाय और सब फ़ैसले उसी में तय हों।

२—देश की धन सम्बन्धी दशा सुधारने का छोटे बड़े सब प्रयत्न सोचें।

३—शुभ कर्मों के करने वालों को सब तरह की सहायता दी जाय।

४—पुराने मिथ्या विश्वास हटाकर सृष्टिक्रमानुसार, पक्षपात-रहित, न्याय से, सब काम किये जायँ।

५—विद्या और योग्यता संसार भर के देशों से प्राप्त की जाय जिससे राज्य की नींव दृढ़ हो।

सब से भारी बात सन् १८६९ ई० मे यह हुई कि राजा लोगो ने अपनी अपनी जायदाद की एक फ़हरिस्त लिखकर एक प्रार्थना पत्र सहित महाराज के अर्पण कर दी। पत्र में लिखा था—"यह पृथ्वी जिस पर हम बास करते हैं महाराज की है, जो भोजन हम खाते हैं वह महाराज की प्रजा उत्पन्न करती है, हम उसे अपनी मिलकीयत क्यों जतावें। हमारे पास जो धन और जन हैं उनकी फ़हरिस्त हम पेश करते है। महाराज को अधिकार है उसे चाहे जिसे दें, चाहे जिससे लें। देश का अब बिलकुल नूतन प्रबन्ध किया जाय। महाराज का जो धर्म है वही हम सेवकों का है।"

इन सब की ऐसी इच्छा देख कर ७ अगस्त सन् १८६९ में यह विज्ञापन निकला कि अब कोई राजा नहीं कहलावेगा। सब तरह के महसूल और आमदनी सरकारी ख़ज़ाने में आवेंगे। राजा लोगो को अब क़ज़ोकू के नाम से भूषित किया जायगा।

राजा लोगो मे से चुन कर गवर्नर बनाये गये। अब वे महाराज की आज्ञा के अधीन शासन करने लगे। जो लोग शासन नहीं कर सकते थे उनको पेन्शन हो गई।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।